साठोत्तर हिन्दी कहानी-साहित्य में आर्थिक सम्बन्धों का अध्ययन

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद की डी०फिल्० उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

निर्देशक
प्रो० राजेन्द्र कुमार
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

प्रस्तुतकर्त्री
श्रीमती आशा मिश्रा
शोध छात्रा, हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

2002

भूमिका

हिन्दी कहानी अपने रचनात्मक विकास में विभिन्न मनोदशाओं और बदलते प्रतिमानों के धरातल पर अपने अन्दर गुणात्मक परिवर्तन लाती रही है। कहानी की मूल प्रवृत्ति मनुष्य के संस्कार को जिस प्रकार अपने रचना विधान में जीवन के विभिन्न अंगों को आत्मसात करती रही है, उससे उसके सृजनात्मक पक्ष का उद्‌घाटन मनुष्य के सामाजिक दर्पण में अपने चेहरे को देखने जैसा है। जैसे-जैसे संस्कृतियों का प्रभाव मनुष्य के जीवन में उभरता गया। वैसे-वैसे मनुष्य पुनर्जागृत होकर साहित्य का प्रमाता प्रमाणित हुआ। हिन्दी कहानी की मूल चेतना मनुष्य की चेतना का वाहक बनकर उसके रहन-सहन उसकी रीति-रिवाज़ उसके परम्परागत मूल्यों के प्रति सांस्कृतिक विघटन की दृष्टि से अर्थ के विभिन्न अनुषंगों को विविध रूपों में आत्मसात करती रही है। ऐतिहासिक काल खण्डों की मूल-चेतना जैसे-जैसे संस्कृति की अनुरक्षण की वाहिका बनती गयी है वैसे-वैसे कहानी कविता के धरातल पर सृजनात्मक प्रक्रिया में अन्तर होते हुए भी उसकी पूरक प्रमाणित हुई है। इस धरातल पर आर्थिक सम्बन्ध जहाँ प्रगति के वाहक बने हैं वहीं पारिवारिक सम्बन्धों की कड़वाहट भी उभरकर सामने आयी है। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध स्वतंत्रता के बाद मनुष्य जीवन के बदलते प्रतिमानों और उसके स्तरों का तुलनात्मक विवेचन प्राप्त करता है। मूल्य के सांस्कृतिक बोध अपने सैद्धान्तिक रूप में प्रतिफलित होकर व्यवहारिक जीवन में यथार्थ के निकट पहुँचते हैं और मनुष्य के बदलते स्वरूप की व्याख्या करते हैं।

इस दृष्टि से प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध को निम्न अध्यायों में बाँटा गया है। प्रथम अध्याय में साठोत्तरी कहानी के स्वरूप की जहाँ व्याख्या की गई है वहीं पाँचवें दशक की कहानी से अन्तर भी स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। इस दृष्टि से स्वतंत्रता पूर्व से और स्वतंत्रता के पश्चात् तक

समाज में परम्परागत मूल्यों और आदर्शों में जो परिवर्तन हुआ है उसे भी रेखांकित करने का प्रयास किया गया है। राष्ट्रीय आन्दोलनों ने गाँधी जी के नेतृत्व में एवम् उनके प्रभाव में आचार-विचार की सात्विकता को केन्द्र में रखकर स्वतंत्रता प्राप्ति की वाहिका बनने का प्रयास किया है और पीड़ित मानवता को जगाने का प्रयास स्वावलंबन की भूमि पर किया है। इस दृष्टि को स्वतंत्रता के बाद की कहानियों के सापेक्ष मनोविश्लेषणात्मक पहलुओं को केन्द्र में रहकर विवेचित और विश्लेषित करने का विनम्र प्रयास है। यह सही है प्रगतिशील लेखक संघ के अधिवेशन में उपन्यास और कहानी के क्षेत्र में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन उपस्थित करके भारतीय जनमानस को यथार्थ के निकट जहाँ लाकर खड़ा कर दिया है, वहीं आदर्श और यथार्थ का मणिकांचन योग भी कहानी रचना का केन्द्रवर्ती तत्त्व बनता गया है और इसी के चलते राष्ट्रीयता की मूलभाव धारा अपने मूल्यगत स्वरूप में अध्यात्म के सहारे राष्ट्रीयता को आत्मसात करती चली गई है। यह बात सोलहो आने सत्य है कि भारतीय धर्म दर्शन का पुरुषार्थ चतुष्टय यथार्थ के आदर्श स्वरूप को मुखरित करने में पूरी तरह सफल रहा है। प्रगतिशील लेखक संघ के अधिवेशन के फलस्वरूप जो रचना भूमि मात्र मार्क्स के सिद्धान्तों के नैमित्तिक व्याख्या करके मनुष्य की चित्त वृत्ति की व्याख्या करने का प्रयास करती है, स्वतंत्रता के पूर्व भले ही वह गाँधी के सिद्धान्तों को आत्मसात करती रही हो, राष्ट्रीयता की कसौटी से कोसों दूर प्रमाणित हुयी है। प्रगतिशील लेखक संघ का मुस्लिम लीग के साथ आत्मसात हो जाना और गरीब जनता की कुंठा, विषाद, घृणा, अफसोस की व्याख्या करके और मनुष्य को उपहास का पात्र बना देने की जो क्षमता मार्क्स के आर्थिक-सम्बन्धों के धरातल पर विकसित हुई थी। छठें दशक के कहानीकारों ने उससे हटकर प्रयोग की कसौटी पर कहानी को नयी कहानी से वैसे ही अलग किया जैसे कविता का नयी कविता से उदय और कविता के प्रतिमान कहानी के प्रतिमान माने जाने लगे। इस दृष्टि से प्रस्तुत अध्याय की शोध परक व्याख्या खुद को दर्पण में देखने जैसी लगती है।
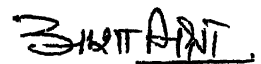
द्वितीय अध्याय में 'साठोत्तरी हिन्दी कहानी की प्रवृत्तियों' को रेखांकित करने का प्रयास है और इस क्रम में उसके विकास की संभावनाओं को भी तलाशने की कोशिश की गई है। तृतीय अध्याय में 'अर्थ का सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रभाव' दर्शाया गया है तथा चतुर्थ अध्याय

में 'अर्थ के कारण सामाजिक एवं पारिवारिक सम्बन्ध' पर ध्यान केन्द्रित करने का प्रयास किया गया है। छठवें दशक की कहानियों में आर्थिक सम्बन्धों से पारिवारिक विघटन की जो प्रक्रिया प्रारम्भ होती है उससे मनुष्य जीवन के सांस्कृतिक मूल्य बोध आपस में टकराकर सृजन और संहार की प्रक्रिया से गति पकड़ते हैं। वास्तव में जहाँ संहार होता है वहीं सृजन भी होता है। भारतीय जीवन दर्शन पारिवारिक स्थिति इसी के चलते स्वावलम्बी नहीं परावलम्बी होती चली गयी है और ग्रामीण परिवेश एक नए युग की माँग करने लगा है। इस माँग की पूर्ति औद्योगिक विकास के साथ क्रमशः चलकर पारिवारिक मूल्य को विघटित भी करती रही है। इसका कारण नेहरू की विचारसरणी भी मानी जा सकती है। पंचशील सिद्धान्तों को आधार मानकर नेहरू ने कांग्रेस की कुर्सी को बरकरार रखने के लिए पूँजीपतियों को काले धन कमाने की छूट दे रखी थी और नारंगियत लोकतंत्र की स्थापना करके स्वार्थपरक मूल्य को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया था। सत्ता के लोलुप तथाकथित साहित्यकारों ने कालांतर में तानाशाही मूल्य को स्थापित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। यही कारण है छठें दशक के बाद सातवें दशक में मूल्य के स्तर पर सामाजिक विघटन की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है और यह प्रक्रिया सातवें दशक की कहानियों में नए तेवर के साथ उभरती दिखायी देती है। इस दृष्टि से कुछ कहानीकारों के नाम व कहानियाँ विशेष रूप से इस अध्याय में उल्लेखनीय हैं, जिनकी कहानियों को विश्लेषण के क्रम में स्थान दिया गया है। इस काल की कहानियों में अर्थ का संघटन सामाजिकता की कसौटी पर विघटन का प्रमाता प्रमाणित हुआ है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध जिन मनःस्थितियों में आज पूर्णतः को प्राप्त कर रहा है। इस क्रम में जीवन के मधु एवं कटु अनुभवों से भी मुझे गुजरना पड़ा है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध स्वर्गीय डॉ० मालती सिंह के निर्देशन में स्वीकृत हुआ था। उन्होंने अपनी शीतल छाया और सहज सुलभता से अनेक प्रकार से मेरी सहायता की है। कहीं भी बड़प्पन का भाव लक्षित नहीं होने दिया, किसी भी प्रकार की दूरी का अनुभव तक होने नहीं दिया। उनके न रहने पर कृतज्ञता ज्ञापित करना मैं अपना परम पुनीत कर्तव्य समझती हूँ। विषय के प्रतिपादन को लेकर और विषय की सम्यक व्याख्या के लिए मैं डॉ० सत्यप्रकाश जी की आभारी हूँ। पदे-पदे उनका सहयोग बराबर मिलता रहा है। हिन्दी

साहित्य सम्मेलन के पुस्तकालय तथा वहाँ के कर्मचारियों के सहयोग से इस प्रबन्ध को पूर्ण होने में सहयोग मिला है। मैं सम्मेलन अधिकारियों के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ। शोध-प्रबन्ध के टंकण कर्ता श्री राकेश तिवारी जी के प्रति मैं आभार व्यक्त करती हूँ। जिनके कारण छपाई का कार्य इतनी स्वच्छता एवं तत्परता से हो पाया।

यह शोध प्रबन्ध पूर्णतः को प्राप्त नहीं कर पाता यदि हमारे जीवन सूत्र के वाहक श्री विष्णु कुमार मिश्र जी ने विशेष सहयोग न दिया होता। मैं इस शोध प्रबन्ध को लेकर कई बार निराशा से भर उठती। ऐसी स्थिति में उन्होंने पग-पग पर मुझे प्रोत्साहित किया। उनके प्रति धन्यवाद ज्ञापित करना उनके स्नेह व त्याग को नगण्य करना है। उन्होंने अपने व्यस्त कार्यक्रम से समय निकालकर एवं गृहकार्य से मुक्त रखकर अमूल्य सहयोग दिया है उनके प्रति मैं विशेष रूप से आभारी हूँ। इसके साथ ही मेरे दोनों पुत्रों अविरल एवं वत्सल ने भी इस दौरान मेरा बहुत साथ दिया। वात्सल्य प्रेम से वंचित होकर वे कई बार दुखी हो जाते पर समझाने पर पुनः मुझसे दूरी बनाए रखते जिससे मुझे बाधा न पहुँचे। मैं उनके इस सहयोग की ऋणी हूँ। डॉ० मालती सिंह की मृत्यु के पश्चात् जब मैं परेशान हो इधर-उधर भटक रही थी। डॉ० कृपाशंकर पाण्डेय जी ने मेरा उचित मार्ग दर्शन किया। जिनके प्रति मैं अति कृतार्थ हूँ। डॉ० मालती सिंह की मृत्यु के पश्चात् शोध निर्देशन के रूप में प्रबुद्ध विचारक, गुरुदेव प्रो० राजेन्द्र कुमार जी के प्रति मैं नतमस्तक हूँ। उनके मुनि स्वरूप के प्रति कुछ भी कहने में मुझे शब्दों का अभाव अनुभव हो रहा है। उन्होंने इस सामान्य बुद्धि शोधकर्त्री को शोध-प्रबन्ध के सम्बन्ध में पग-पग पर अपना अमूल्य निर्देशन दिया, जिसके लिए हृदय आभार से पूरिपूर्ण है। अन्त में मैं अपने स्व० सास-ससुर श्रीमती सीता देवी एवं श्री अवध नारायण मिश्र जी के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करती हूँ, यह अर्घ्य उन्हीं को समर्पित है।

आशा मिश्रा

श्रीमती आशा मिश्रा

विषयानुक्रमणिका

द्वितीय-अध्याय

तृतीय-अध्याय

चतुर्थ-अध्याय

''प्रथम अध्याय''

साठोत्तर कहानी : पूर्व पीठिका

अध्याय-१ साठोत्तर कहानी : पूर्व-पीठिका

क. स्वातन्त्र्योत्तर कहानी का परिदृश्य

ख. साठोत्तर कहानी की स्वरूप-मीमांसा

१. यथार्थ की अभिव्यक्ति

२. मूल्यों में परिवर्तन

३. कहानियों का चिन्तन प्रधान होना

४. व्यवस्था के प्रति बढ़ता आक्रोश

५. आर्थिक विपन्नता

६. संयुक्त परिवारों में विघटन

७. जनसंख्या में वृद्धि

८. नैतिकता में परिवर्तन

९. गाँव से शहर तक फैला कथ्य

१०. यौन संबंधों का चित्रण

११. नारी का स्वतन्त्र अस्तित्व-व्यक्तित्व

१२. पति-पत्नी के सम्बन्धों में परिवर्तन

१३. सम्बन्धों में बदलता दृष्टिकोण

१४. अस्तित्व रक्षा एवम् उत्कट जिजीविषा

१५. एकाकीपन

१६. प्रेम एवम् काम सम्बन्धों में बदलती मानसिकता

ग. निष्कर्ष

साठोत्तर कहानी : पूर्व पीठिका

युगों-युगों से साहित्य को जीवन की अभिव्यक्ति के रूप में स्वीकारा गया है। साहित्य की अन्य विधाओं में गद्य-साहित्य ही व्यक्ति की भावनाओं की अभिव्यक्ति का सरलम् साधन है।

गद्य-साहित्य में कहानी कहने-सुनने की परम्परा मानव-सभ्यता में अनादि-काल से चली आ रही है। कहानी प्रारम्भ से ही जन-शिक्षा व जन-जागरण का माध्यम रही है। साहित्य में रूचि रखने वाला पाठक अन्य विधाओं की अपेक्षा कहानी की ही माँग करता है क्योंकि यह कम समय व कम खर्च में बहुत कुछ प्राप्त करने की आवश्यकता को पूर्ण करती है।

हिन्दी साहित्य में कहानी का अपने नए मुद्रित रूप में आविर्भाव बीसवीं शती के आरम्भ में साहित्यिक पत्रकारिता के उदय के साथ हुआ। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ से लिखी गयी कहानियों में मुख्य रूप से दो प्रकार की प्रवृत्तियाँ अलग-अलग दृष्टिगोचर होती हैं। एक १९३०-३५ के आस-पास तथा दूसरी १९६२ के आस-पास जिसे स्पष्ट रूप में १९६५ से अलग किया ज सकता है।

क. स्वातन्त्र्योत्तर कहानी का परिदृश्य :

स्वातंत्र्योत्तर युग की हिन्दी कहानी में भी अपनी पूर्ववर्ती युग की भाँति सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक आदि प्रवृत्तियों का समुचित विकास हुआ। स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी की जो प्रवृत्तियाँ उभर कर सामने आयीं, वे अपनी पूर्ववर्ती कहानियों से कई अर्थों में भिन्न थीं। यह परिवर्तन मात्र नवीनता के प्रति आग्रह से नहीं है। पिछली शताब्दियों में यूरोपीय साहित्य

के क्षेत्र में विभिन्न प्रकार के वादों और विचार-धाराओं का प्रादुर्भाव हुआ। इन वादों और विचारधाराओं ने समस्त विश्व-साहित्य को प्रभावित किया हिन्दी साहित्य की समस्त विधाएँ इनसे प्रभावित हुईं। चूँकि कहानी साहित्य की महत्त्वपूर्ण विधा है इसलिए इस विधा पर भी इन वादों का पर्याप्त प्रभाव पड़ा। स्वतन्त्रता मिलने के साथ ही साथ देश को विभाजन की त्रासदी से गुजरना पड़ा जिसने जन-मानस की आस्थाओं परम्परागत मूल्यों को आहत किया। स्वतन्त्रता से पूर्व भारतीय जनता ने जो स्वप्न संजोए थे वे स्वतन्त्रता-प्राप्ति के साथ ही भरभरा कर बुरी तरह टूट गए। स्वतन्त्रा के पश्चात् व्यक्ति की सोच में बहुत अधिक बदलाव आया। अतः प्रेमचन्द कालीन आदर्शवादिता और नैतिक उपदेश अब कहानी में मूल्यहीन से लगने लगे। अब कहानीकार जीवन को अधिक निकट से महसूस करने लगे। कहानी में यथार्थ जीवन की प्रस्तुति और विद्रोह की भंगिमा को स्वर मिला। स्वातन्त्र्योत्तर कहानी में अब 'कामू, सात्त और काफ्का के नाम तथा विचार भी जुड़ गए। डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल के अनुसार "प्रेम चन्दोत्तर हिन्दी कहानी की व्यक्ति चेतना को नयी कहानी ने वृहत्तर और सामाजिक बनाया। नये कहानीकार ने मानवीय सम्बन्धों से और उसकी नियति से अपने को प्रतिबद्ध किया और इस तरह उसे नवीन जनतांत्रिक संस्कृति के विकास से बड़ा बल मिला। उसने पहले की कहानी जिसमें मनुष्य और मनुष्य को विभाजित करके देखा था, ठीक उसे स्वातन्त्र्योत्तर नये कहानीकार ने मानवीय यथार्थवाद को उसकी सम्पूर्णता में देखना चाहा।"[१]

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी वास्तव में अपने स्वरूप के वस्तुपरक अनुभव की ही कहानी है। स्वतन्त्रता के पश्चात हिन्दी कहानीकार ने समाज के विभिन्न क्षेत्रों में आए परिवर्तनों को अत्यन्त निकट से देखा और उसे पूरी यथार्थता के साथ अभिव्यक्त भी किया। जहाँ स्वतन्त्रतापूर्व की कहानी कल्पना पर आधारित थी, वहीं अब यह कहानी यथार्थ को व्याख्यायित करती है। यथार्थ की अभिव्यक्ति नयी कहानी से ही प्रारम्भ हो गयी थी। स्वतन्त्रतापूर्व कहानी, कहानी-कला

---

१. हिन्दी कहानियों की शिल्प-विधि का विकास : डॉ० लक्ष्मी नारायण लाल, पृ० 333

के मूल्यों को लेकर चलती थी, अब जीवन-मूल्यों को लेकर चलती है। अब कहानी ने कल्पना और आदर्श का पूरी तरह परित्याग कर दिया और यथार्थ को ही अपनी अपना परिपाद्य विषय बनाया। कमलेश्वर के अनुसार- "स्वातन्त्र्योत्तर कहानी ने झूठ के तत्त्व को काटकर एक नयी दिशा की ओर प्रयाण किया है। इस झूठ को काट फेंकने में उन केन्द्रीय पात्रों का बहुत महत्त्व है। जिन्होंने कहानी की इस मुक्ति को अनजाने ही योग दिया।"[१] १९५०-६२ तक जन-सामान्य की विशेष रुचि राजनीति में न थी और न ही वह इससे प्रभावित ही होता था किन्तु अक्टूबर सन् १९६२ में चीन के प्रथम युद्ध ने देश के स्वाभिमान को कुचलकर रख दिया और १९६४ में पंडित जवाहर लाल नेहरू की मृत्यु ने इस युग की समाप्ति कर भारतीय चेतना को झकझोर कर मोहासक्त स्थिति से जगाया। फिर १९६५ में हुए भारत-पाक युद्ध में भारतीयों ने पाकिस्तान से विजय प्राप्त कर भारतीय जन-मानस को अभूतपूर्व आत्म विश्वास से तो भर दिया, किन्तु १९६६-६७ में पड़ा भीषण अकाल और उसके उपरान्त जीवन बद से बदत्तर होता गया। टिकट वोट, भ्रष्टाचार अवसरवादिता, स्वार्थान्धता ने गहरी अव्यवस्था पैदा कर दी जिससे राजनीतिक वातावरण प्रदूषित होता गया। २० अगस्त, १९६९ में श्री वी०वी० गिरि को राष्ट्रपति बनाया गया जिससे भारतीय राजनीति को एक सुदृढ़ आधार मिला। दिसम्बर १९७१ में हुए भारत-पाक युद्धों में बंगला देश का अभ्युदय भी हमारी विजय का द्योतक रहा किन्तु इन युद्धों ने भारतीय जन-जीवन पर अपना गहरा प्रभाव डाला एवं साहित्य भी इस प्रभाव से अत्यधिक प्रभावित हुआ। युद्ध कालीन एवं युद्धोत्तर कालीन परिस्थितियों ने देश के आर्थिक ढाँचे को चरमरा दिया। इसके साथ ही १९७४-७५ में राजनीतिक अव्यवस्था भी अपनी चरम सीमा पर पहुँच गयी थी। असंतुष्ट हुयी जनता लगातार हड़ताल, जुलूस, घेराबंदी तोड़-फोड़ पर उतारु हो गयी इससे निपटने के लिए देश में पहली बार २६ जून, १९७५ में आपात स्थिति घोषित की गई, जिसके परिणामस्वरूप समाज में चारों ओर भ्रष्टाचार, बेईमानी, लूट-मार भाई-भतीजावाद, निरंकुशता, अवसरवादिता के कारण

---

१. नई कहानी की भूमिका : कमलेश्वर, पृ० ९१

जनता में असंतोष व आक्रोश की स्थिति पैदा हो गई थी। १९७७ में चुनाव हुए जिसमें सामान्य जनता ने राजनेताओं को अचम्भित कर दिया। इन्दिरा गाँधी की सत्ता समाप्त कर दी गई। इस तरह कांग्रेस का शासन जो तीस वर्ष से चला आ रहा था समाप्त हो गया। जनता ने 'जनता-सरकार से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति की कामना की। २४ मई, १९७७ में मोरारजी देसाई प्रधानमंत्री बने किन्तु जनता ने तब वास्तव में यह जाना कि सरकार किसी की भी हो। सभी अपनी स्वार्थ सिद्धि में लगी रहती हैं। उन्हें जनता के दुख-दर्द, तकलीफों से कोई सारोकार नहीं। १९७९ के निर्वाचन में इन्दिरा गाँधी पुनः सत्तारुढ़ हुयीं किन्तु जनता का कोई विशेष उद्धार नहीं हुआ। स्थिति बद से बदत्तर हो गयी। समाज का प्रत्येक व्यक्ति कुण्ठाओं, आर्थिक तंगी, विसंगतियों से ऐसा जकड़ा था जिससे मुक्ति का उपाय उसे सूझ नहीं रहा था। इन सब स्थितियों ने व्यक्ति को जिस भयावह निर्मम यथार्थ के दर्शन कराए उसी भोगे हुए यथार्थ को साठोत्तरी कथाकारों ने व्यंग्य कहानियों के परिप्रेक्ष्य संदर्भ में अभिव्यक्त किया। "युग की यथार्थ स्थिति का सही चित्रण यदि कहीं मिल सकता है तो वह है, व्यंग्य कहानियाँ। इनमें अपने युग की समस्त सीमायें, सम्भावनायें और यथार्थ सिमट आया है।"[१] साहित्य समाज से निरपेक्ष नहीं रहता बल्कि उसके सापेक्ष एवं सहगामी होता है। बल्कि यों कहा जा सकता है कि साहित्य समाज का दर्पण है। १९४७ में हम स्वतन्त्र हुए और एक नए युग का आरम्भ हुआ। परिवर्तन भी अनायास नहीं होता। सन् ६० के बाद की कहानियाँ धीरे-धीरे रोमानी धरातल से निकलकर यथार्थ की भूमि में विचरण करने लगी। साठोत्तरी कहानियों में रचनाकारों की दृष्टि महत्वपूर्ण रही है इसलिए इन कहानियों में भाषा भावुकताविहीन है और सच्चाई की निर्ममता उजागर हुई है। इसके पूर्व कहानियों में भावुकता प्रधान थी किन्तु इस युग के कहानीकारों ने इन सबसे विद्रोह कर उस यथार्थ को अपना कथ्य बनाया जो उनके चारों ओर प्रसृत था, इसलिए सन् साठ के बाद का कहानीकार कहानी चित्रित नहीं करता अपितु जीता है अपनी समस्त शक्तियों के साथ व अपनी कमज़ोरियों के साथ।

---

१. साठोत्तर हिन्दी कहानी : डॉ० विजय द्विवेदी, पेज १०१.

रवीन्द्र कालिया की 'बड़े शहर का आदमी' महेन्द्र भल्ला की 'एक पति के नोट्स' राजेन्द्र यादव की 'जहाँ लक्ष्मी कैद है' तथा कमलेश्वर की 'खोयी हुई दिशाएँ' आदि कहानियों में इसी निर्मम यथार्थ को दर्शाया गया है। वास्तव में साठोत्तरी कहानियों के जन्मदाता ने परतन्त्र भारत को बहुत ही कम समय के लिए देखा और जब होश संभाला तो उसने अपने चारों ओर एक ऐसा कलुषित वातावरण देखा जहाँ भ्रष्टाचार, भुखमरी, गरीबी, बेरोजगारी, लूटमार, जातिवाद, स्वार्थान्धता, नौकरशाही, अवसरवादिता का ही बोलबाला पाया। इससे उसके मन-मस्तिष्क में असंतोष, आक्रोश, कुण्ठा, अवसाद, क्षोभ ने जन्म लिया, जो उनकी रुखी व सपाट भाषा के माध्यम से दृष्टिगोचर होती है।

ख. साठोत्तर कहानी की स्वरूप-मीमांसा

सन् ६० के बाद की कहानियों में यथार्थ को जिस नए संदर्भ में प्रस्तुत किया गया वह पाँचवें दशक की कहानियों से अपने आपको सर्वथा भिन्न करती है। पाँचवें दशक की कहानियों में नायक प्रधान कहानियाँ लिखी जाती थीं जिसमें भावुकता केन्द्र में थी। लेखक की दृष्टि सामाजिक मूल्यों की खोज करती थी वही साठोत्तरी कहानियों में भयावह यथार्थ को चित्रित किया गया। साठोत्तरी कहानियों में अनुभूति की प्रमाणिकता पर विशेष बल दिया गया। लेखक अपने भोगे हुए यथार्थ को ज्यों का त्यों कहानी के माध्यम से व्यक्त करता है। रवीन्द्र कालिया भी कहते हैं, "आज कहानी बयान करने के लिए नहीं लिखी जा रही, वर्तमान से भिड़ने के लिए लिखी जा रही है।"[१]

साठोत्तर कहानियों में परम्परागत कथा तत्वों तथा काल्पनिक तत्वों की अवहेलना की गयी साथ ही अनुभव की प्रमाणिकता पर अधिक जोर दिया गया। इसमें बीते हुए कल या आने वाले कल की सुखद कल्पना न थी बल्कि जो भोगा गया यथार्थ वर्तमान की धरा पर जीया गया है। "सन् ५० से प्रारम्भ होने वाले दशक में नायक की खोज हो रही थी। साठोत्तरी कहानी में

---

१ समकालीन कहानी : युग बोध का संदर्भ, डॉ० पुष्पपाल सिंह, पेज ७३

इसके विपरीत नायक गौण हो गया और भोगा हुआ यथार्थ व्याख्यायित होने लगा।"[१] इन कहानियों में अतीत से मुक्त वर्तमान में जीने के आग्रह का स्वर था। वह पाखण्ड शोषण, अन्याय व अत्याचार पर वज्राघात करती है। कमलेश्वर की कहानी 'बयान' इस बात का प्रमाण है।

सन् ६० के पूर्व की कहानियों में जहाँ सामाजिक मूल्यों, मान्यताओं व आदर्शों की खोज थी वहीं साठोत्तरी कहानियों में इसका सर्वथा लोप हो गया और मिथ्या आदर्शों और मूल्यों के प्रति निर्मम भाव है। साठोत्तरी कहानी भयावह सत्य से जूझने के कारण व्यक्ति की चेतना को झटका देती है अर्थात उसे सोचने पर मजबूर करती है। परिणामस्वरूप साठोत्तरी कहानी का जो रूप भाषा व शैली की दृष्टि से सामने आया है वह पूर्ववर्ती कहानी से काफी भिन्न व नवीन था। इन कहानियों में समसामयिक जीवन की विपन्नताओं व विडम्बनाओं को मुखर किया है। अब कहानियाँ घटना प्रधान न होकर अनुभव प्रधान हो गयी। आगे क्या होगा जैसी प्रवृत्ति या उत्सुकता अब पाठकों में न रही और न ही समय बिताने या मनोरंजन का साधन या यात्रा में पढ़ी जाने वाली कहानियाँ ही रहीं बल्कि बौद्धिक गम्भीरता को धारण किए हैं। इसमें भविष्य के प्रति न कोई आशा है और न ही विगत के प्रति मोह डॉ० सूबेदार राय के अनुसार "कहानी लेखकों के विचार सूत्र अब सुलझे हुए दीखते हैं। परम्परा के प्रति अब उनमें कोई लगाव नहीं है।"[२] तथापि साठोत्तरी कहानी सुलझे हुए जीवन मूल्यों की तलाश में है जिसमें रवीन्द्र कालिया, अमरकांत, मार्कण्डेय, शानी, सुधा अरोड़ा, कमलेश्वर, से रा० यात्री, शैलेश मटियानी आदि साठोत्तर कहानीकार प्रयासरत हैं।

---

१. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी का विकास- डॉ० सूबेदार राय, पेज ५४.

२. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी का विकास- डॉ० सूबेदार राय, पेज ५४

इस प्रकार साठोत्तरी कहानियों में निम्नलिखित प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं-

१. यथार्थ की अभिव्यक्ति

साठोत्तरी कहानीकारों के यथार्थ से साक्षात्कार कर लेने के कारण उनकी लेखन शैली में भी विशेष अंतर आया। इसके पूर्व कहानीकार काल्पनिक कहानियाँ लिखा करता था या कहानीकार अपने को जीवन स्थितियों से अलग रखकर उन्हें देखता था। आज वह भोगे हुए यथार्थ (जीवन) को ही कहानी में देखता है जीता है। इनमें यथार्थ की प्रमाणिकता का आग्रह अधिक है। वह आडम्बर, शोषण, अत्याचार पर तीखा प्रहार करती है। कमलेश्वर की कहानी 'बयान' इसका साक्षात प्रमाण है।

साठोत्तरी कहानी का मूल स्त्रोत ही यथार्थ है। साहित्य में यथार्थ की अभिव्यक्ति बीसवीं शताब्दी की देन है। साठोत्तरी कहानीकारों ने उस यथार्थ को अपना लक्ष्य बनाया जो समाज में उनके चारों ओर फैला था। ये कहानीकार यथार्थ को चित्रित ही नहीं करते अपितु वे कहानी के माध्यम से जीते हैं। वे जिस जीवन यथार्थ को भोग रहे थे, जिस यंत्रणा को वे झेल रहे थे उससे अलग वे अपना साहित्य कैसे लिख सकते थे। इसलिए उन्होंने सच्चाई को पूरी तरह अपनी कहानियों में लिखा 'जिंदगी और जोंक', 'डिप्टी कलक्टरी' (अमरकान्त) राजा निरबंसिया (कमलेश्वर) ''चीफ की दावत'' (भीष्म साहनी) आदि कहानियाँ जीवन के उस कटु यथार्थ का सामना कर आडम्बरों का खण्डन करती है। इसी प्रकार 'रक्तपात' (दूधनाथ सिंह) 'सुख' (काशी नाथ सिंह) 'नौ साल छोटी पत्नी' (रवीन्द्र कालिया) 'संबंध' (ज्ञान रंजन) 'एक पति के नोट्स' (महेन्द्र भल्ला) आदि कहानियों में यथार्थ का भयावह चित्रण है।

२. मूल्यों में परिवर्तन

वर्तमान समय में मूल्यों में द्रुतगति से परिवर्तन हो रहे हैं और यह परिवर्तन तकनीकी विज्ञान प्रौद्योगिकी में हुए तीव्र विकास का परिणाम है। डॉ० पुष्पपाल सिंह के अनुसार ''मानव

सभ्यता के विगत ५०० वर्षों का इतिहास साक्षी है कि अब मूल्यों में परिवर्तन बड़े द्रुतगामी रहे हैं इस परिवर्तन की प्रक्रिया इतनी तेज है कि अब किसी युग में मूल्य पिछले युग के जीवन-मूल्यों से ही अलग नहीं दिखायी देते।"[१] मूल्यों में परिवर्तन के साथ-साथ आज संबंधों में भी बिखराव दिखायी दे रहा है। माँ-बाप, भाई-बहन, पति-पत्नी सभी संबंध अर्थ पर आधारित होकर रह गए हैं। आज पश्चिमी सभ्यता को अपनाकर कुछ लोग आधुनिकता का ढोंग करते हैं और इस कारण व्यक्ति की जीवन-दृष्टियों में भी फर्क आया। व्यक्ति आत्म केन्द्रित होता जा रहा है, संयुक्त परिवार टूटकर एकल परिवार में परिवर्तित हो रहे हैं। संयुक्त परिवार के विघटन का एक बहुत बड़ा कारण परिवार के सदस्यों का रोजगार की तलाश में बाहर जाना और फिर वहीं बस जाना है। संयुक्त परिवारों के टूटने का आत्मिक पारिवारिक संबंधों पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। आज माँ-बाप, भाई-बहन, भाई-भाई आदि के रिश्ते खोखले प्रतीत होने लगे। साठोत्तरी कहानी इन मानवीय मूल्यों को बड़ी बारीकी से जाँचती-परखती है। सम्बन्धों की दरकन, टूटन, तनाव, जटिलता व जबरदस्ती सम्बन्धों को ढोने की लाचारी आदि की स्थितियों का यथार्थ चित्रण रवीन्द्र कालिया, ममता कालिया, ज्ञानरंजन, से०रा, यात्री, भीष्म साहनी, कृष्णा अग्निहोत्री, निरुपमा सेवती आदि ने किया है। इन्होंने अपनी 'साग-मीट' (भीष्म साहनी), 'वही आग वही गंगाधर' (शिव सागर मिश्र) 'बिल्लियाँ' (मृणाल पाण्डेय) 'सात सौ कोट' (सुधा अरोड़ा) कहानियों में व्याप्त असंतोष, भ्रष्टाचार को बड़ी कुशलता से व्यक्त है। इन कहानियों में नैतिक मूल्यों का सर्वथा अभाव है।

३. कहानियों का चिंतन प्रधान होना

साठोत्तरी कहानियों ने जीवन की भयावह सच्चाई का खुलकर सामना किया और उसे चित्रित किया जिससे आम आदमी ने अपने आपको कहानी के समीप पाया। अब कहानी गम्भीर चिन्तन है वह व्यक्ति को उद्वेलित करती है उसे सोचने पर मजबूर करती है इस तरह कहानी समय बिताने या मनोरंजन का साधन नहीं रही वह व्यक्ति की चेतना को झकझोरती है।

---

१. समकालीन कहानी : युगबोध का संदर्भ- डॉ० पुष्पपाल सिंह, पेज ९१.

४. व्यवस्था के प्रति बढ़ता आक्रोश

आज व्यक्ति की कथनी और करनी में बहुत फर्क आ गया है। वह कहता कुछ है और करता कुछ और है। सरकार, राजनेता चुनाव के पहले बड़े-बड़े वायदे करते हैं। जनता को बहला-फुसलाकर वोट कमा लेते हैं और जब सत्ता की बागडोर उनके हाथ में आ जाती है तो निरीह जनता की परेशानियों, दुख-दर्द तकलीफों से उन्हें कोई सारोकार नहीं होता। वे पीछे पलटकर भी उन्हें नहीं देखते। ऐसी स्थिति में जनता के मन में व्यवस्था के प्रति तीव्र आक्रोश भर उठता है। यही आक्रोश कहानी में व्यंग्य के माध्यम से प्रतिबिम्बित होता है। डॉ० पुष्पपाल सिंह के अनुसार "परिवेश के प्रति अतिशय जागरूकता और जीवन जीने की अतिशय जटिलता ने युवा मानस को अपने चारों ओर की भ्रष्ट व्यवस्था के प्रति अत्यंत रोषशील बना दिया।"[१] स्वयं आज किसी भी दफ्तर, संस्था यहाँ तक की व्यवस्था की रक्षक पुलिस, स्कूल, कॉलेज, विश्वविद्यालय जहाँ भी जाइए भ्रष्टाचार का ही बोलबाला दृष्टिगोचर है मिल-मजदूर और मालिक तथा कल-कारखानों की भ्रष्ट व्यवस्था का घिनौना रूप साठोत्तरी कहानी खुलकर सामने लाती है, जिसे पढ़कर यही आभास होता है कि आज का व्यक्ति भले ही वर्तमान व्यवस्था पर आक्रोश व्यक्त करता है परन्तु वह इस दमघोंटू माहौल में जीने को विवश है। जीवन जीने की विषम स्थितियाँ जहाँ व्यक्ति के जीवन में नैराश्य का परिचय देती हैं वहीं कहानी के पात्र इस नैराश्य के कारण जीवन के प्रति अनास्था नहीं रखते वे आशावादी हैं। श्रीलाल शुक्ल, के०पी० सक्सेना, संतोष खरे, कृष्ण चराते, उषाबाला, लक्ष्मीकांत वैष्णव,.अजातशत्रु, बालेन्दु, शेख तिवारी, हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, रवीन्द्र नाथ त्यागी, केशव चन्द्र वर्मा, नरेन्द्र कोहली, श्रीकांत चौधरी, अशोक शुक्ल, सत्यप्रकाश सेंगर, सुबोध कुमार श्रीवास्तव आदि कहानीकारों ने इस विषय पर खूब जमकर प्रहार किया। सतीश जमाली, जितेन्द्र भाटिया आदि ने अपनी कहानियों में सशक्त चित्रण किया है।

---

१. समकालीन कहानी : युगबोध का संदर्भ- डॉ० मुष्पपाल सिंह, पेज ९७.

५. आर्थिक विपन्नता

साठोत्तरी कहानी के प्रारम्भिक कथा दौर से ही आम आदमी आर्थिक तंगियों से गुजर रहा था। हेतु भारद्वाज के अनुसार "आर्थिक कठिनाइयों से संघर्ष स्वातन्त्र्योत्तर व्यक्ति की नियति बन गयी है। स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी ने आर्थिक विपन्नता से जूझती मानव प्रतिमा को अपना प्रतिपाद्य बनाया है।"[१] 'दोपहर का भोजन' (अमरकान्त), 'राजा निरबंसिया' (कमलेश्वर) तथा 'डिप्टी कलक्टरी' (भीष्म साहनी) 'मांस का दरिया', 'दूध और दवा' (मार्कण्डेय), 'दिन' (शानी) आदि कहानियाँ व्यक्ति की आर्थिक विपन्नताओं का सशक्त चित्रण प्रस्तुत करती है। १९६२ में चीनी आक्रमण तथा १९६५ एवं १९७१ में हुए पाकिस्तानी आक्रमण से भारतीय अर्थव्यवस्था बुरी तरह चरमरा गई। इन युद्धों ने भारतीय अर्थव्यवस्था पर बुरा-प्रभाव डाला और व्यक्ति की जिन्दगी बद से बदत्तर होती गई। अतिवृष्टि, अनावृष्टि, अकाल आदि से देश में खाद्य पदार्थो का संकट उत्पन्न हो गया। आर्थिक विशृंखलता तेजी से सुरसा के मुँह की तरह फैल रही थी। देश में व्याप्त मँहगाई, करों की मार ने आम आदमी की जिन्दगी में भूचाल ला दिया था। रुपए के गिरते हुए मूल्य ने विनिमय पद्धति को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। कुल मिलाकर देश आर्थिक दृष्टि से विपन्न हो गया था। गरीब और गरीब तथा अमीर और अमीर होता गया। बढ़ती शिक्षित बेरोजगारी ने नवयुवकों को अवसाद और नैराश्य से भर दिया। साठोत्तरी कहानियों में अर्थतंत्र की विषम समस्याओं को बड़ी गहराई से विचार किया है। डॉ० श्रीमती सुमन मेहरोत्रा के अनुसार- "आर्थिक कठिनाइयों से संघर्ष, आज की आधुनिक कहानियों में भी मूल स्वर के रूप में सुनाई देता है।"[२] अकाल, भूखा और सूखा पर काशीनाथ सिंह, कमलेश्वर, प्रभु जोशी माहेश्वर, सुदीप, से०रा० यात्री शिव प्रसाद सिंह, अमृत राय, मधुकर सिंह ने कई सशक्त कहानियाँ लिखीं। काशीनाथ सिंह की 'अधूरा आदमी' का तो अंत ही दुनिया के मजदूरों से होता है। इसी प्रकार शिवप्रसाद सिंह की 'इन्हें भी

---

१. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी में मानव प्रतिमा- हेतु भारद्वाज, पेज ५४.

२. हिन्दी कहानियों में द्वन्द्व- डॉ० श्रीमती सुमन मेहरोत्रा, पेज ५०.

इतंजार हैं', इब्राहिम शरीफ की 'जमीन का आखिरी टुकड़ा', सुभाष पंत की 'लाश', से०रा० यात्री की 'अंधेरे का सैलाब', 'व्यवस्था', मधुकर सिंह की 'हरिजन सेवक', मोहन राकेश की 'पाँचवे माले का फ्लैट', मिथिलेश्वर की 'न चाहते हुए भी' यशपाल की 'आतिथ्य' में आर्थिक विषमता, सामाजिक अन्याय का चित्रण है।

आर्थिक विपन्नता और विषमता ने व्यक्ति के मन में असुरक्षा का भाव भर दिया। इससे उसके सामाजिक और पारिवारिक सम्बन्धों पर भी असर पड़ा। अर्थाभाव के कारण इच्छा न पूरी हो सकने पर व्यक्ति कुण्ठाओं, निराशाओं से भर गया। आज अर्थ ही व्यक्ति का मापदण्ड बन गया है। अर्थ के आधार पर ही उसे इज्जत, सम्मान मिलता है या समाज में नकारा जाता है

६. संयुक्त परिवारों में विघटन

आर्थिक दबावों ने पारिवारिक विघटन में तीव्रता पैदा कर दी। संयुक्त परिवार टूटकर एकल परिवार के रूप में उभर कर सामने आए जिससे व्यक्ति स्वार्थी होता गया। मानवीय व आत्मीय सम्बन्ध अर्थ पर आधारित हो गए। अब व्यक्ति अपने एकल परिवार तक ही सीमित होकर रह गया उसकी सोच-समझ, जरूरतें बस अपने परिवार के सदस्यों की परिधि के इर्द-गिर्द चक्कर लगाती रहती हैं व्यक्ति की सोच उससे आगे बढ़ ही नहीं पाती। डॉ० पुष्पपाल सिंह के अनुसार- "संयुक्त परिवार की इकाइयाँ टूटकर छोटे-छोटे परिवार अस्तित्व में आए जिसके परिणाम स्वरूप व्यक्ति आत्म केंन्द्रित होता चला गया।"[१] आज माँ-बाप, भाई-बहन जैसे खून के रिश्तों का भी कोई मूल्य नहीं रह गया। व्यक्ति अपने स्वार्थ व अर्थाभाव के कारण इन रिश्तों से भी कटता नजर आ रहा है आज ये रिश्ते ढकोसला मात्र बनकर रह गए हैं। ज्ञानरंजन की दूसरी कहानी 'पिता' तथा उषा प्रियम्वदा की 'वापसी' में पारिवारिक विघटन का यथार्थ स्थिति का यथार्थ चित्रण देखने को मिलता है। मोहन राकेश का 'क्वार्टर' भीष्म साहनी की 'दावत' राजेन्द्र यादव की 'बिरादरी बाहर', 'जहाँ लक्ष्मी कैद हैं', कृष्णा सोवती की 'मित्रों मरजानी', कमलेश्वर की 'दुनिया बहुत बड़ी है',

---

१. समकालीन कहानी : युगबोध का संदर्भ- डॉ० पुष्पपाल सिंह, पेज ९२.

रामकुमार की 'एक स्थिति' मन्नू भण्डारी की 'यही सच है', फणीश्वर नाथ रेणु की 'विघटन के क्षण' यथार्थ की स्थिति का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है।

७. जनसंख्या में वृद्धि

१९६० के बाद शिक्षा-सुविधाओं का विकास हुआ। औद्योगीकरण की प्रक्रिया भी तेज हुई साथ ही साथ जनसंख्या में आशातीत वृद्धि हुई। जनसंख्या वृद्धि उत्पादन साधनों की विकास दर से कहीं ज्यादा थी। परिणामस्वरूप समाज के पास उपलब्ध साधन कम पड़ने लगे। जनसंख्या वृद्धि के साथ बेरोजगारी तथा मंहगाई जैसी समस्या ने विकाराल रूप धारण कर लिया। शिक्षित नवयुवकों में निराशा असुरक्षा, कुंठा, अवसाद ने जन्म ले लिया। डॉ० पुष्पपाल सिंह के अनुसार- "वर्तमान जीवन की बहुत बड़ी विसंगति देश में फैली शिक्षित बेरोजगारी है। बेरोजगारी का एक पक्ष यह भी है कि उचित व्यक्ति को समुचित रोजगार नहीं मिलता है।"[१] सिम्मी हर्षिता की 'चक्रव्यूह', रामदरश मिश्र की 'एक रात', प्रतिभा वर्मा की 'टूटना', मधुकर सिंह की 'फिलहाल' आदि कहानियाँ अशिक्षित बेरोजगारों पर करारा व्यंग्य है।

८. नैतिकता में परिवर्तन

वर्तमान युग की नैतिकता विगत युग की नैतिकता से पूर्णतः पृथक है। पहले लोगों का यह मानना था कि इस जन्म के कर्म, पाप-पुण्यों को दण्ड के रूप में भुगतना पड़ेगा। आज मान्यताएँ बदल गई हैं वह ऐसी किसी मान्यता को नहीं मानता और वह किसी भी गलत काम को करने में जरा भी हिचकिचाता नहीं है। कहानी के माध्यम से साठोत्तर में आए इस परिवर्तन को बड़ी निर्ममता से दिखाया है। यौन-संबंधों में खुलापन, पति-पत्नी के चिन्तन में आधुनिकता, पत्नी-बहन या पुत्री द्वारा अर्थोपार्जन पर सकारात्मक दृष्टिकोण आदि इसी के परिणाम स्वरूप दृष्टिगोचर होते हैं। रामदरश मिश्र के अनुसार- "पारिवारिक संबंधों के अतिरिक्त सामाजिक जीवन में हमारे

१. समकालीन कहानी : युगबोध का संदर्भ- डॉ० पुष्पपाल सिंह, पेज ११७.

संबंध बहुत बने-बिगड़े हैं। स्त्री और पुरुष में एक मित्र भाव का सम्बन्ध उपजा है।"[१] स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों के बदलाव का एक मुख्य कारण स्त्री का जीविकोपार्जन में सक्रिय भाग लेना है।

९. गाँव से शहर तक फैला कथ्य

साठोत्तरी कहानियों का कथ्य गाँव से शहर तक फैला है। चाहे शहर हो या गाँव जीवनगत संघर्ष चारों ओर फैला है। बदलते जीवन मूल्यों, विज्ञान प्रौद्योगिकी ने जीवन जीने की पद्धति को काफी हद तक बदल दिया जिससे कहानीकार की मनः स्थितियों में भी परिवर्तन आया। वस्तुतः युवा पीढ़ी शिक्षा ग्रहण करने गाँव से शहरों में आयी और आजीविका कमाने हेतु शहरों में बस गई। इस प्रकार ये अपनी गाँव की भूमि से पूरी तरह कट गए और शहरों में नौकरी मिलने पर पूरी तरह से जुड़ते चले गए। इन युवा कहानीकारों ने अपने को गाँव और शहरों की समस्याओं से घिरा पाया जिसे अपनी कहानियों में इन्हें वर्णित किया। गाँव के कहानीकारों में फणीश्वर नाथ रेणु, शैलेश मटियानी, मार्कण्डेय, शिव प्रसाद सिंह, और भैरव प्रसाद गुप्त आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

वास्तव में आज शहरी जीवन अनेक विसंगतियों से ग्रस्त है। नगरों के विकास के साथ-साथ शहरी व्यक्ति की आकांक्षाएँ भी बढ़ रही हैं।

आज नगरों में जीवन जीना दूभर होता जा रहा है। व्यक्ति भीड़-भाड़ में रहते हुए भी अकेला होता जा रहा है। डॉ० विजय द्विवेदी के अनुसार- "सन् साठ के बाद की कहानी ने यह जान लिया है कि नगर जीवन की भीड़-भाड़ में खोया हुआ होकर भी आदमी नितान्त अकेला है। परिवेश के दबाव के कारण उनमें मानसिक विकृतियों, ग्रन्थियों और कुण्ठाओं ने जन्म ले लिया है।"[२] मानसिक जटिलताएँ, मानसिक तनाव दिन पर दिन बढ़ता ही जा रहा है। विदेशी शराब, बड़ी-बड़ी पार्टियों में घूमते-नाचते लोग सम्पन्न वर्गों जैसा जीवन जीने की लालसा ने व्यक्ति में

---

१. हिन्दी कहानी : अंतरंग पहचान- रामदरश मिश्र, पेज ७३.

२. साठोत्तर हिन्दी कहानी- डॉ० विजय द्विवेदी, पृ० ६७.

कुण्ठा, घुटन, अवसाद, आक्रोश, विद्रोह को जन्म दिया। सैक्स, गरीबी, व्यस्तता, दमघोटू माहौल, नैतिक मूल्यों का पतन, पाश्चात्य संस्कृति की नकल, अंग्रेजियत का माहौल, मशीनी प्रेम आदि नागरीय जीवन के कथ्य हैं। "महानगर के जीवन के उसके हुए परिवेश में यंत्रणा, भय अकेलेपन और व्यर्थता का अहसास जितना तीव्र और सघन है, उतना गाँव के परिवेश में नहीं। हालाँकि गाँव और शहर की संक्रान्त चेतना का गहरा संवेदनात्मक बोध इधर की कहानियों में हुआ है। महानगरीय तनाव और चेतना और व्यक्ति का एहसास एकायामी न होकर बहुविध और जटिल होता है।"[१]

१०. यौन-संबंधों का चित्रण

साठोत्तरी कहानियों में यौन-सम्बन्धों का जितना खुला चित्रण हुआ है उतना इसके पहले कभी नहीं हुआ। श्रीकांत वर्मा के अनुसार- "यौन सम्बन्धों को नगरीय जीवन की विभिन्न स्थितियों में देखा जा सकता है। नगरों में काम तुष्टि खुले आम की जा रही है।"[२] श्रीकांत वर्मा की 'खेल का मैदान' में कामतुष्टि की यथार्थ अभिव्यक्ति हुयी है। डॉ० वीरेन्द्र सक्सेना ने 'काम-सम्बन्धों का यथार्थ और समकालीन हिन्दी कहानी' पर तो शोध कार्य तक किया है। यौन-सम्बन्ध विवाहोत्तर हो या विवाह पूर्व आज नवयुवक-नवयुवती इसे पाप या अधर्म नहीं मानते बल्कि इसे एक शारीरिक भूख समझकर सामान्य व्यवहार के रूप में लेते हैं। कृष्ण बलदेव वेद के अनुसार- "नगरों में कुमारी शिक्षिता स्वच्छन्द यौनाचार की ओर धीरे-धीरे अग्रसर हो रही हैं।"[३] कृष्ण बलदेव वेद की 'दूसरे के बिस्तर' में सिन्धिया को विनोद के साथ कामतुष्टि करते हुए दिखाया गया है। विवाहपूर्व सम्बन्ध को चिन्हित करने वाली कहानियाँ हैं- 'दो जरूरी चेहरे' (ममता कालिया), 'पचास सौ पचपन' (रवीन्द्र कालिया), 'प्रेमिका' (रघुवीर सहाय), 'खाली' (रमेश बक्षी),

---

१. आधुनिक और समकालीन रचना संदर्भ : डॉ० नरेन्द्र मोहन, पेज १०२.

२. 'खेल का मैदान' संवाद कहानी संग्रह- श्रीकान्त वर्मा, पेज ९४.

३. मेरी प्रिय कहानियाँ- कृष्ण बलदेव वेद, पृ० ७०.

'बात की बात' (महीप सिंह), 'कितनी कैदें' (मृदुला गर्ग), 'दृष्टियों के बाद' (निर्मला वर्मा), 'स्टिल लाइफ' (राजकमल चौधरी), 'प्रार्थना' (रमेश बक्षी) आदि।

११. नारी का स्वतन्त्र अस्तित्व-व्यक्तित्व

आधुनिकीकरण तथा बढ़ते हुए आर्थिक दबाव में घर की नारी ने बाहरी दुनिया में कदम रखा उसे जीविका हेतु बाहर निकलना पड़ा। अब वह घर-बाहर की जिम्मेदारियों से जूझती पायी गई। उसे आधुनिकता तथा पुराने संस्कारों की दुविधा में रहते हुए असमंजस की स्थिति का सामना करना पड़ा। अविवाहित होते हुए भी आज की स्त्री को अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए स्वावलम्बी बनाने के लिए समाज की परेशानियों से टक्कर लेना पड़ा। नारी को घर से बाहर दूसरे पुरुषों के साथ काम करना पड़ा उसकी सोच में परिवर्तन आया जिसका प्रभाव सामाजिक व पारिवारिक सम्बन्धों पर भी पड़ा।

साठोत्तरी कहानी में नारी का जो रूप उभरा है वह यथार्थपरक होते हुए अकादमिक अधिक है। हेतु भारद्वाज के अनुसार- "पहले पत्नी की सत्ता पति के साथ ही समाहित थी किन्तु अब पत्नी अपने आप में स्वतन्त्र तथा अलग व्यक्तित्व है। इस परिवर्तन के कारण पति-पत्नी सम्बन्धों में एक असन्तुलन आया है।"[१]

पुष्पा बंसल कहती हैं "साठोत्तरी कहानी द्वारा सर्जित नारी कृपण नहीं है, कायर नहीं है असमर्थ नहीं है और अकर्मण्य नहीं है। वह केवल शोषण को स्वीकार नहीं करती।"[२] किन्तु आज नारी स्वतन्त्र अस्तित्व-व्यक्तित्व को मात्र दिखाने का ही प्रयास कर रही है। वास्तव में वह अपने चारों ओर के परिवेश से जुड़ना तो चाहती है पर संस्कार और परम्परा से बधी होने के कारण वह पूर्ण स्वतन्त्र नहीं हो पा रही यह नारी के लिए एक विडम्बनापूर्ण स्थिति है। मोहन राकेश की

---

१. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी में मानव प्रतिमा- हेतु भारद्वाज, पेज २३०.

२. साठोत्तर हिन्दी कहानी- डॉ० विजय द्विवेदी, पेज ९१.

'मिसपाल', अमरकान्त की 'एक असमर्थ हिलता हाथ', छेदीलाल गुप्त की 'आइना', जैसी कहानियाँ इस तथ्य को प्रमाणित करती हैं।

१२. पति-पत्नी के सम्बन्धों में परिवर्तन का चित्रण

विगत समय में स्त्री का कार्य क्षेत्र चारदीवारी के भीतर ही सीमित था किन्तु समय के साथ-साथ आर्थिक तंगी, नारी शिक्षा में स्वतन्त्रता के कारण स्त्री को चारदीवारी लांघकर आजीविका के लिए बाहर निकलना पड़ा परिणामस्वरूप नारी आर्थिक दृष्टि से तो स्वावलम्बी हो गयी किन्तु इसे स्त्री-पुरुष (पति-पत्नी) के सम्बन्धों में पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा जिसे साठोत्तरी कहानीकार ने अपनी लेखनी के द्वारा इसे व्यक्त किया है। श्री राम दरश मिश्र के अनुसार- "पति-पत्नी के सम्बन्धों में तेजी से विघटन आ रहा है। यह विघटन कहीं मानसिक उदासीनता तक ही सीमित रहता है और कहीं क्रिया में परिणित हो जाता है। पति-पत्नी के सम्बन्धों के विघटन का कारण अर्थ तो है ही उसके समान व्यक्तित्वों की टकराहट भी है।"[१] मोहन राकेश की 'सुहागिनें' चित्रा मुद्गल की 'लाक्षागृह', उषा प्रियम्बदा की 'जिन्दगी और गुलाब के फूल' प्रतिभा वर्मा की दूरस्थ तथा पुष्पा बंसल की 'क्रास और क्रूसीफिकेशन', अचला शर्मा की (बूभरैग), ओमप्रकाश निर्मल की 'बेंत के निशान' आदि कहानियाँ पति-पत्नी के सम्बन्धों पर आधारित कहानियाँ इस बात का प्रमाण है कि साठोत्तरी कहानियों में पति-पत्नी के सम्बन्धों पर द्रुतगति से परिवर्तन हुआ।

१३. सम्बन्धों में बदलता दृष्टिकोण

धर्म तथा नैतिक मान्यताओं में परिवर्तन, औद्योगिकीकरण तथा आधुनिकीकरण, आचार-विचार में परिवर्तन, संयुक्त परिवार का विघटन, रोजगार की तलाश में गाँव से नगर या एक जगह

---

१. हिन्दी कहानी [illegible] अंतरंग पहचान- रामदरश मिश्र, पेज ७३.

से दूसरी जगह जाना और वहीं बस जाना, अर्थाभाव के कारण घर की स्त्री का बाहर निकलना आदि कारणों से पारिवारिक व आत्मीय सम्बन्धों पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा। डॉ० पुष्पपाल सिंह के अनुसार- "प्रेम, विवाह, परिवार में माँ-बाप, भाई-बहन, पिता-पुत्र-पुत्री, मित्र आदि के जितने भी सुदृढ़ सम्बन्ध हो सकते थे, उन सबके सम्बन्ध में हमारी सोच और चिन्तन प्रक्रिया में एक बड़ा भारी अन्तर दिखायी देता है।"[१] आज सारे सम्बन्ध अर्थप्रधान हो गए हैं। आर्थिक स्थिति के आधार पर सम्बन्धों में प्रगाढ़ता या शिथिलता (टूटन) दिखायी पड़ती है। साठोत्तरी कहानियों में सम्बन्धों पर आधारित कई कहानियाँ लिखी गईं। रवीन्द्र कालिया, दूधनाथ सिंह, रामेश बक्षी, ज्ञानरंजन, काशी नाथ, महेन्द्र भल्ला, गिरिराज किशोर, से० रा० यात्री, ममता कालिया, निरूपमा सेवती आदि कहानीकारों ने सम्बन्धों की टूटन, दरकन पर सशक्त कहानियाँ लिखी हैं।

१४. अस्तित्व रक्षा एवम् उत्कट जिजीविषा

स्वातन्त्र्योत्तर भारतीय अपने अस्तित्व के प्रति अत्यधिक चिन्तित है। स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी अस्तित्व बोध की छटपटाहट की कहानी है। आज का व्यक्ति अस्तित्व की रक्षा के लिए अपने से ही जूझ रहा है। यह जूझना कहीं भी आरोपित मूल्यों से जुड़ा हुआ नहीं है, फिर भी मानवीय अर्थ में जुड़ने की सापेक्षता में यह मूल्यवत्ता का ही एक स्तर प्रतीत होता है। योगेश गुप्त की कहानी 'एन्क्लोजर' में यंत्ररूपी दैत्य के पंजे में पड़े हुए आदमी की निरीहता, भय, घुटन का निर्मम व यथार्थ चित्रण दृष्टिगोचर हुआ है। "कारखाने में काम करने वाले घनश्याम की चेतना पर गहरा दबाव है। ऊँचे-ऊँचे मकानों से घिरी एक अन्धी गली है जिसमें वह रहता है। बाहर निकलने का कोई रास्ता नहीं है। उसका दम घुटने लगा सामने आसमान को छूती इमारतों की एक कतार। पीछे आसमान को छूती हुई इमारतों की कतार। तो क्या वह कैद है, बाहर नहीं जा सकता, पर साढ़े छः बजे हैं और कारखाने तो उसे जाना ही है।"[२]

---

१. समकालीन कहानी : युगबोध का संदर्भ- डॉ० पुष्पपाल सिंह, पेज ९१.

२. इन्क्लोजर-योगेश गुप्त (आधुनिकता ओर समकालीन रचना सन्दर्भ : डॉ० नरेन्द्र मोहन, पेज ९४.)

जिन्दगी में चारों ओर वह चाहे जितने संकटों से ग्रस्त हो, फिर भी वह जीने के मोह को नहीं छोड़ पाता। जिन्दगी के अभावों से जूझता हुआ भी व्यक्ति जीना चाहता है। उसकी जिजीविषा का रहस्य आखिर क्या हो सकता है। वे जिन्दा जिन्दगी से चिपके रहना चाहते हैं। किसी भी प्रकार की विकलांगता उसके जीने की इच्छा को कुचल नहीं सकती। इस प्रक्रिया से यही एकमात्र तथ्य स्पष्ट होता है कि व्यक्ति कटा हुआ होकर भी कटा हुआ नहीं है। वह अपने या किसी के द्वारा बनाए हुए जालों में फँसता है, फिर उसे तोड़ता है, फिर फँसता है। यही उसकी नियति है। धर्मवीर भारती की 'गुलकी की बन्नों' में इसी स्थिति का यथार्थ चित्रण देखने को मिलता है। गुलकी अपने जिन्दगी में हर तरफ से परेशान है, फिर भी जीना चाहती है। जिस पति ने उस पर इतने जुल्म किए हैं, अन्त में वह उसी के पास चली जाती है।

वास्तव में जीवन जीना इतना आसान नहीं है। फिर भी मनुष्य अपने आभावों को भुलाकर एक दूसरे ही लोक को, जहाँ दुख का अस्तित्व नहीं है, कल्पना करता हुआ जीता है। वह जिन्दगी जीने के अनेक आकर्षण और बहाने ढूँढ लेता है। फणीश्वर रेणु की 'तीसरी कसम', 'लाल पान की बेगम', 'आदिम रात्रि की महक' आदि कहानियाँ व्यक्ति की इसी स्थिति का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करती हैं। व्यक्ति घोर अभावों में जीने की अपेक्षा मर जाना ज्यादा उपयुक्त समझता है। वह ऊबकर आत्महत्या करना चाहता है परन्तु जिन्दगी को जीने का आकर्षण उसे आत्महत्या भी नहीं करने देता और वह चाह कर भी मर नहीं पाता। ज्ञानरंजन का कथानक आत्महत्या के लिए तैयार होता है। उसे लगता है कि मृत्यु बहुत कठिन है फिर भी वह अपने दुख को मृत्यु से भी भयंकर मानकर मरने को तैयार हो जाता है। "वह आत्महत्या से पहले एक मर्मस्पर्शी तथा चुनौती भरे वक्तव्य को लिखना चाहता है जिसमें अपनी आत्मा की तड़फड़ाहट व्यक्त हो ओर समाज के प्रत्येक क्षेत्र की अभिव्यक्ति हो। उसने वक्तव्य लिखा, लिखकर लिखे को दोहराया। दोहराते समय वह अपने अन्दर

एक वृहद खालीपन का असर बढ़ता हुआ अनुभव करने लगा। उसे लगा कि जिस अस्तित्व को उसने अभी थोड़ी देर पूर्व रौंद देना चाहता था, वह सामने के वक्तव्य में खिलखिला रहा है।"[१]

१५. एकाकीपन

वर्तमान सामाजिक जीवन में व्यक्ति आधुनिकता तथा पुरातनता के झूले में झूल रहा है। एक तरफ तो व्यक्ति आधुनिकता को ग्रहण करते हुए परम्परागत मूल्यों से मुक्त हो रहा है परन्तु नवीनता को पूरी तरह आत्मसात नहीं कर पारहा हैं ऐसा लगता है कि उसके सामने जिन्दगी का कोई मूल्य ही नहीं हैं हर मूल्य उसके ही व्यक्तित्व को दबाना चाहता है। अतः व्यक्ति मूल्यहीन बन गया है जिन्दगी का संताप उसे कहाँ ले जाएगा ये उसे भी नहीं ज्ञात है। ऐसे में वर्तमान समय का व्यक्ति अपने अतीत से तथा भविष्य से भी कटा हुआ है आज का प्रत्येक व्यक्ति एक एकाकीपन के अभिशाप को सह रहा है। डॉ० देवेश ठाकुर के अनुसार- "नारी ही नहीं, पुरुष को भी अकेलेपन ओर संत्रास तथा तनाव से पीड़ित होना पड़ा है। विज्ञान की प्रगति ने हमारी संवेदना को ऐसा बना दिया है कि व्यक्ति की चिन्ता के आयाम सीमित होकर रह गए हैं। वह आर्थिक वैयक्तिक हो गया है। उसकी यह वैयक्तिक प्रकृति उसे अकेलेपन के क्षेत्र में दूर तक खींचकर ले गयी है और वहाँ उसने पाया है वह अकेला छूट गया है। इस अकेलेपन को लेकर वह शेष समाज से अपने को कटा हुआ महसूस करता है।"[२] रमेश सत्याथी की 'लैम्प पोस्ट' इसी प्रकार एकाकीपन की व्यथा का सशक्त चित्रण प्रस्तुत करती है। कमल, देवन अपने भाई को पढ़ा-लिखाकर एक बड़ा अफसर बनाती है और स्वयं अकेली रह जाती है। अनाथ सी टी०वी० का शिकार बनकर उसे कोई पूछता तक नहीं, वह अकेले जिये जा रही है। गाँव में उसकी स्थिति बड़ी अटपटी-सी है। "यह गाँव है, जहाँ न खेत खलिहान हैं, न माल-मवेशी हैं, बाग-बगीचे, चिड़िया, फसल कुछ नहीं, बस मनुष्यों का रेगिस्तान है। कमल कमान के पिछवाड़े का लैम्प-पोस्ट देख

---

१. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी में सामाजिक परिवर्तन : डॉ० भैरूलाल गर्ग, पेज ६३-६४.

२. हिन्दी कहानी का विकास : डॉ० देवेश ठाकुर, पेज १३६-१३७.

रही है तो उसे लगता है वह अकेली नहीं है।"[1] इसी प्रकार निर्मल वर्मा की कहानी 'जलती झाड़ी' में भी रिक्तता-बोध का यथार्थ चित्रण देखने को मिलता है। आधुनिक युग का व्यक्ति ऐसी स्थिति से गुजर रहा है, जहाँ वह प्रत्येक क्षण अकेलेपन का अनुभव करता है। उसका जीवन एक मशीन की तरह चल रहा है जिसमें वह स्वयं एक मशीनी पुर्जा बन गया है। अपने सुख के लिए उसने वैज्ञानिक खोजें की और अभिमान से भरकर वह कहता है उससे बड़ा कोई नहीं है। "किन्तु उसका यह अभिमान मर गया है। आज स्वनिर्मित युग में वह स्वयं पराया है। उसके सामने कोई दिशा नहीं है, जिधर मुड़कर उसको कुछ तसल्ली हो जाये। चारों तरफ मृत्यु-संत्रास-भय अकेलेपन अजनबीयत का बोध उसे निगल रहा है।"[2]

१६. प्रेम एवम् काम सम्बन्धों में बदलती मानसिकता

प्राचीनकाल से काम जीवन और साहित्य का शृंगार रहा है। काम की अति प्रभुसत्ता स्वीकार कर जीवन और साहित्य में नई क्रान्ति लाने का श्रेय प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक सिगमण्ड फ्रायड को है। फ्रायड के कारण ही आज काम को मानव जीवन के प्रमुख जैविक और मानसिक प्रेरक के रूप में स्वीकार किया जाने लगा है। जीवन के स्वस्थ विकास के लिए काम विषयक गोपनीयता को तिलांजलि दी जा रही है। स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी में काम-सम्बन्धों के विभिन्न रूपों को चित्रित किया गया है नयी पीढ़ी सेक्स को लेकर सीमा का भी पर्याप्त अतिक्रमण कर बैठती है। सेक्स प्रधान कहानियों का एक ऐसा दौर आया कि ऐसा आभास होने लगा कि यही नयी कहानी है। आज काम-सम्बन्धों की चर्चा पहले की तरह रहस्यपूर्ण ढंग से न होकर साधारण बातों की तरह खुले आम होती है। राजेन्द्र यादव की कहानी 'एक खुली हुई सांझ' में इस स्थिति का यथार्थ चित्रण हुआ है। मधु, शिवेन के समक्ष निःसंकोच भाव से स्वीकारती है कि उसने हुगली के किनारे सम्भोग होते देखा था। बाकायदा सम्भोग हो रहा था। मैं देर तक देखती रही। मुझे कुछ नहीं लगा।[3]

---

१. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य ओर ग्राम्य-जीवन : विवेकी राय, पेज ३४३.
२. कहानी की संवेदनशीलता सिद्धान्त और प्रयोग : डॉ० भगवानदास वर्मा, पेज २४१.
३. एक खुली हुई सांझ 'इतना' तथा 'अन्य कहानियाँ'-राजेन्द्र यादव, पेज ८०.

आज स्त्री में काम-विषयक छुई-मुई वाली स्थिति नहीं रही। पुरुष को मित्र की पत्नी के समक्ष इस तरह की बात करते समय कोई संकोच नहीं होता। ममता कालिया की कहानी 'अपत्नी' में इस स्थिति की यथार्थ अभिव्यक्ति हुई है। राजेन्द्र यादव की 'प्रतीक्षा', मार्कण्डेय की 'भाई', निर्मला वर्मा की 'अन्तर', श्रीकान्त वर्मा की 'जख्म' और 'शवयात्रा', गिरिराज किशोर की 'रिश्ता', महेन्द्र भल्ला की 'दीक्षा', गंगा प्रसाद विमल की 'अपना मरना', नरेन्द्र कोहली की 'सार्थकता', कमलेश्वर की 'माँस का दरिया' और 'एक अश्लील कहानी' आदि कहानियों में काम-सम्बन्ध के विभिन्न कारणों को रूपायित किया गया है।

आज स्त्री-पुरुष के प्रेम-सम्बन्धों में भी पर्याप्त अन्तर आया है। आज प्रेम सम्बन्ध मात्र सौन्दर्य और भावुकता के परिणामस्वरूप स्थापित नहीं होते। लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय के अनुसार "पिछले पच्चीस वर्षों में प्रेम सम्बन्धी भावना ने अनेक रंग बदले हैं। इस काल के पूर्व प्रेमचन्द या यशपाल की प्रेम कहानियों में जो भावुकता लक्षित होती है, वह इस काल में दिखाई नहीं देती। अब प्रेम सम्बन्धों में भी स्वार्थ, वासना, उद्देश्य तथा अपने-अपने व्यक्तियों के परस्पर उन्मूलन की सफलता या असफलता लक्षित होती है।"[१]

(ग) निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम संक्षिप्त में कह सकते हैं कि-

१. साठोत्तर कहानियों में सामान्य व्यक्ति की जिन्दगी में जीवन जीने की विषम आर्थिक स्थितियों, आत्मिक सम्बन्धों पर अर्थ तंत्र के बढ़ते दबाव और खण्डित पारिवारिक सम्बन्ध, टूटते संयुक्त परिवार नौकरी पेशा नारी की समाज में बदलती स्थिति, नारी का आधुनिकता और पुरातनता का द्वन्द आदि का गहन परिचय मिलता है।

---

१. द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय उद्धत स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी में सामाजिक परिवर्तन : डॉ० भैरूलाल गर्ग, पेज ८६.

२. १९६२ में चीनी आक्रमण से भारत के राष्ट्रीय गौरव पर गहरा आघात लगा जिसे कहानी के माध्यम से दर्शाया गया।

३. १९६५ व ७१ में पाकिस्तानियों के साथ युद्ध के कारण समाज की आर्थिक स्थिति में विशृंखलता उत्पन्न हुयी। समाज में जीने की स्थिति बद से बदत्तर होती चली गयी। इस अधिक विषमता, अर्थाभाव पर आधारित कई कहानियाँ लिखी गयीं।

४. अर्थतंत्र पर पड़ते दबाव के कारण सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक सम्बन्धों पर गहरा प्रभाव पड़ा।

५. पारिवारिक सम्बन्धों पर पड़ते प्रभाव के फलस्वरुप संयुक्त परिवारों का विघटन, परस्पर सम्बन्धों में परिवर्तन आया।

६. नारी का परिवर्तित रूप सामने आया। आधुनिक नारी ने परम्परा के बन्धन को तोड़ा और चारदीवारी से बाहर निकलकर अपने नए रूप में सामने आयी।

७. गरीबी, मँहगाई, बेरोजगारी, भाई–भतीजा वाद, रिश्वतखोरी आदि में बढ़ोत्तरी हुई।

८. आधुनिकीकरण, औद्योगिकीकरण, महानगरीयकरण की प्रक्रिया में भी वृद्धि होती गयी।

९. मार्क्सवादी चिन्तन ने देश के बौद्धिक चिन्तन पर प्रभाव डाला, भौतिकवाद के प्रति प्रभाव दृष्टिगोचर हुआ।

१०. साठोत्तर कहानी जीवन के यथार्थ को अपूर्व साहस के साथ सामना करती है किन्तु जीवन की समस्याओं का कोई सार्थक निदान नहीं ढूँढती।

११. वर्तमान समय में बढ़ती मंहगाई, बेरोजगारी, शोषण, भाई–भतीजावाद, रिश्वतखोरी आदि के कारण कहानीकार भी आक्रोश से भर उठा है जिसे उसने अपनी कहानी के माध्यम से निकाला है।

१२. साठोत्तर कहानियों में आर्थिक विशृंखलता के कारण टूटते सामाजिक, राजनैतिक व पारिवारिक सम्बन्धों की व्याकुलता को दर्शाया है। आज व्यक्ति स्वार्थी होता जा रहा है। वह आत्मकेन्द्रित होकर अपने में ही खोता जा रहा है उसे दूसरे के घर में लगी आग से कोई सारोकार नहीं रहा। इन सब परिस्थितियों को साठोत्तर कहानी में बखूबी दर्शाया है।

इस प्रकार साठोत्तर कहानी व्यक्ति व समाज की सही पहचान करने का दावा करती है।

"द्वितीय अध्याय"
साठोत्तर हिन्दी कहानी का प्रवृत्तिगत विकास

अध्याय २- साठोत्तर हिन्दी कहानी का प्रवृत्तिगत विकास

पृष्ठभूमि

(क) स्वातन्त्र्योत्तर भारतीय परिवेश एवं कहानीकार

(ख) नयी कहानी : एक आन्दोलन

(ग) १९५०-६५ के बीच का दौर

(घ) साठोत्तर कहानी : नयी कहानी से भिन्न पहचान के बिन्दु

(ड.) साठोत्तर कहानी का प्रवृत्तिगत विकास

(च) आठवें दशक से आज की कहानी

साठोत्तर हिन्दी कहानी का प्रवृत्तिगत विकास

पृष्ठभूमि

१५ अगस्त सन् १९४७ को स्वतन्त्रता की घोषणा के पश्चात्, आरम्भ हुई भारत की स्थिति आन्तरिक रूप से विशृंखलित रही। भारत जाति के आधार पर दो भागों में बँट गया जिसके परिणामस्वरुप पाकिस्तान से हिन्दु यहाँ पर आने लगे और यहाँ से मुसलमान पाकिस्तान जाने लगे। इस स्थान परिवर्तन से इतने लोगों की हत्या, लूटपाट आदि की गई कि उसके स्मरण मात्र से हृदय में सिहरन सी होती है। देश के विभाजन के फलस्वरुप शासकों को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा। इस समस्या से शरणार्थियों को बसाने की समस्या सर्वप्रमुख थी। २६ जनवरी १९५० को भारत का संविधान बना और भारत वास्तविक अर्थों में सर्वोच्च सत्तायुक्त स्वतन्त्र देश कहलाने का अधिकारी हुआ। सरदार वल्लभ भाई पटेल की समस्त बिखरी हुई रियासतों को संगठित करके एक संघ राज्य संघ की नींव डाली। इसी समय पंचवर्षीय राज्यों की भी व्यवस्था की गई। जिसके माध्यम से देश के अभावों को एक-एक करके दूर करने का प्रयत्न किया गया। इन पंचवर्षीय योजनाओं में बेकारी को दूर करने के लिए कृषि, विद्युत शक्ति, उद्योग धन्धों आदि के विकास को प्राथमिकता दी गई।

यद्यपि स्वतन्त्रता प्राप्ति के प्रारम्भिक वर्षों में भारत की सामाजिक व्यवस्था अत्यन्त शोचनीय थी। पाकिस्तान से आए हुए अनेक व्यक्ति बेघर हो गये थे। चारों ओर लूट-खसोट, हत्या और हाहाकार मच गया था। परन्तु धीरे-धीरे इस स्थिति में सुधार हुआ और प्रजातांत्रिक शासन

प्रणाली होने के कारण यह स्थिति सुधरती गई। भारतीय संविधान में समाज के प्रत्येक व्यक्ति को समान अधिकार दिए गए। वर्ण व्यवस्था की रुढ़ियों को समाप्त करके पिछड़ी जातियों तथा अछूतों को सुधारने का भरसक प्रयास किया। नारी की स्थिति पुरुष के समान गौरवशाली हो गई। इन्दिरा गाँधी, विजय लक्ष्मी पण्डित, राजकुमारी अमृता कौर आदि अनेक स्त्रियों ने उच्च पद को प्राप्त कर नारी जाति को सम्मानित किया। प्राचीन रूढ़ियाँ पूर्णतया टूट गईं। समाज में शिक्षा का गौरव बढ़ा और निम्न वर्गो को उच्च वर्गों द्वारा अपना लिए जाने से इनके प्रति घृणा की भावना भी छूट गई। इस प्रकार पूँजीपति मध्यम वर्ग और निम्न वर्ग एक-दूसरे के निकट आते गए और जनता को अपने सामाजिक स्तर को ऊँचा उठाने में पर्याप्त सफलता मिली।

श्रमिकों तथा किसानों की दशा को सुधारने के लिए भारतीय शासन व्यवस्था ने पर्याप्त ध्यान दिया। जमींदारी प्रथा समाप्त कर दी गई और श्रमिकों के कार्य के घंटे निश्चित कर दिए। जिसके कारण वे अपने अधिकारों के प्रति सजग हो गए। सरकार ने पूँजीपतियों की आय पर भारी कर लगाकर उनकी आर्थिक दशा में संतुलन स्थापित करने का भरपूर प्रयास किया जिसके कारण निम्न वर्ग की आर्थिक दशा अथक परिश्रम से आज कुछ सुधर जरूर गई है लेकिन मध्यम वर्ग की आज भी उपेक्षा हो रही है। सरकार के भारी करों के दबाव से मँहगाई के वशीभूत हो वह काफी हद तक विवश हो गया है। ये सारी परिस्थितियाँ साठोत्तरी हिन्दी कहानी की पृष्ठभूमि के रूप में अपनी अलग पहचान बनाती हैं।

विज्ञान की उन्नति के साथ ही भारतीय संस्कृति भी आधुनिक रंग में रंगती जा रही है। जनता अब केवल आध्यात्मिकता को महत्व न देकर यथार्थवादी दृष्टि कोण को भी उपयोगी मानने लगी है और बौद्धिकता भी प्राचीन संस्कृति के जिस रूप में विश्लेषण के मार्ग को अपना रही थी। वह भी साठोत्तरी हिन्दी कहानी को रेखांकित करने का विनम्र प्रयास है जिसके माध्यम से अर्थ के विविध स्तर लक्षित किए जा सकते हैं।

(क) स्वातन्त्र्योत्तर भारतीय परिवेश एवं कहानीकार

देश को जहाँ स्वतन्त्रता मिली वहीं सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक दृष्टि से बिखराव भी दृष्टिगोचर होने लगा और यह बिखराव १९५० के आस-पास लक्षित हुआ। १९४७ के बाद की कहानी को मुख्यतया 'नयी कहानी' के नाम से अभिहित किया गया। "१९५०-५१ के आस-पास आधुनिक हिन्दी कहानी में जो नव उन्मेष आया, उसे 'नयी कहानी' नाम से अभिहित किया गया।"[१] स्वतन्त्रता प्राप्ति से लेकर नयी कहानी के प्रारम्भ होने तक के ७-८ वर्ष हिन्दी कहानी के लिए गत्यवरोध के वर्ष हैं।

नयी कहानी के सन्दर्भ में कमलेश्वर के अनुसार "ऐसे ही समय में जबकि पुराने लेखकों के सृजन स्रोत सूख रहे थे और नया पाठक वर्ग बदलते हुए मान-मूल्यों की अभिव्यक्ति चाह रहा था, नई कहानी का उदय हुआ।"[२]

स्वतन्त्रता के उपरान्त कहानी के तीन दौर स्पष्ट रूप से लक्षित होते हैं। सन् १९४७-६० तक की कहानी, १९६०-७० तक की कहानियाँ (साठोत्तरी कहानियाँ) और ७० से आज तक की कहानियाँ। इसी आधार पर स्वतन्त्रता मिलने के पश्चात् से आज तक कहानियों का प्रवृत्तिगत विकास दिखाने का विनम्र प्रयास किया गया है।

देश का बँटवारा हुआ, जिसके सदमें ने भारतीय जनमानस को इतना मर्माहत किया कि उसकी पीड़ा आज तक लोग नहीं भूले। कहानीकारों ने अत्यन्त मार्मिक कहानियाँ इस घटना के सन्दर्भ में लिखीं। विभाजन की घटना ने देश की अन्य भाषाओं के कहानीकारों को भी मथा। उन्होंने अपनी कहानियों में इस नारकीय घटना का उल्लेख अत्यन्त मार्मिक शब्दों में किया है। जैसे

---

१. समकालीन कहानी : युगबोध का सन्दर्भ : डॉ० पुष्पपाल सिंह, पेज ७७.

२. नयी कहानी की भूमिका-कमलेश्वर, पृष्ठ ३१.

लोचन बत्री की 'धूल तेरे चरणां दी', शेख अयाज की 'पड़ोसी' (सिंधी), गुलजार सिंह सिंधी की 'आखिरी तिनका', राजेन्द्र सिंह बेदी की 'लाजवंती' (पंजाबी) ना०ग० गोरे की 'चुल्लू भर खून : चुल्लू भर पानी' (मराठी), मनोज बसु की 'सीमांत' (बंगाली) आदि कहानियाँ। देश विभाजन के फलस्वरुप हिन्दुस्तान से पाकिस्तान जाने वाले मुसलमानों और पाकिस्तान से हिन्दुस्तान आने वाले हिन्दुओं का संहार किया गया, लोगों के जान के लाले पड़ गए। शरणार्थियों को स्थापित करने की जटिल समस्या का सामना दोनों देशों को करना पड़ा। मंतों की 'टोबा टेक सिंह' (उर्दू) तथा अन्य कहानियों में गहन मानवीय संवेदना तथा शरणार्थियों के दुःख-दर्द को परिलक्षित किया गया है। हिन्दी कहानियों में अज्ञेय की 'शरणदाता', मोहन राकेश की 'मलबे का मालिक' महीप सिंह की 'पानी का पुत्र', भीष्म साहनी की 'अमृतसर आ गया', कृष्णा सोबती की 'सिक्का बदल गया', बदी उज्जमा की 'परदेशी', विष्णु प्रभाकर की 'मेरा वतन' आदि कहानियाँ विभाजन की त्रासदी के सन्दर्भ में लिखीं गई हैं।

सन् ५२-५३ की कहानियों में मोह भंग की अवस्था को लक्षित किया गया है जिससे हर वर्ग और अवस्था के लोगों को गुजरना पड़ा। इस युग का कहानीकार इतना संवेदनशील हो गया कि उसने जीवन के हर परिवर्तन को एक भोक्ता के रूप में देखा।

"महान् कलाकार अपने युग का पूर्ण प्रतिनिधि, सम्पूर्ण व्याख्याता होता है। उसकी वाणी में युग के सारे संघर्ष, राग-विराग समस्त प्रश्न और संदेह मूर्तिमान होकर बोलते या ध्वनित होते हैं।"[१]

(ख) नयी कहानी : एक आन्दोलन

इसी मोहभंग का पहला रूप मानवीय मूल्यों के पुनर्मूल्यांकन करने की प्रवृत्ति में दिखता है जो १९५६ में 'नयी कहानी' आन्दोलन के प्रारम्भ होने के साथ परिवेशगत दृष्टिकोण के रूप में

---

१. साहित्य की चिन्ता, डॉ० देवराज, पृ० ६४.

उभरकर सामने आया। विवेकी राय के अनुसार "नयी कहानी का उदय सन् १९५० से माना जाता है"[१] जबकि देवी शंकर अवस्थी "नयी कहानी का जन्म १९५५ में 'कहानी' पत्रिका के पुर्नप्रकाशन से मानते हैं।"[२]

वास्तव में नयी कहानी का प्रारम्भ १९५० में ग्राम जीवन की कहानी से होता है जिसमें शिवप्रसाद सिंह की 'दादी माँ' का विशेष उल्लेख है। विषय वस्तु और शिल्प की दृष्टि में नवीनता के कारण नयी कहानी अपनी पूर्ववर्ती कहानी से भिन्न दिखती है। नयी कहानी अपने नए होने का बोध रखती है फलस्वरुप वह रूढ़ियों का परित्याग करती है। परम्परा के अनुपालन में उसमें मोह नहीं है। नयी कहानी निरन्तर नूतन प्रयोग करती रहती है और स्वयं परिवर्तित होती रहती है। स्वतन्त्रता के बाद हिन्दी कहानीकार ने देश में विभिन्न क्षेत्रों में आये परिवर्तनों को निकट से देखा और यथार्थ की अभिव्यक्ति की। स्वतन्त्रता पूर्व की कहानी कल्पना पर आधारित थी, अब वह यथार्थ को लेकर चलती है। नयी कहानी से ही यथार्थ की अभिव्यक्ति हुई। आज कहानी जीवन मूल्यों को लेकर चलती है जबकि स्वतन्त्रता पूर्व कहानी कहानी-कला के मूल्यों को लेकर चलती थी। स्वतन्त्र्योत्तर कहानी ने आदर्श और कल्पना का परित्याग कर यथार्थ को अपनाया। कमलेश्वर के अनुसार- "स्वतन्त्र्योत्तर कहानी ने झूठ के तत्त्व को काटकर एक नयी दिशा की ओर प्रयाण किया है। इस झूठ को काट फेंकने में उन केन्द्रीय पात्रों का बहुत महत्त्व है जिन्होंने कहानी की इस मुक्ति को अनजाने ही योग दिया। प्रेमचन्द, यशपाल, रांगेय राघव आदि के यहाँ भी इस मुक्ति का संकेत मिलता है, पर उसकी समाप्ति सन् १९५० के आस-पास ही हुई।"[३]

---

१. स्वतन्त्र्योत्तर हिन्दी कथा-साहित्य और ग्राम जीवन- डॉ० विवेकी राय, पृ० २७.

२ नयी कहानी : सन्दर्भ और प्रकृति- संपा० डॉ० देवी शंकर अवस्थी, भूमिका डॉ० देवी शंकर अवस्थी।

३. नई कहानी की भूमिका : कमलेश्वर, पृ० ९१.

इस प्रकार १९५० के आस-पास कहानीकारों की जो नयी पीढ़ी सामने आयी वह यशपाल जैनेन्द्र और अज्ञेय से सर्वथा भिन्न थी। विवेकी राय के अनुसार- "उसमें नयी प्रतिभा का नवोन्मेष था, अभिव्यक्ति के नए कोणों का उभार था और धरती से जुड़ी नेहरू युग की वह आशावादिता थी, जिसने पाठकों को आकर्षित किया।"[१]

नयी कहानी में संक्रान्त मनःस्थितियों को विशेष रूप से उजागर किया गया है- कहीं ग्रामीण सन्दर्भो में तो कहीं शहरी स्थितियों के सन्दर्भ में। "नयी कहानी के वैसे तो दो स्वर थे- शहरी और ग्रामीण किन्तु इसमें अधिकतर कहानियाँ नगरी-संस्कृति से जुड़ी हुई दिखायी पड़ती हैं।"[२] कृष्ण बलदेव वैद की कहानी 'मेरा दुश्मन' और मोहन राकेश की कहानी 'एक और जिन्दगी' में शहरी सम्बन्धों में व्याप्त जटिलता का बोध कराया गया है। जहाँ 'मेरा दुश्मन' कहानी जटिल और उलझी मनःस्थिति को कलात्मक सूक्ष्मता से उभारती है वहीं 'एक और जिन्दगी' में व्यक्ति की संक्रान्त मनःस्थिति को चित्रित किया गया है। गाँव के सन्दर्भ में लिखी गई कहानियों में रेणु की कहानी 'रसप्रिया' को लिया जा सकता है जिसमें अनुभूति की बनावट का स्तर विशेष प्रभावित करता है। जो धन गुरू की बेटी बाल विधवा समपतिया और मिरदंगिया प्रेम सूक्ष्म संवेदनात्मक धरातल पर व्यक्त हुआ है। प्रवृत्ति की दृष्टि से नयी कहानी में सबसे अधिक प्रेम कहानियाँ लिखी गई हैं। जैसे कमलेश्वर की 'रुकी हुई जिन्दगी', 'तलाश', निर्मल वर्मा की 'परिन्दे', 'अँधेरे में', मन्नू भण्डारी की 'यही सच है, राजेन्द्र यादव की 'प्रतीक्षा', दो दुःखों का एक सुख'-शैलेश मटियानी, धर्मवीर भारती की गुलकी बन्नो', शहरी के परिवेश में चित्रित प्रेम कहानियाँ हैं तथा फणीश्वर नाथ रेणु की 'तीसरी कसम', 'रसप्रिया' मार्कण्डेय की 'हंसा जाइ अकेला', शिवप्रसाद सिंह की 'नन्ही', शेखर जोशी की 'कोसी का घटवार', राजेन्द्र अवस्थी की 'एक प्रयास एक पहेली', लक्ष्मी नारायण लाल की 'राम जानकी रोड', कमलेश्वर की 'नीली झील' आदि ग्रामीण परिवेश में निहित प्रेम कहानियाँ हैं।

---

१. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कथा-साहित्य और ग्राम जीवन-डॉ० विवेकी राय, पृ० ३४.

२. साठोत्तर हिन्दी कहानी- डॉ० विजय द्विवेदी, पृ० ९४.

१९५५ के आस-पास नयी कहानी में आधुनिकता को नये प्रसंगों में ढूँढ़ने और जीवन की सार्थकता स्थापित करने की प्रवृत्ति है। यह यथार्थ पर आधारित रहने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रही है। "नगर बोध अथवा काफी हाऊसी आधुनिकता का जन्म हुआ। यह नागरिक आधुनिकता नयी कहानी की उस शुरूआत पर हावी हो गयी, जो सन् १९५०-५१ से आरम्भ हो चुकी थी।"[१]

राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, कमलेश्वर, निर्मल वर्मा, भीष्म साहनी तथा ऊषा प्रियम्वदा की कहानियों में यह आधुनिकता बोध दृष्टिगोचर होता है। स्वातन्त्र्योत्तर अर्थ चेतना के कारण सामाजिक सम्बन्धों में बदलाव आया।"अर्थ हमारे सम्बन्धों को बदलने में बहुत बड़ी भूमिका अदा करता है।"[२] इसे कहानीकारों ने अपनी कहानियों के माध्यम से अभिव्यक्त किया। जैसे ऊषा प्रियम्वदा की 'जिन्दगी और गुलाब के फूल', कमलेश्वर की 'आसक्ति' में भाई बहन का स्नेहिल सम्बन्ध टूटता नजर आता है। कमलेश्वर की 'राजा निरबंसिया', राजेन्द्र यादव की 'टूटना', मोहन राकेश की 'एक और जिन्दगी', में पति-पत्नी के सम्बन्धों में अर्थ हावी होता गया। नयी कहानी में रचनात्मक तर्क आधुनिकता के बोध के साथ किए गए अनुभव-अनुभूति की प्रमाणिकता का रहा है। डॉ० रामदरश मिश्र के अनुसार- "हर कहानीकार अपने-अपने अनुभव के अनुसार शहर, कस्बे, गाँव पिछड़े हुए वन्य या पहाड़ी अंचल के जीवन के सत्यों को और टूटते बनते जीवन मूल्यों को रूपायित कर रहा है।"[३]

सन् ६० तक आते-आते 'नयी कहानी' बँधे बंधाए अनुभूति पैर्टनों में ढलने लगी। जीवन यथार्थ का एक भिन्न रूप और नयी जीवन स्थितियाँ सामने थीं। नए कहानीकार इन स्थितियों का सामना करने में अपने आपको असमर्थ पा रहे थे। अतः इस चुनौती का सामना 'अकहानी' और 'सचेतन' कहानी में अपने-अपने ढंग से किया। अकहानी के प्रवक्ताओं के अनुसार इसका सामना

---

१. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य और ग्राम जीवन- डॉ० विवेकी राय, पृ० ३६.

२. हिन्दी कहानी अन्तरंग पहचान- रामदरश मिश्र, पृ० ७३

३. हिन्दी कहानी अंतरंग पहचान : डॉ० रामदरश मिश्र, पृ० ६०.

मूल्यों की स्थापना करने से नहीं अपितु मूल्यों की मृत्यु के प्रति तटस्थता बरतने और यथार्थ का निषेध करने से हो सकता है। 'सचेतन कहानी' के व्याख्याताओं के अनुसार इस नयी चुनौती का सामना करने के लिए जीवन-मूल्यों को एक नया परिप्रेक्ष्य देने पर बल दिया। "सातवें दशक में मानव स्थिति के चित्रण की भरमार रही है। कहीं यह चित्रण मूल्यों का निषेध करके किया गया है (अकहानी) तो कहीं मूल्यों के प्रति सचेतनता अर्जित करके (सचेतन कहानी)।"[१]

(ग) १९५०-६५ के बीच का दौर

१९५०-१९६५ की बीच हिन्दी कहानी ने काफी सफलता प्राप्त की और अपनी नयी भंगिमाओं के साथ नए परिवेश नए मानदण्ड स्थापित किए। इस दौर में सफल कहानियों की बाढ़ सी आ गई। कमलेश्वर की 'खोई हुई दिशाएँ', राकेश की 'मिसपाल', नरेश मेहता की 'अनबीता अतीत', राजेन्द्र यादव की 'टूटना', अमरकान्त की 'जिन्दगी और जोंक', निर्मल वर्मा की 'लंदन की एक रात, रेणु की 'तीसरी कसम', भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत', मार्कण्डेय की 'हंसा जाई अकेला', कृष्णा सोवती की 'आकाश के आइने में', ऊषा प्रियम्वदा की 'जिन्दगी और गुलाब के फूल' रवीन्द्र कालिया की 'बड़े शहर का आदमी', ज्ञान रंजन की फैंस के इधर उधर', दूधनाथ सिंह की 'रीछ' आदि कहानियाँ रहीं। प्रतिकूलता और विरोधों के बावजूद आज का कहानीकार जीवन सत्य की नयी दिशाओं की खोज के लिए प्रयत्नशील है। आज की कहानी का जीवन सत्य, पृष्ठभूमि और संवेदना पूर्ववर्ती कहानी से भिन्न है। आज के कहानीकार वैयक्तिक और सामाजिक जीवन के विविध रूपों को बड़ी सजगता के साथ पहचानते हैं। नरेश मेहता, अमरकान्त, मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर की कहानियाँ इस बात का स्पष्ट प्रमाण हैं। कुछ कहानीकारों फणीश्वर नाथ रेणु, डा० शिव प्रसाद सिंह, मार्कण्डेय, शैलेश मटियानी ने आंचलिक जीवन की समग्रता सहित प्रभावशाली झाकियाँ चित्रित की हैं। ऊषा प्रियम्वदा, कृष्णा सोबती, मन्नू भण्डारी, शशिप्रभा

---

१. समकालीन कहानी की पहचान : डॉ० नरेन्द्र मोहन, पृ० ५९.

शास्त्री, शिवानी, अनीता ओलक, विनीता पल्लवी, मृणाल पाण्डेय, सुधा अरोड़ा आदि कहानी लेखिकाओं ने नारी सम्बन्धी मान्यताओं और मूल्यों तथा नारी संवेदनाओं को अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त किया है।

(घ) साठोत्तर कहानी : नयी कहानी से भिन्न पहचान के बिन्दु

साठोत्तर कहानी और नयी कहानी के मध्य अलग पहचान के बिन्दु इतने सुस्पष्ट नहीं थे जितने नई कहानी और पूर्ववर्ती कहानी के बीच थे। 'नयी कहानी' के कहानीकारों में जहाँ यथार्थ के प्रति एक मोह और आग्रह नजर आने लगा वहीं साठोत्तर कहानीकारों ने यथार्थ की भयावहता से जूझने का प्रयास किया और यह बदलाव १९६० के उपरान्त ही दृष्टिगोचर होने लगा। १९६५ तक आते-आते यह बदलाव स्पष्ट रूप से लक्षित हो गया। "साठोत्तरी कथाकारों ने अपने युग के यथार्थ को पूरी तीव्रता और आक्रोश के साथ स्वीकार किया है।"[१]

सन् साठ के पहले या बाद की कहानियों के बीच यदि स्पष्ट अन्तर दृष्टिगोचर होता है तो वह केवल दृष्टि और संवेदना के आधार पर ही परिलक्षित होता है क्योंकि नयी कहानी के उपरान्त दृष्टि अधिक यथार्थपरक हो गई तथा संवेदना संपृक्त व्यक्ति की दृष्टिगोचर होती है। साठोत्तर कहानी अपने कथ्य और शिल्प की नवीनता के कारण 'नयी कहानी' से भिन्न मानी जाने लगी। 'नयी कहानी' में जीवन यथार्थ पर अधिक बल दिया जाता था। अब साठोत्तर कहानी एक नये रूप में विकसित हुई जिसमें यानना पक्ष अधिक मुखरित हुए हैं। साठोत्तर कहानी नयी कहानी की अपेक्षा आम आदमी के दुख-दर्द तकलीफों को अधिक गहराई से चित्रित करती है। साठोत्तर कहानी नये वादों, नये आन्दोलनों के द्वारा अथवा कथ्य और शिल्प की दृष्टि से स्पष्ट दिखती है

---

१. साठोत्तर हिन्दी कहानी : डॉ० विजय द्विवेदी, पृ० ९४.

तथा अपनी अलग पहचान प्रस्तुत करने का निरन्तर प्रयास करती है। साठोत्तरी कहानी ने जीवन परिवेश से उत्पन्न तथा युगीन परिस्थितियों को अभिव्यक्ति देने का प्रयास अधिक किया है। यदि देखा जाए तो साठोत्तरी कहानियाँ 'नयी कहानी' की परम्परा से पूरी तरह अलग नहीं हैं। जैसे ज्ञान रंजन की 'पिता', दूधनाथ सिंह की 'रक्तपात', 'प्रतिशोध', अनीता औलक की 'चारागाहों के बाद', तथा देवेन गुप्त की 'अजनबी की समय की गति' आदि कहानियों में नयी कहानी की ही प्रवृत्ति पायी जाती है। इसके बाद साठोत्तरी कहानियाँ नयी पीढ़ी की ओर अग्रसर हुई। इस प्रकार सातवें दशक की कहानी में छठे दशक की कहानी की अपेक्षा कुछ नवीनता है किन्तु यह नवीनता सूक्ष्म और विरल है। साठोत्तरी कहानी से नयी कहानी में अन्तर गुणात्मक न होकर मात्रात्मक है। "सातवें दशक की कहानी 'नयी कहानी' से थोड़ा भिन्न है। नयी कहानी में जहाँ सम्बन्धों के प्रति द्वन्द्वात्मक रवैया अपनाया गया है वहाँ इस दशक की कहानियों में दृष्टिगोचर होने वाला मानवीय स्थिति से "मानवीय सम्बन्ध की ओर विकास सामाजिक चेतना का विस्तार है।"[१] साठोत्तरी कहानी में भी 'नयी कहानी' की तरह कथ्य के दो आधार हैं- शहरी और ग्रामीण। चूँकि हमारे गाँव आज भी शहरों के तुलना में अधिक पिछड़े हैं उनके आन्तरिक परिवर्तन की गति मन्द है। ग्रामीण जीवन की अपनी मर्यादायें, सीमायें व समस्यायें हैं जो शहरी जीवन से भिन्न है। इसी भिन्नता को साठोत्तरी कहानीकारों ने बड़ी सजगता से स्पष्ट किया है। ग्राम्य जीवन को आधार बताकर चलने वाले कहानीकारों में फणीश्वर नाथ रेणु, श्री लक्ष्मी नारायण लाल, शिव प्रसाद सिंह, मटियानी तथा मधुकर आदि प्रमुख हैं। साठोत्तरी कहानी से पूर्व कहानीकार स्वयं को जीवन स्थितियों से अलग रखकर उन्हें देखता था या प्रविष्ट होता था। साठोत्तरी कहानीकार उन स्थितियों का सहभोक्ता है।

साठोत्तरी कहानी ने नई कहानी की कलात्मकता के विपरीत सपाट बयानी को अपनाया। नई कहानी में जहाँ नायक की प्रधान भूमिका थी वहीं साठोत्तरी कहानी में नायक केन्द्र में न होकर भोगा हुआ यथार्थ परिलक्षित होने लगा। जीवन यद्यपि इस समय अपना भयावह रूप दिखा रहा था

---

१ समकालीन कहानी-यथार्थ चेतना के धरातल – डॉ० नरेन्द्र मोहन, पृ० ४१.

जहाँ नयी कहानी जीवन के यथार्थ को कल्पित कर रही थी, वह इस भयावह जीवन स्थितियों से कोसों दूर था। इस प्रकार नयी पीढ़ी ने जिस भयावह यथार्थ को अभिव्यक्त किया, वही नयी कहानी से साठोत्तर कहानियों में स्पष्ट अन्तर लक्षित करता है।

"कहानी की नयी पीढ़ी ने जिस यथार्थ को अभिव्यक्त किया, वह नयी कहानी की मुख्य विभाजक भूमि थी।"[१]

इस प्रकार साठोत्तर कहानी नयी कहानी के विकास का अगला चरण या नयी कहानी का ही संशोधित रूप है।

(ड.) साठोत्तर कहानी का प्रवृत्तिगत विकास

साठोत्तर हिन्दी कहानी के सन्दर्भ में डा० धनंजय के विचार इस प्रकार हैं-

"जब सन् ६० के बाद हिन्दी कहानियाँ कहा जाता तब इसका मतलब होता है वे कहानियाँ जो नये यथार्थ नये परिप्रेक्ष्य और सन्दर्भ में अभिव्यक्त करती हैं।"[२]

१९६१ में काशीनाथ सिंह की कहानी 'सुख' प्रकाशित हुई तो प्रबुद्ध पाठकों ने अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए इसे अलग कहानी माना। वास्तव में युग परिवर्तन के साथ-साथ हिन्दी कहानी की प्रकृति व प्रवृत्ति में भी बदलाव आता रहा है और यह बदलती प्रवृत्ति साठोत्तर कहानियों में भी स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हुयी है। साठोत्तर कहानी अपनी पूर्ववर्ती कहानियों (नयी कहानी) से किस प्रकार भिन्न है इसकी चर्चा की जा चुकी है। अब साठोत्तर कहानियों में प्रवृत्तिगत विकास पर ध्यान केन्द्रित करना है। आधुनिक हिन्दी कहानी में बदलाव का मुख्य बिन्दु १९६२ के आस-पास दृष्टिगोचर होता है जो १९६५ में अपने आपको पूर्णतः अलग साबित करता है।

---

१. समकालीन कहानी युगबोध का सन्दर्भ- डॉ० पुष्पपाल सिंह, पृ० ८६.

२ समकालीन कहानी दिशा और दृष्टि - सपां० डॉ० धनजंय, पृ० ८९.

"कहानी में बदलाव की यह दिशा १९६० ई० के बाद ही दिखायी देने लगती है। १९६५ ई० तक पहुँचते-पहुँचते कहानी का यह बदला हुआ रूप पूरी तरह स्पष्ट हो जाता है।"[१]

१९६० के आस-पास का समय भारतीय मानस के लिए मोह भंग का समय रहा। साठोत्तरी कहानी के प्रारम्भिक दौर (१९६०-६५ ई०) के मध्य मनुष्य के जीवन की परिस्थितियाँ बड़ी तीव्र गति से बदलती चली गईं। १९६२ में चीनी आक्रमण ने देश के स्वाभिमान को कुचल दिया। चीनी द्वारा भारत की पराजय ने मनुष्य के मनोबल को तोड़ दिया, किन्तु १९६५ में भारत-पाक युद्ध के दौरान भारत की विजय ने पुनः एक अपूर्व आत्म-विश्वास को भर दिया। परन्तु भारतीय राजनीति जीवन मूल्यों और आदर्शों से निरन्तर दूर होती जा रही थी। राजनेता व्यक्तिगत स्वार्थसिद्धि को अधिक महत्व देने लगे जिसके फलस्वरूप राजनीति में स्वार्थांधता, अवसरवादिता, भाई-भतीजावाद, अनुशासन हीनता, खोखले नारेबाजी एवं दायित्वहीनता ने व्यक्ति को अकर्मण्य बना दिया। साथ ही लगातार युद्धों के कारण तथा १९६६-६७ में भयंकर अकाल पड़ने के कारण अतिवृष्टि की स्थितियों, मुद्रा स्फीति तथा मुद्रा अवमूल्यन के कारण भयंकर संकट उत्पन्न हो गया। सुरसा के समान मुँह फाड़ती मँहगाई ने व्यक्ति को अपनी आवश्यकताओं के लिए राशन की दुकानों पर लम्बी-लम्बी कतारों पर खड़ा पाया। देश में बढ़ती जनसंख्या के कारण शिक्षित बेरोजगारी में बढ़ोत्तरी होती गई, जिससे मनुष्य में आक्रोश और क्षोभ उत्पन्न होता गया। देश में वामपंथी चिन्तन को बढ़ावा मिला। चारों ओर असंतोष, कुण्ठा, अवसाद और आक्रोश का बोलबाला बढ़ता गया। इन सभी जीवन जीने की परिस्थितियों का निरन्तर विषमतर होते जाना मनुष्य के जीवन को और भी जटिल तथा संक्रान्त कर दिया। देश के नवयुवकों ने एक जुझारू मुद्रा को धारण किया। इस समय का यथार्थ 'नयी कहानी' के यथार्थ से काफी हद तक बदला हुआ था। नयी कहानी का कहानीकार जिस यथार्थ को 'कल्पित' कर रहा था वह इस युग के भयावह यथार्थ से बिल्कुल भिन्न था। साठोत्तरी कहानीकारों में भोगा गया यथार्थ व्याख्यायित होने

---

१. समकालीन कहानी : युगबोध का सन्दर्भ, डॉ० पुष्पपाल सिंह, पृ० ८६.

लगा। साठोत्तरी कहानीकारों ने प्रमाणिक यथार्थ को प्रेषित किया। "सातवें दशक की कहानी का मूल उद्देश्य कहानी कहना नहीं है, बदले हुए यथार्थ और सम्बन्धों को सम्प्रेषित करना है। इसलिए उसमें चरित्र की अपेक्षा स्थितियाँ ही प्रमुख और महत्त्वपूर्ण हैं।"[१]

जिसके फलस्वरूप साठोत्तरी कहानियों में रूप तथा भाषा-शैली में अपेक्षाकृत काफी भिन्नता आ गयी। कहानीकार ने यथार्थवादी दृष्टि से मनुष्य के बदले हुए रूपों का चित्रण किया। भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत', अमरकान्त की 'जिन्दगी और जोंक', कमलेश्वर की 'राजा निरबंसिया', मनहर चौहान की 'घर घुसरत' आदि कहानियों में जीवन यथार्थ की गम्भीर चुनौती है तथा पाखण्ड का विरोध है। जिससे कहानी का स्वरूप परिवर्तित हो गया। अब कहानियों में न कोई नैतिक मूल्य रहे न आदर्श न ही परम्परा के प्रति किसी भी प्रकार का मोह रहा। "उसमें मिथ्या आदर्शों और मूल्यों के प्रति निर्मम भाव है, वह जीवन का सफल गायक है।"[२]

मनुष्य अपनी समस्त शक्तियों व कमजोरियों के साथ जैसा का तैसा कहानी में उतरकर स्वयं आ गया। इसी कारण साठोत्तर युग में कहानी मुख्य विधा के रूप में अधिक लोकप्रिय हुयी क्योंकि सामान्य व्यक्ति ने कहानी में स्वयं को जीवित पाया। उसके दुख-दर्द तकलीफों को स्वर मिला, उसकी संगति-विसंगतियों को चित्रित किया गया। आज आदमी ने अपने को कहानी के बहुत निकट पाया। भीष्म साहनी की 'अमृतसर आ गया', मधुकर सिंह की 'भाई का जख्म', सुधा अरोड़ा की 'तानाशाही' आदि कहानियाँ आम आदमी के जीवन के विविध पक्षों को उजागर करती हैं।

वास्तव में साठोत्तरी कथाकार ने जिस परिवेश में होश सँभाला वह स्वतन्त्र भारत का परिवेश था। वह स्वतन्त्रता के मायने समझ भी न पायी थी कि उससे अपने इर्द-गिर्द भ्रष्टाचार,

---

१. समकालीन कहानी दृश्य और दृष्टि- संपादक डॉ० धनंजय, पृ० २०८.

२. साठोत्तर हिन्दी कहानी : डॉ० विजय द्विवेदी, पृ० ६३.

भाई-भतीजावाद, बेरोजगारी, गरीबी आदि का ही वातावरण पाया और यही उसने अपने कहानी-लेखन में जैसा का तैसा अभिव्यक्त भी कर दिया।

"सन् साठ के बाद कहानीकारों की पीढ़ी, वह युवा पीढ़ी है जिसने बहुत कम समय के लिए परतन्त्र भारत को देखा, जिसका पालन-पोषण और विकास स्वतन्त्र भारत में हुआ।"[१]

साठोत्तरी हिन्दी कहानी का केन्द्रीय स्वर वर्तमान में जीने व अतीत से मुक्त होने का स्वर है। साठोत्तर कहानीकार परम्परागत नैतिकता से बद्ध नहीं दिखायी देते। वास्तव में ये सत्य को अपनी आँखों से देखने पर विश्वास करते हैं। "आज का कहानीकार अपनी आँखों से देखकर, कानों से सुनकर, हाथ से छूकर परिवेश में जीवित व्यक्तियों से रचना सामग्री जुटा लेता है।"[२]

इस प्रकार साठोत्तरी कहानी अनुभव की प्रमाणिकता पर विशेष बल देती हैं वह न बीते हुए कल की कहानी है न आने वाले कल की संभावनाओं की कहानी है बल्कि यह वर्तमान में साँस लेने वाली कहानी है। यही कारण है कि इसमें कौतुहलता जैसी चीज नहीं है आगे क्या होगा जैसी प्रवृत्ति नहीं है। कहानी वर्तमान में जीने का अथक प्रयास करती है उसके लिए वह अनुभूति की सार्थक है जो उसने इसी पल प्राप्त की है। इस प्रकार साठोत्तर कहानीकार ने मूड, क्षण और अनुभव खण्ड को ही अपनी कहानियों का आधार बनाया। घटनायें कहानियों से पूरी तरह निष्कासित हो गईं। इसके स्थान पर प्रतीकात्मकता, सांकेतिक अमूर्तता ही प्रयोग में आने लगीं। इस प्रकार कहानी अब विस्तार प्रियता, लोकप्रियता और रोचकता आदि की सीमाओं को तोड़ती है। विस्तार प्रियता के स्थान पर मित कथन का प्रयोग होने लगा है तथा लोकप्रियता और सांकेतिकता का स्थान अनुभूति की प्रमाणिकता ने ले लिया है। साठोत्तरी कहानी में भाषा-शिल्प के स्तर पर अनेक तीव्रगामी परिवर्तन हुए। साठोत्तरी कहानीकार यथार्थ से परिपूर्ण होने के कारण इनकी भाषा-शैली में कहीं बनावटीपन नहीं है। भाषा का कलात्मक सौष्ठव भी नहीं है। रूखी तथा सीधी सपाट

---

१ समकालीन कहानी दिशा और दृष्टि-सम्पादक डॉ० धनंजय, पृष्ठ १९६.

२ साठोत्तर हिन्दी कहानी : डॉ० विजय द्विवेदी, पृ० ६४

भाषा को अपनाया गया है। सपाट बयानी के द्वारा साठोत्तरी कहानी अपने परिवेश से सही स्वरूप में जुड़ गई। मोहन राकेश की 'नीलामी', कृष्ण सोबती की 'बादलों के घेरे', शिवप्रसाद सिंह की 'बरगद का पेड़' जैसी कहानियाँ भाषा शिल्पगत संयम का उदाहरण है। साठोत्तर कहानीकार ने कथ्य की विशेषताओं के अनुरूप ही भाषा और शिल्प को ढाला है इसलिए इसमें शिल्पगत वैविध्य स्वतः दृष्टिगोचर होता है। भाषा के स्तर पर इस दशक के कहानीकार साहित्य और जीवन की भाषा के अन्तर को मिटाते हुए रोजमर्रा के प्रयोग की भाषा को ही कहानी लेखन में उतारते हैं। वे व्यंग्य को अपनी शैली का अनिवार्य अंग मानते हैं इसलिए निराडम्बर सत्य को रूखी भाषा में प्रस्तुत करते हैं। साठोत्तरी कहानी ने अपने रूप को सजाने संवारने के लिए बिम्बात्मकता की चिन्ता नहीं की। डा० धनंजय के अनुसार "भाषा के स्तर पर जितनी असावधानी और अनुशासनहीनता इस पीढ़ी के रचनाकारों में मिलती है, इतनी शायद पूरी हिन्दी कहानी को भी मिलाकर न हो।"[१]

साठोत्तरी कहानियों के कथ्य में विविधता दिखायी पड़ती है क्योंकि जीने वाले जीवन में विविधता है। कथ्य की दृष्टि से यह एक कोण पर टिक कर नहीं चलती है बल्कि पूरे जीवन और परिवेश को आत्मसात करती है। कमलेश्वर की कहानियाँ इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। इन कहानियों में व्यक्ति की संवेदना का व्यापक रूप उजागर होता है। इसी कारण सामाजिक बदलाव भी दृष्टिगोचर हुआ है। ज्ञानरंजन की कहानी 'रचना प्रक्रिया', दूधनाथ सिंह की 'रीछ' काशी नाथ सिंह की 'सुख' जैसी कहानियों में युगीन स्थितियों का निर्भय और तटस्थ रूप उजागर हुआ हैं इसी प्रकार श्री कान्त वर्मा की 'झाड़ी', महेन्द्र भल्ला की 'एक पति के नाट्स', अशोक अग्रवाल की 'मुट्ठी भर फेन', जैसी कहानियों में व्यक्ति का अकेलापन, समाज में व्यक्ति के टूटते बनते-बिगड़ते मूल्यों और सम्बन्धों, अजनबीपन का अहसास आदि प्रवृत्तियों को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। अतः हम कह सकते हैं कि साठोत्तर कहानीकार परिवेश और जीवन से जुड़कर युग जीवन की विविधता, व्यापकता और गहनता का पूरी संवेदना से अभिव्यक्त करता है। साठोत्तरी कहानी के

---

१. समकालीन कहानी दिशा और दृष्टि- संपा० डॉ० धनंजय सिंह, पृ० २०८.

कथ्य के दो आधार शहरी और ग्रामीण हैं। ग्रामीण अंचल के कहानीकारों में फणीश्वर नाथ रेणु, मार्कण्डेय, शैलेश मटियानी, लक्ष्मीनारायण लाल, शिव प्रसाद सिंह आदि प्रमुख हैं। हमारे गाँव आज भी शहरों की तुलना में पिछड़े हैं। गाँवों की अपनी सीमाएँ व मर्यादाएँ हैं। जो शहरी जीवन से बिल्कुल भिन्न हैं। साठोत्तर कहानीकार ने इसी भिन्नता को अपनी कहानियों में परिलक्षित किया है। रेणु जी ने भारतीय ग्रामीण जीवन को अपने अनुभवों के आधार पर अपनी कहानियों में चित्रित किया है। इनकी रसप्रिया 'तीसरी कसम' में ग्रामीण संवेदना और ग्रामीण परिवेश का सुन्दर चित्रण मिलता है। शैलेश मटियानी की 'दो दुखों का एक सुख' पहाड़ी इलाके के अत्यन्त उपेक्षित और तिरस्कृत लोगों की पीड़ा की कहानी है। 'प्रेत मुक्ति' में शैलेश ने आंचलिक भावबोध को विशेष रूप से संवारा है। 'धोड़े' में धर्म के आडम्बरों का उद्घाटन बड़े यथार्थ रूप में शैलेश जी ने किया है। राम दरश मिश्र की 'एक औरत एक जिन्दगी' तथा मधुकर सिंह की 'बाढ़' भी ग्रामीण जीवनगत नये पुराने बोध के संघर्ष और उनके यातनामय जीवन की अभिव्यक्ति है। शिवप्रसाद सिंह की 'अंधेरा सत्ता है' तथा 'दादी माँ' में ग्रामीण जीवन का सफल चित्रण देखा जा सकता है।

जिन कहानीकारों ने सन् साठ के बाद नयी कहानी की बहुआयामी परम्परा को आगे बढ़ाया उनमें ज्ञानरंजन, मार्कण्डेय, मधुकर सिंह, गिरिराज किशोर, पानू खोलिया, गंगा प्रसाद, विमल, काशी नाथ सिंह, महेन्द्र भल्ला, दूधनाथ सिंह, श्रवण कुमार, सुधा अरोड़ा, महीप सिंह कौर, अमरकान्त विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। कुछ ऐसे भी कहानीकार हैं जो अपने भोगे हुए यथार्थ से सम्बद्ध न होकर जनजीवन के बोध से जुड़कर जनजीवन का यथार्थ प्रस्तुत करते हैं। जैसे धर्मवीर भारतीय, अमरकान्त, विष्णु प्रभाकर, कमलेश्वर, भीष्म साहनी, मनहर चौहान, हिमांशु जोशी, रामकुमार भ्रमर, राम दरश मिश्र, जवाहर सिंह, निरूपमा सेवती आदि।

साठोत्तर कहानीकार को यह आभास हो गया कि नगरीय जीवन की भीड़भाड़ में जीता व्यक्ति भी नितांत अकेलापन से पीड़ित हैं। नगर जीवन में व्यक्ति का अकेलापन, समृद्धि के बीच की रिक्तता का आभास, शंका, ईर्ष्या, कुण्ठा, क्रोध आदि व्यक्ति की प्रवृत्ति ही बन गई। "अकेलेपन

के विक्षोभ में मध्यवर्गीय हिन्दी कहानीकार भी सहभागी है ओर उसने अपनी अनेक रचनाओं में पुरुष के इस अकेलेपन को और टूटन को अभिव्यक्ति दी है।"[१] आज व्यक्ति सहानुभूति को संदेह भरी नजरों से देखता है तथा प्रेम को स्वार्थ का चश्मा लगाकर देखता है क्योंकि व्यक्ति का व्यक्ति पर से विश्वास ही उठता जा रहा है। ज्ञानरंजन की 'हास्य रस', निर्मल वर्मा की 'परिन्दे' महीप सिंह की 'काला बाप गोरा बाप' कमलेश्वर की 'दूसरे' धर्मवीर भारती की 'सावित्री नं० २' आदि कहानियों में व्यक्ति की इस दुखद स्थिति को देखा जा सकता है।

सन् ६० के आसपास तो अतिशय सेक्स प्रधान कहानियों का दौर दृष्टिगोचर होता है। वास्तव में इस पीढ़ी ने यौन सन्दर्भों में गहरी रूचि दिखायी, सैक्स बुभुक्षा भड़की और कहानी 'जांघों के जंगल' में भटक गयी। शिव प्रसाद सिंह के अनुसार "यह हीन भावना हमारे बौद्धिक में सन् ६२ के चीनी आक्रमण के बाद और अधिक बढ़ी।"[२]

यौन सन्दर्भों की उल्लेखनीय कहानियाँ हैं– 'रीछ', 'रक्तपात' (दूधनाथ सिंह) 'त्रिकोण' (कृष्ण बलदेव वेदे) 'नौ साल छोटी पत्नी', 'एक डरी हुई औरत' (रवीन्द्र कालिया) 'शेष होते हुए', 'छलांग' (ज्ञानरंजन) 'आगे' (महेन्द्र भल्ला) 'अपना मरना' (गंगा प्रसाद मिल) 'आखिरी रात' (काशीनाथ सिंह) 'रिश्ता' (गिरिराज किशोर) 'क्षितिज' (दीप्ति खण्डेलवाल) 'कटघरे में साँस' (मणि मधुकर) दण्ड द्वीप (रमेश उपाध्याय) आदि।

वर्तमान समय में स्त्री–पुरुष सम्बन्धों में खुलापन आ गया है कि उन्हें किसी भी विषय पर खुलकर बातें करने में संकोच नहीं होता। यहाँ तक कि 'काम' जैसे विषयों में भी न सिर्फ पति–पत्नी बल्कि एक पुरुष व एक स्त्री भी इनसे विषय की चर्चा रहस्यपूर्ण ढंग से न करके खुले दिमाग से निःसंकोच बात करते हैं। नारी में अब काम विषयक छुई–मुई की तरह सिमटने की प्रवृत्ति समाप्त हो गई है तथा उसके दृष्टिकोण में तटस्थता आ गई है। आज पुरुष मित्र पत्नी से परिवार–

---

१ हिन्दी कहानी का विकास : डॉ० देवेश ठाकुर, पृ० १३७

२. आधुनिक परिवेश और नवलेखन– शिव प्रसाद सिंह, पृ० ९८

नियोजन के सन्दर्भ में खुलकर बात करता है। ममता कालिया की 'अपत्नी' में इस यथार्थ की अभिव्यक्ति मिलती है। हरीश की पत्नी, प्रबोध-लीला के पास जाते हैं। प्रबोध-लीला के साथ बिना शादी के रहता है, उसने पहली पत्नी से तलाक भी नहीं लिया है। "प्रबोध ने मेरी ओर ध्यान से देखा, तुम लोग सावधान रहते अब। प्रबोध ने कहा, आजकल उस डाक्टर ने रेट बढ़ा दिया है। पिछले हफ्ते हमें डेढ़ हजार देना पड़ा। कैसी अजीब बात है, महीनों सावधान रहो और एक दिन के आलस से डेढ़ हजार निकल जाय-प्रबोध बोला। प्रबोध ने कहा, बस ध्यान देने की बात है कि एक भी दिन भूल नहीं होनी चाहिए, नहीं तो सारा कोर्स डिस्टर्ब हो जाता है। नौकर शाम को चाय लाता है, मैं तो तभी गोली ट्रे में रख देता हूँ।"[१]

साठोत्तरी कहानीकारों में कुछ ऐसे भी हुए हैं जो महानगरीय जीवन को ही अपनी कहानी का कथ्य मानकर चलते हैं और वहीं तक सीमित भी हैं। कुछ कहानीकारों ने तो अतिशय सेक्स और देहवाद को उजागर करने का प्रयास किया है। कृष्ण बलदेव की 'दूसरे के बिस्तर', ऊषा प्रियम्वदा की 'मोहबन्ध', श्री कांत वर्मा की 'खेल का मैदान' तथा 'परिणय' इसी प्रकार की कहानियाँ हैं। गिरिराज किशोर की कहानियों में सेक्स है पर उसकी व्याख्या नहीं की गई है। सेक्स सम्बन्धों की जटिलताएँ, टकराव, कड़वाहट जिन्हें आज का मनुष्य पाले हुए हैं, उसका यथार्थ चित्रण इनकी कहानियों में चित्रित हुआ है।

१९६७-१९७२ तक का समय नक्सलवादी आन्दोलन के फैलाव और वैचारिक उत्तेजना का समय रहा है। इसका प्रभाव कहानीकारों में भी पड़ा और उन्होंने सामाजिक परिवर्तन की दिशा में लिखना प्रारम्भ किया किन्तु साठोत्तरी कहानियों में कहानीकार जिस भयावह जीवन को सपाट बयानी से व्यक्त कर रहे हैं उससे व्यक्ति के जीवन में आशा की किरण नहीं जागती और न उसे शक्ति ही मिलती है। साठोत्तरी कहानियाँ चाहे कमलेश्वर की 'बयान' हो जिसमें उन्होंने अन्याय,

---

१. 'अपत्नी' : ममता कालिया, 'छुटकारा' संग्रह, पृ० ४२-४३.

अत्याचार शोषण और पाखण्ड पर चोट की है या 'राजा निरबंसिया' हो, मोहन राकेश की 'मलबे का मालिक' हो या निर्मल वर्मा की परिन्दे हो सभी कहानियों में जीवन की वीभत्सता तनाव ही उजागर किया गया है। इनमें न तो हमारी जीवन चेतना का बोध कराया गया है और न जीवन को स्वस्थ व सुन्दर बनाने वाले मूल्य ही हैं। देखा जाए तो स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त किसी भी कहानीकार ने पूर्णतया आशावादी और सुनहरे भविष्य तथा प्रगति और सर्जनात्मक पक्ष को उजागर करने वाली कहानियाँ लिखी ही नहीं। कहानीकार ने यदि जीवन की विषमताओं, विसंगतियों, तनाव कुण्ठा, अवसाद, क्षोभ, पाखण्ड, शोषण अनाचार, अत्याचार, विकृति को उभारा है तो सर्वथा उपयुक्त है किन्तु सिर्फ उन्हीं पर ही सन्तुष्ट हो जाना कला, साहित्य और जीवन के प्रति अन्याय है। आज कहानीकार साहित्य के माध्यम से जीवन को कोई दिशा कोई मूल्य नहीं दे पा रहा अपितु कृत्रिमता में व्यक्ति और साहित्य इतने ओत-प्रोत हो गए हैं कि आज का कहानीकार दोहरी जिन्दगी जी रहा है। इसके बावजूद साठोत्तरी कहानीकार समन्वय का अन्वेषण कर रहा है और उसमें सम्भावनायें भी हैं। आज का कहानीकार वैयक्तिकता और सामाजिकता की ओर अग्रसर है उसकी दृष्टि स्पष्ट है। ज्ञान रंजन, दूधनाथ सिंह, राम दरश मिश्र, रवीन्द्र कालिया, सुरेश सिन्हा, सुधा अरोड़ा आदि कहानीकारों की कहानियाँ इस बात का ज्वलन्त प्रमाण हैं कि आज की कहानी सुलझे हुए और स्वस्थ जीवन मूल्यों की तलाश में अग्रसर है।

(च) आठवें दशक से आज की कहानी

सन् ७०-७२ के बाद से एक बार फिर बदलाव आया और कहानी फिर से सामाजिक प्रतिबद्धता की बात करने लगी। दलित, शोषित आज नायक के रूप में उभरने लगे हैं। "आठवां दशक प्रारम्भ होते-होते पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था का संकट गहरा होता गया। 'गरीबी हटाओ', धर्म-निरपेक्षता और समाजवाद के प्रलोभन उभरते हुए जन-असन्तोष को शान्त करने में असफल सिद्ध हुए। कहानीकारों के एक बहुत बड़े वर्ग ने आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों

का सूक्ष्मान्वेषण प्रारम्भ कर दिया।"[१] आठवें दशक के आरम्भ में मार्कण्डेय की 'बीच के लोग' मधुकर सिंह की 'बाहरसिंगा', 'पहला पाठ' विजय कान्त की 'बीच का समर', इसराइल की 'फर्क' आदि कहानियाँ गाँव से व्यापक जुझारू वापसी की ओर इंगित करती हैं। "आश्चर्य नहीं कि आठवें दशक का कथाकार अपनी ओढ़ी धरती–धर्मी ग्रामीण इकाइयों की ओर वापस लौट आवे।"[२]

आठवें दशक का कहानीकार मध्य-निम्न वर्ग की ही उपज है। इसी कारण इस दशक की कहानियों में निम्न वर्ग की व्यापक प्रतिष्ठा की गई है। इस दशक के कहानीकारों ने अपने समय के विकृत होते यथार्थ को गहराई और समझ की गम्भीरता के साथ अपनी रचनाओं में परिलक्षित किया है। इस प्रकार इस दशक की कहानी वास्तव में यथार्थ से मुकाबले की घटना है। आठवें दशक में समग्र ग्रामीण यथार्थ के प्रति ललक दिखती है। इस दशक की कहानियों में मुख्य रूप से गरीबी, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार व शोषण पर आधारित कहानियाँ लिखी गईं। क्योंकि यह सामान्य जन गरीबी, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार व शोषण के पहाड़ के नीचे देखा गया। यह हमारा दुर्भाग्य ही है कि आजादी के २५–२६ वर्षों बाद भी देश की जनसंख्या का ४० प्रतिशत से अधिक भाग आठवें दशक के आरम्भ में गरीबी रेखा के नीचे है। इस दशक में कहानीकार निर्धनता और उसके दुष्परिणामों भयानक आर्थिक दबाव के बीच छटपटाते निम्न वर्ग की दारूण स्थितियों का बेबाक उद्घाटन किया है। आठवें दशक में कहानीकार की अर्थदृष्टि और स्पष्ट तथा प्रभावशाली हो गयी है। इस दशक के रचनाकार का सारा ध्यान अर्थ के बिन्दु पर ही केन्द्रित है, इससे कहीं भी रचना के ताने–बाने, कथ्य और संवेदना को कोई क्षति नहीं पहुँचती। दृष्टि की परिपक्वता के कारण रचना और भी सार्थक एवं मँजी हुई दृष्टिगोचर होती है।

राम दरश मिश्र की 'वह' महानगर में रोजी रोटी के लिए संघर्षरत ताऊ की मौत और 'गरीबी हटाओ' के नारे को नंगा कर देती है। इसी प्रकार माहेर सिंह यादव की 'कहर आषाढ़ का'

---

१. हिन्दी कहानी : आठवाँ दशक – मधुर उप्रेती, पृ० ७९.

२ स्वतन्त्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य और ग्राम जीवन- डॉ० विवेकी राय, पृ० ३३.

तथा मिथिलेश्वर की 'बन्द रास्तों के बीच' तथा सुरेन्द्र सुकुमार की 'अगिहाने' आदि कहानियों में गरीबी का यथार्थ चित्रण हुआ है। गरीबी, आर्थिक तंगी के कारण व्यक्ति रोजगार की तलाश में इधर-उधर भटक रहा है। उसे अपने घर-परिवार को छोड़कर दूसरी जगह जाना पड़ रहा है। इसी कारण आज संयुक्त परिवार टूट रहे हैं। व्यक्ति आत्मकेन्द्रित हो रहा है। वे गंवई परिवार जो शहर नहीं जा पाते किन्हीं कारणों से उन्हें बेरोजगारी के अत्यन्त कष्टमय स्थितियों में झेलना पड़ता है। मिथिलेश्वर की 'कुसूर' में एक बेरोजगार को दिखाया है कि किस प्रकार उसे सामाजिक उपेक्षा का शिकार होना पड़ता है। बलराम की 'कामरेड का सपना' मधुकर सिंह की 'उसका सपना' तथा काशीनाथ सिंह की 'मुसइचा' आदि कहानियों में बेरोजगारी पर ज्यादा कहानी लेखन नहीं हुआ है बल्कि नवें दशक में शिक्षित बेरोजगारी को लेकर कई कहानियाँ लिखी गयी हैं। इसी प्रकार आज समाज के हर कोने में भ्रष्टाचार दिखायी पड़ता है। किसी दफ्तर, संस्था में जायें, एक चपरासी से लेकर ऑफीसर तक भ्रष्ट ही दिखायी पड़ता है। चारों तरफ भ्रष्टाचार का ही बोलबाला दृष्टिगोचर होता है। आठवें दशक में भ्रष्टाचार पर कई कहानियाँ कहानीकारों ने लिखी हैं। जैसे श्री केशव की 'आधा सूरज', बलराम की 'कामरेड का सपना' तथा पालनहारे और रामदेव शुक्ल की 'एक साल की कैद' तथा 'संकल्प' आदि कहानियाँ। भ्रष्टाचार की ही भाँति शोषण भी हर जगह चाहे वह शहर हो, गाँव हो, कस्बा हो दृष्टिगोचर होता है। फर्क इतना है कि कहीं अधिक कष्टप्रद है तो कहीं कम है। पूँजीवादी व्यवस्था में शोषण की मार हर जगह व्याप्त है। आठवें दशक में कई कहानियों ने इस शोषण के विस्तृत रूप को व्यक्त किया है। जैसे 'कहर आषाढ़ का' (मोहर सिंह यादव), मदन मोहन की 'सिलसिला', निरेन्द्र निर्मोही की 'परनोट', रामदरश मिश्र की 'कर्ज' मधुकर सिंह की 'अगुन कापड़' माहेश्वर की 'तस्वीर ट्रेन और आँखें' इब्राहिम शरीफ की 'जमीन का आखिरी टुकड़ा' सुधा अरोड़ा की 'बलवा', नीता श्रीवास्तव की 'पिंजरा' आदि कहानियाँ शोषण और यातना के विविध आयामों को स्पर्श करती दिखती हैं। इस प्रकार आठवें दशक की कहानियों ने अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप लोकप्रियता, विस्तारप्रियता, सांकेतिकता और रोचकता की

सीमा को तोड़ा और अनुभव की प्रमाणिकता तथा तीव्रता को ही स्वीकारा है। इस दशक के कहानीकार ने जन आंदोलनों को रचनाशीलता के अंग के रूप में स्वीकार किया है।

आज की कहानी में शोषित, दलित वर्ग या यो कहें 'आम आदमी' ही नायक बनकर स्वयं आ गया और यह व्यक्ति किसी प्रतिक्रिया या प्रगतिशील प्रवृत्तियों के रूप में नहीं बल्कि अपने दुख-दर्द व तकलीफों और निचली गहराइयों से उभरकर सामने आया है। ये पूरे परिवेश के सक्रिय हिस्सेदार हैं तथा अपनी जुबानी स्वयं बोलते हैं। आज की कहानी का रचनात्मक सन्दर्भ बहुत विशाल है और यह जीवन के विस्तृत परिप्रेक्ष्य को अभिव्यक्त करती है। आज कहानी संघर्षरत है और व्यावसायिकता की चुनौती का सामना करते हुए नये अनुभवों की तलाश में निरन्तर प्रयासरत हैं, क्योंकि आज का पाठक वर्ग ज्यादा जागरूक एवं सचेत है उसे भटकाया नहीं जा सकता। यद्यपि व्यवसायिक फायदे के लिए आज भी कुछ कहानीकार उन्हें भूल-भुलैया में भटका रहे हैं। फिर भी आज का पाठक वर्ग पहले की अपेक्षा ज्यादा सजग और सतर्क दिखता है। उन्हें दिग्भ्रमित करना आसान नहीं है। कन्हैया लाल नन्दन के कथनानुसार "जो आज का पाठक मेरे जेहन में है वह सुरूचि सम्पन्न और काफी जागरूक है। उसे सही और गलत की पहचान भी है। बहरहाल उसे धोखा नहीं दिया जा सकता। उसकी मानसिकता बढ़ी है। व्यापक हुई है। रूढ़ियों और परम्पराओं से हटी है। आज साहित्य उसके लिए मात्र बुद्धि विलास नहीं है।"[१]

---

१. ग्रामीण परिवेश की श्रेष्ठ कहानियाँ (संपा० डॉ० सुभद्रा) प्रश्नोत्तर कन्हैया लाल नन्दन, पृ० १७६

''तृतीय अध्याय''

अर्थ का सामाजिक एवम् सांस्कृतिक प्रभाव

अध्यान-३ अर्थ का सामाजिक एवम् सांस्कृतिक प्रभाव

१. अर्थ और मनुष्य का सम्बन्ध
(साठोत्तर कहानी की पृष्ठभूमि के सन्दर्भ में)

२. पृष्ठभूमि

३. अर्थ का प्रभाव-स्वतन्त्रता पूर्व से आज तक

४. १९६० के बाद समाज में बढ़ता आर्थिक दबाव

५. सामान्य व्यक्ति पर पड़ता आर्थिक दबाव

६. नौकरी पेशा व्यक्ति पर अर्थ का गहराता प्रभाव

७. समाज में नारी की स्थिति पर अर्थ का प्रभाव

८. निम्न स्तरीय व्यक्ति की आर्थिक विवशता

९. शिक्षित बेरोजगारी के कारण अर्थाभाव

१०. आर्थिक विपन्नता- सूखा, बाढ़ और अकाल

११. निष्कर्ष

अर्थ का सामाजिक एवम् सांस्कृतिक प्रभाव

अर्थ और मनुष्य का सम्बन्ध-

(साठोत्तर कहानी की पृष्ठभूमि के सन्दर्भ में)

अर्थ अपनी मूल सांस्कृतिक चेतना में पुरुषार्थ चतुष्टय का एक अंग है जिसका सम्बन्ध आश्रम व्यवस्था, वर्ण व्यवस्था, ऋण व्यवस्था के साथ जोड़कर मनुष्य की जीवनयात्रा के क्रम में निहित है। पुरुषार्थ चतुष्टय में धर्म के बाद अर्थ का स्वरूप विवेचित और विश्लेषित है। धर्म मनुष्य के कर्म बोध का सिद्धि पक्ष है और अर्थ उस सिद्धि पक्ष का एक अंगीभूत तत्व। तात्विक दृष्टि से अर्थ का अन्तर सम्बन्ध मनुष्य की सांस्कृतिक चेतना के साथ इसी रूप में जुड़ता है। काम और मोक्ष इसी रूप में मनुष्य के अभिप्सित अर्थ की प्रतीति कराते हैं और सृष्टि के उत्थान-पतन को रेखांकित भी।

पाश्चात्य दर्शन में अर्थ का प्रयोग भौतिक वाद के रूप में किया गया है और वहाँ वह इस संज्ञा के लिए ही 'मात्र प्रयुक्त हुआ है'। हिन्दी कहानी में अर्थ तन्त्र के भौतिकवाद के बढ़ते प्रभाव के कारण और औद्योगिकीकरण के चलते गाँव से शहर की ओर पलायन जिस रूप में सन् १९३० के बाद प्रारम्भ होता है। उसी समय से ही अंग्रेजी शिक्षा का बढ़ता प्रभाव और उसके चलते समाज की विघटन की स्थिति का उत्पन्न होना एक ऐसे घटनाक्रम की ओर हमें सोचने के लिए मजबूर करता है जहाँ से मनुष्य का अस्तित्व ही अर्थ के अस्तित्व के साथ रूपायित हो जाता है। स्वतन्त्रता के बाद राजनैतिक गठजोड़ जिस रूप में मनुष्य की अस्मिता के वाहक बने उस रूप में सांस्कृतिक विभेद बढ़ता गया और सभ्यताएँ संस्कृति के आवरण पर अपना प्रभाव डालने लगी। यद्यपि यहीं

से विश्वयुद्ध की पृष्ठभूमि भी बननी प्रारम्भ होती है। जिसमें राजसत्ता के चलते उस समय हिन्दुस्तान को भी अपनी शिक्षा का पाठ पढ़ाने का पहला अवसर प्राप्त होता है। इसी क्रम में प्रगतिशील लेखक संघ का अधिवेशन इस बात को प्रभावित करता है कि अर्थतन्त्र के चलते ही सैद्धान्तिक अर्थतन्त्र की पृष्ठभूमि में मनुष्य अपने को आकलन करने का जो प्रयास मुल्कराज आनन्द और डॉ० जहीर अहमद ने प्रगतिशीलता के नाम पर उछाले उस दृष्टि से सांस्कृतिक विभेद के कारण मनुष्य का अस्तित्व ही खतरे में पड़ता चला गया। कामायनी के प्रसाद ने इसीलिए मानवतावाद को सांस्कृतिक चेतनसत्ता का रंग देते हुए लिखा है-

"शक्ति के विद्युतगण जो व्यस्त निकल बिखरे हैं हो निरुपाय,

समन्वय उनका करे समस्त विजयनी मानवता हो जाए"।[१]

इस तथ्य का विश्लेषण करना यहाँ इसलिए भी अनिश्चित हो जाता है कि मार्क्सवाद के बढ़ते प्रभाव के कारण सांस्कृतिक विघटन की प्रक्रिया तो प्रारम्भ हुई ही सामाजिक और पारिवारिक विघटन की प्रक्रिया भी इसी काल में प्रारम्भ हो गयी थी जिसके चलते हिन्दी पाठकों को आदर्श और यथार्थ बराबर अपना रास्ता दिखाकर अपनी ओर आकृष्ट करने का स्वांग रचने लगे। नयी कविता के तर्ज पर नयी कहानी की रचना धार्मिता ने एक ओर रचनाकारों में ही नहीं अपने पाठकों में भी इस तथ्य की व्याख्या समाजवाद की कसौटी पर करना प्रारम्भ किया। यहाँ ध्यान यह रखना होगा। मार्क्स ने मनुष्य को Super Consious के रूप में देखने का प्रयास किया और वह भूल गया कि हम भी मनुष्य हैं और हमारी भी जीवन शैली है। प्रगति के स्तर पर आदर्श गौरव होता गया और सभ्यताएँ संस्कृतियों का अनुरक्षण करने लगीं। साठोत्तरी कहानी का चित्रण प्रस्तुत अध्ययन को एक नयी दिशा देता है।

---

१. कामायनी 'श्रद्धा सर्ग' – जयशंकर प्रसाद, पृ० २८.

पृष्ठभूमि

'सामाजिकता' अपने आपमें एक विशाल परिप्रेक्ष्य को समाहित किए हुए है इसके अन्तर्गत सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा आर्थिक सभी प्रकार की समस्याएँ जुड़ी हुयीं हैं। "सामाजिकता की व्याप्ति विशाल है। राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक सभी समस्याएँ सामाजिकता के साथ जुड़ी रहती हैं।"[१] वर्तमान समय में सामाजिकता से जुड़े इन क्षेत्रों में राजनैतिक और आर्थिक क्षेत्र ही ज्यादा प्रभावशाली हैं जो समाज के सभी पक्षों में अपना गहनतम प्रभाव छोड़ती हैं। बल्कि आज राजनीति भी पूरी तरह अर्थ से प्रभावित दिखती है। आज यदि देश का कोई भी व्यक्ति जो राजनीति से जुड़ा है, देश-प्रेम की बातें करता है, भाषण व नारे लगाता है, तो उसका सीधा सम्बन्ध अपनी कुर्सी बचाने या हथियाने से है जो 'अर्थ' से पूरी तरह प्रभावित है। "राजनीतिक और समाजनीति के निर्धारण में सबसे ज्यादा हिस्सा आज 'अर्थ' का है, सामाजिक सम्बन्धों और मान्यताओं की आधार भूमि भी अर्थ ही है।"[२]

राजनीति जो देशप्रेम का पर्याय थी उसने आज पूरी तरह व्यवसायिकता का चोला ओढ़ लिया है जिससे समाज में भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद, रिश्वतखोरी में बढ़ोत्तरी होती जा रही है। क्योंकि वे अपने पद की गरिमा का दुरुपयोग व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति के लिए करने लगे हैं। इस तरह राजनीति आदर्शहीन तथा मूल्यहीन हो गयी। सामाजिक व्यवस्था पर इसका बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। "विद्याधर शुक्ल के अनुसार- "बुनियादी बदलाव तो राजनैतिक एवं आर्थिक संघर्ष से ही होता है।"[३] समाज में राजनीतिक सत्ताधारियों के इस चारित्रिक पतन के परिणाम स्वरूप आक्रोश, निराशा और कुण्ठा ने जन्म लिया। साठोत्तरी कहानी साहित्य में इस सन्दर्भ में अनेकों कहानियाँ

---

१. आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में राजनैतिक एवं आर्थिक चेतना-पीताम्बर सरोदे, पेज २३.

२. आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में राजनैतिक एवं आर्थिक चेतना - पीताम्बर सरोदे, पेज २३

३. समकालीन श्रेष्ठ कहानियाँ - सं० विद्याधर शुक्ल, पृ० ९.

यथार्थ चित्रण के साथ हमारे समक्ष दृष्टिगोचर होती है। साहित्य का सम्बन्ध समाज और उससे जुड़े मानव जीवन से होता है क्योंकि साहित्य समाज का दर्पण है। सामाजिक परिवेश से अछूता साहित्य काल प्रवाह में प्रवाहित हो जाता है क्योंकि उसकी समस्याएँ आधारहीन होती हैं। कहानी, साहित्य की एक प्रमुख और लोकप्रिय विधा है। इसमें समाज में व्याप्त सच्चाइयों की सही अभिव्यक्ति होती है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त से समाज में जो नई संस्कृति, नए मूल्य और नूतन बोध ने जन्म लिया उसकी सही-सही अभिव्यक्ति साठोत्तरी कहानी करती है। "समाज तथा व्यक्ति का परस्पर संघर्ष एक सतत प्रक्रिया है और इस प्रक्रिया में समाज तथा मानव प्रतिमा दोनों ही बदलते रहते हैं। मानव प्रतिमा का स्वरूप बहुत कुछ समाज के गठन तथा प्रकृति पर निर्भर करता है।"[१]

जैसे-जैसे समाज में परिवर्तन आता है वैसे-वैसे उसका सीधा प्रभाव मनुष्य की प्रवृत्ति पर पड़ता है। मनुष्य अपने सामाजिक वातावरण का ही प्रतिबिम्ब है। एक समय के देश व काल की प्रवृत्ति कुछ समय बाद की प्रवृत्ति से सर्वथा भिन्न होती है। परिवर्तन की प्रक्रिया सतत चलने वाले प्रक्रिया है जब परिवर्तन के चिह्न सघन या अधिक स्पष्ट हो जाते हैं तो उसे एक संज्ञा दे दी जाती है जिसका प्रभाव समाज के प्रत्येक व्यक्ति के मन-मस्तिष्क पर छाया रहता है। इस तरह पूरे सामाजिक परिवेश में उस परिवर्तन के स्पष्ट लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं। जैसे वर्तमान समय में 'अर्थ' के महत्व को समाज का प्रत्येक व्यक्ति स्वीकारता है। यह 'अर्थ' आज समाज में सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनैतिक, तथा शैक्षिक आदि सभी क्षेत्रों में अपनी कुण्डली मारे बैठा है और इस 'अर्थ' का प्रभाव यद्यपि स्वतन्त्रता पूर्व से ही स्वीकारा जाता है परन्तु इसके स्पष्ट लक्षण १९६० के आस-पास से अधिक दिखाई पड़े हैं। डॉ० परमानन्द श्रीवास्तव के अनुसार- "मनुष्य की सांस्कृतिक एवं सामाजिक प्रक्रिया अपने युग जीवन की परिस्थितियों के घात-प्रतिघात के प्रति उसके अनुभव और उसकी चिन्ता का परिणाम होती है।"[२]

---

१ स्वतन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी में मानव प्रतिमा हेतु भारद्वाज, पृष्ठ २

२. हिन्दी कहानी की रचना प्रक्रिया- डॉ० परमानन्द श्रीवास्तव, पृ० १४३.

३. अर्थ का प्रभाव - स्वतन्त्रता पूर्व से आज तक

देश को स्वतन्त्रता मिलने के पूर्व से ही साहित्य में आर्थिक तंगदस्ती का सशक्त चित्रण मिलता है। "स्वतन्त्रता पूर्व के सारे साहित्य में आर्थिक विपन्नता के स्पष्ट चित्र मिलते हैं।"[१] किन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त से आज तक आर्थिक विपन्नता बद से बदत्तर रूप धारण करती जा रही है। स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व व्यक्ति ने जो सपने संजोए थे, वह स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भरभरा कर टूट गये। देश आजाद हुए साथ ही विभाजन की त्रासदी ने जनमानस पर गहरा आघात किया। हिन्दू-मुस्लिम एकता का जो सपना व्यक्ति ने संजोया था वह भरभरा कर टूट गया। हिन्दू-मुस्लिम झगड़े, लूटपाट, अत्याचार, आगजनी जैसी वीभत्स घटनाएँ होने लगीं। हजारों की तादात में मुसलमानों का भारत से पाकिस्तान जाना और हिन्दुओं के पाकिस्तान से भारत आने पर धन-जन की काफी हानि हुई साथ ही इन शरणार्थियों को पुनः स्थापित करने की समस्या ने देश की आर्थिक-व्यवस्था पर कुठाराघात किया। नयी कहानी में भी आर्थिक विपन्नता के सशक्त चित्र दृष्टिगोचर होते हैं। अमरकान्त की 'दोपहर का भोजन', 'डिप्टी-कलक्टरी', कमलेश्वर की 'राजा निरबंसिया', 'माँस का दरिया', मार्कण्डेय की 'दूध और दवा' में मुन्नी के लिए दूध की व्यवस्था नहीं हो पाती तथा बीमार माँ के इलाज के लिए दवा का इन्तजाम नहीं हो पाता। यहाँ मुन्नी और माँ का अर्थाभाव के कारण टूटना, तथा 'दोपहर का भोजन' में आर्थिक संकट से उत्पन्न गरीबी का गहरी मानवीय संवेदना के साथ चित्रण हुआ है। 'राजा निरबंसिया' में जगपति आर्थिक दृष्टि से विपन्न है जिसके कारण चन्दा कम्पाउण्डर वचन के साथ भाग जाती है। 'माँस का दरिया' जुगनू का बीमारी की मार के कारण ही आर्थिक विपन्नता से बिलबिलाना आदि अनेक कहानियाँ सामान्य व्यक्ति की आर्थिक तंगदस्ती का प्रमाणिक चित्रण प्रस्तुत करती हैं। "स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी में एक अन्दर से खीझी हुई और असन्तुष्ट मानव-प्रतिमा का चित्रण हुआ है। इस प्रतिमा के मूल में कहीं न कहीं अर्थ सम्बन्ध बहुत सक्रिय है।"[२] आर्थिक विपन्नता स्वतन्त्रता से पूर्व भी थी और स्वतन्त्रता के पश्चात् भी है किन्तु फर्क सिर्फ इतना है कि स्वतन्त्रता के पूर्व आर्थिक दासता के दास

---

१. आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में राजनैतिक एवं आर्थिक चेतना- पीताम्बर सरोदे, पृ० २४.
२. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी में मानव-प्रतिमा हेतु भारद्वाज, पृ० २९.

अंग्रेज थे। आज हमारे अपने ही लोग हैं। सामान्य व्यक्ति उस समय भी शोषित वर्ग के अन्तर्गत आता था और आज जबकि हम स्वतन्त्र हैं तब भी शोषित हैं, किन्तु तब के व्यक्ति में अर्थाभावों से ग्रस्त होने के बावजूद भी मानवता जैसी अमूल्य चीज उनके पास थी और लोगों की यह मानसिकता थी कि धन तो हाथ का मैल है। आज है कल नहीं। धन तो मेहनत करके फिर कमाया जा सकता है परन्तु ईमानदारी विश्वास, चरित्र एक बार चला गया तो पुनः वापस नहीं आ सकता और व्यक्ति-व्यक्तिके सहायतार्थ सहर्ष आगे बढ़ता था किन्तु आज व्यक्ति की मनःस्थिति भिन्न है। "अर्थ से हीन होने के बावजूद भी तब आदमी अर्थ के पीछे शायद उतना पागल नहीं था, जितना कि आज है।"[१]

४. १९६० के बाद समाज में बढ़ता आर्थिक दबाव

सातवें दशक या साठोत्तर में व्यक्ति की आर्थिक विपन्नता ने और भी उग्र रूप धारण कर लिया। सन् १९६२ में चीन द्वारा भारत पर आक्रमण से हुए प्रथम युद्ध और पुनः १९६५ एवं १९७१ में भारत-पाकिस्तान के युद्धों की शृंखला ने हमारी पहले से कमजोर अर्थव्यवस्था पर ऐसी चोट मारी कि वह बुरी तरह चरमरा गयी। १९६६-६७ में पड़े भीषण अकाल तथा लगातार युद्धों ने अनेक रूपों में अर्थव्यवस्था पर गहरा दबाव डाला और जीवन जीने की स्थितियों को विषमतर बना दिया। अतिवृष्टि, अनावृष्टि व अकाल ने देश में खाद्य-पदार्थों का संकट पैदा कर दिया तथा मँहगाई सुरसा की तरह मुँह फाड़ती चली जा रही जा रही थी। मुद्रा-स्फीति और मुद्रा अवमूल्यन के परिणाम स्वरूप मुद्रा की क्रय शक्ति का ह्रास करने से व्यक्ति करों के बोझ से दबता चला गया। फलतः व्यक्ति के जीवन में निराशा और कुण्ठा ने जन्म लिया। "धनाभाव के कारण इच्छाओं की पूर्ति नहीं हो सकी और व्यक्ति निराशा और कुंठाओं से ग्रसित होता गया।"[२] राजनीति में सत्ता परिवर्तन एवं केन्द्रीय शक्ति की दुर्बलता जैसी स्थितियों ने सामान्य व्यक्ति के जीवन जीने की

---

१. आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में राजनैतिक एवं आर्थिक चेतना : पीताम्बर सरोदे, पृ० २४.

२. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी में मानव प्रतिमा, पृ० ५०.

स्थितियों को विकराल से विकरालतम बना दिया। अर्थाभाव के कारण रोजगार की तलाश में लोगों का गाँव से शहर की ओर पलायन करने के कारण जनसंख्या वृद्धि ने व्यक्ति की समस्याओं को और सघन कर दिया, जिससे बेरोजगारी, शिक्षित बेरोजगारी को बढ़ावा मिला तथा रोटी, कपड़ा और मकान जैसी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु व्यक्ति को पग-पग पर संघर्ष करना पड़ा। "मुद्रा स्फीति और जनसंख्या में वृद्धि के कारण मँहगाई बढ़ी जिसके परिणामस्वरूप निम्न मध्य वर्ग और मध्य वर्ग का जीवन कठिन से कठिनतर होता गया।"[१] सरकारी सस्ते गल्लों की दुकानों पर मिट्टी के तेल, चीनी, चावल आदि के लिए लम्बी-लम्बी कतारों में खड़े होने पड़ा। शिक्षा, योग्यता और प्रतिभा को खुलेआम नजरअंदाज किया गया। उचित व्यक्ति को समुचित रोजगार नहीं मिला जिससे युवा मन गहरी निराशा, कुंठा, अवसाद व आक्रोश से भर उठा। जीवन-मूल्यों में परिवर्तन आया जिसके परिणाम स्वरूप जीवन पद्धति में भी बदलाव आया। व्यक्ति की सोच में परिवर्तन आया। आर्थिक समस्याओं ने व्यक्ति को इतना बेचैन कर दिया कि वह हर पल 'अर्थ' के बारे में ही विचारमग्न पाया गया आर्थिक चिन्ताओं ने व्यक्ति को आत्मकेन्द्रित व स्वार्थी बना दिया। "१९६५ के बाद की कहानी में व्यक्ति के जीवन की आर्थिक विषमताओं के चित्रण की प्रधानता का मूल यही है कि इन वर्षों में व्यक्ति को आर्थिक मुहानों पर अनेक लड़ाइयाँ लड़नी पड़ी हैं।"[२]

५. सामान्य व्यक्ति पर पड़ता आर्थिक दबाव

आर्थिक कुचक्र के दानव ने वर्तमान समाज को और मुख्य रूप से मध्य वर्गीय और निम्नस्तरीय समाज को बुरी तरह कुचल दिया है। "अर्थाभाव से भरे इस जीवन के चित्रण में प्रधानता मध्य वर्ग के औसत आदमी की आर्थिक समस्याओं की ही रही है।[३] आर्थिक विपन्नता से जूझते समाज का जो चित्र साठोत्तरी कहानियाँ प्रस्तुत करती हैं वह यथार्थ से परिपूर्ण हैं

१. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी का विकास- डॉ० सूबेदार राय, पृ० २.

२. समकालीन कहानी : युगबोध का सन्दर्भ- डॉ० पुष्पपाल सिंह, पृ० ११०.

३ समकालीन कहानी : युगबोध का सन्दर्भ- डॉ० पुष्पपाल सिंह, पृ० १११

मध्यमवर्गीय समाज की अधिकांश समस्याएँ अर्थ से ही सम्बन्धित हैं। वह आर्थिक जंजालों से ऊबर नहीं पा रहा है और यही स्थिति निम्न वर्ग की भी है क्योंकि वर्तमान समय में प्रत्येक व्यक्ति के मानस पटल पर 'अर्थ' कुण्डली मारे बैठा है इसलिए अर्थ का प्रभाव प्रत्येक व्यक्ति पर देखा जा सकता है। व्यक्ति हर पल अर्थ से उत्पन्न समस्याओं के समाधान हेतु संघर्षरत है। "आज व्यक्ति अर्थ तन्त्र के शिकंजे में ऐसे जकड़ा हुआ है कि हर समय और हर क्षेत्र में उसे आर्थिक प्रश्न और चिन्ताएँ मथती रहती हैं।"[१]

वर्तमान समय में सामान्य व्यक्ति को प्रत्येक क्षेत्र में आर्थिक मुहानों पर अनेक लड़ाइयाँ लड़नी पड़ रही हैं। स्वतन्त्रता के पश्चात् से आज तक आर्थिक विपन्नताओं से जूझते मनुष्य को ही कहानीकार ने अपना प्रतिपाद्य विषय बनाया है क्योंकि कहानीकार स्वयं इस आर्थिक तंगदस्ती का शिकार है और एक कहानीकार स्वयं एक आदमी है। यह आम आदमी समाज के मध्यवर्ग या निम्न वर्ग में से कोई भी हो सकता है। रामदरश मिश्र के शब्दों में "आम आदमी की कहानियाँ प्रमुख रूप से आम आदमी (जिसमें निम्न मध्य वर्ग और निम्न वर्ग दोनों ही शामिल हैं) के अर्थमूलक यथार्थ को उद्घाटित करती हैं।"[२] अमरकान्त की 'दोपहर का भोजन' में आर्थिक विपन्नता में जूझते परिवार के सदस्यों का मार्मिक चित्रण हुआ है। सिद्धेश्वरी दोपहर का भोजन बनाती है और बारी-बारी से उसके बेटे तथा पति खाना खाते हैं और भूख होने के बावजूद अपने हिस्से का खाना खाकर उठ जाते हैं क्योंकि उन्हें पता है कि रोटी और लेने का तात्पर्य किसी दूसरे सदस्य का हिस्सा छीनना है। इसी कारण सभी पेट भरे होने का बहाना करके उठ जाते हैं। घर की आर्थिक स्थिति अत्यन्त दयनीय है पति की नौकरी डेढ़ महीना पहले ही छूट गई है, बड़ा पुत्र बेकार है। स्वयं खाने बैठी तो एक रोटी बची उसे भी आधी वह छोटे बेटे के लिए रख देती है। परिवार के किसी भी सदस्य को पेट भर भोजन भी नहीं मिलता। इस प्रकार यह परिवार इतनी

---

१ समकालीन हिन्दी कहानी : युगबोध का सन्दर्भ- डॉ० पुष्पपाल सिंह, पृ० १११.

२ हिन्दी कहानी : एक अन्तरंग पहचान – रामदरश मिश्र, पृ० ११५.

आर्थिक तंगदस्ती का शिकार है कि दोपहर का भोजन भी नहीं जुटा पाता। "छह वर्षीय लड़का प्रमोद नंग-धड़ंग पड़ा था। उसके गले तथा छाती पर हड्डियाँ साफ दिखायी देती थीं। उसके हाथ पैर बासी ककड़ियों की तरह सूखे तथा बेजान पड़े थे। उसका पेट हंडिया की तरह फूला था। उसका मुख खुला था और उस पर अनगिनत मक्खियाँ उड़ रही थीं। यह चित्रण उसकी आर्थिक विषमता की स्थितियों को प्रत्यक्ष कर देता है।"[१] इनकी 'इंटरव्यूह', 'छिपकली' आदि कहानियों में भी आर्थिक विपन्नता का यथार्थ चित्रण हुआ है।

कमलेश्वर की कहानी 'राजा निरबंसिया' में मध्य वर्ग के व्यक्ति की अभावग्रस्त जिन्दगी का बड़ी दारूण स्थिति में चित्रण हुआ है। जगपति व चन्दा पति-पत्नी हैं। दोनों में बड़ा प्यार है किन्तु जब पति बीमार पड़ता है तो कम्पाउण्डर बचन सिंह उसकी सहायता करता है और फिर अर्थाभाव से पीड़ित जगपति को लकड़ी की दुकान खुलवाने में मदद करता है और चन्दा को गर्भवती बना देता है, चन्दा उसके साथ भाग जाती है और जगपति आत्महत्या कर लेता है। आर्थिक दृष्टि से विपन्न होने व अपने इलाज के लिए पर्याप्त धन न होने के कारण ही कम्पाउण्डर सहायतार्थ आगे आया जिसके कारण चन्दा कम्पाउण्डर की तरफ आकर्षित हुयी। इस प्रकार अर्थाभाव ही इस कहानी का मूल स्वर है। "इसमें मध्यवर्ग के सामान्य आदमी की आर्थिक और दाम्पत्य सम्बन्ध मूलक तकलीफों का गहरा तनाव लक्षित होता है।"[२] 'जोखिम', 'बेकार आदमी', 'ऊपर उठता हुआ मकान, 'मांस का दरिया', 'इतने अच्छे दिन', 'खोई हुईं दिशाएँ' आदि कहानियाँ अर्थाभाव से संघर्ष करते हुए मनुष्य की कहानी है।

अर्थ के कारण सांस्कृतिक प्रभाव, सामाजिक प्रभाव के ही अन्तर्गत आता है। जहाँ अर्थ के कारण व्यक्ति के रहन-सहन का स्तर ऊँचा उठा है वहीं वह अपने आपको 'मॉड' दिखाने की कोशिश में हैं। सामान्य व्यक्ति प्राचीन संस्कृति से मुँह भी नहीं मोड़ पा रहा जो उसे अपने पूर्वजों से

---

१. समकालीन कहानी की पहचान - डॉ० नरेन्द्र मोहन, पृ० १७.

२ हिन्दी कहानी : एक अन्तरंग पहचान - रामदरश मिश्र, पृ० १३८.

विरासत में मिले हैं। साठोत्तर काल में व्यक्ति ने सांस्कृति संकट को सबसे ज्यादा सहन किया है। वह दो राहे पर खड़ा है जहाँ प्राचीनता के प्रति मोह है वहीं नवीनता के प्रति वह लालसा, उत्साह भरी दृष्टि से निहार रहा है किसे आज आत्मसात करे या किसे त्यागे? इसी ऊहापोह में फँसा आज का व्यक्ति अन्तर्द्वन्द्व से गुजर रहा है। हेतु भारद्वाज ने 'संस्कृति' को मानव प्रतिमा के नियामक तत्त्व के अन्तर्गत माना है। उनके अनुसार-- "संस्कृति भौतिक-घर, उपकरण यंत्र, अन्य साधन आदि वस्तुओं का सम्मिश्रण कहलाता है। ये सारे पक्ष मानव प्रतिमा को प्रभावित करते हैं क्योंकि व्यक्ति जिस समूह में पैदा होता है उस पर समूह की संस्कृति का प्रभाव पड़ता है और वह उसी के सांचे में ढल जाता है।"[१]

साठोत्तर समाज का व्यक्ति आर्थिक रूप से कमजोर होने के कारण अनुदार कृपण व आत्मकेन्द्रित हो गया है इसका प्रभाव व्यक्ति के सम्बन्धों पर भी गहरा पड़ा है। अर्थाभाव के कारण वह सगे सम्बन्धियों और यहाँ तक कि आत्मीय रिश्तों (माँ-बाप, भाई-बहन, पुत्र-पुत्री) को भी अर्थ की दृष्टि से हानि-लाभ पर विचार कर निभाता है या महत्व देता है। यदि वह इन सम्बन्धों को निभाना भी चाहता है तो मनुष्य का आर्थिक दृष्टिकोण उसे ऐसा करने से रोकती है। डॉ० पुष्पपाल के अनुसार "आज के सामाजिक जीवन का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पक्ष यह है कि आज हमारे सभी सामाजिक सम्बन्धों पर तथा पारिवारिक रिश्तों पर अर्थतन्त्र हावी हो गया है।"[२] उषा प्रियम्वदा की कहानी 'वापसी' में पिता गजाधर बाबू जो नौकरी से रिटायर हो चुके हैं। उन्हें आर्थिक दृष्टिकोण से फालतू समझा जा रहा है। इसलिए वे परिवार में अपने को मिसफिट पाते हैं। अन्त में वे एक सेठ के घर नौकरी कर लेते हैं, तो सभी राहत की साँस लेते हैं। गजाधर बाबू की "इस पीड़ा को आर्थिक और सामाजिक दोनों ही संदर्भों में उभारा गया है।"[३] इसी प्रकार नरेन्द्र कोहली की 'शटल' में भी एक रिटायर्ड पिता की इसी मनोदशा को व्यंजित किया गया है जो अपने ही घर में पराया हो गया है। माँ को तो सभी अपने ही पास रखना चाहते हैं क्योंकि वह गृह कार्य में हिस्सा बँटाती है

---

१. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी में मानव-प्रतिमा हेतु भारद्वाज, पृ० २९.

२. समकालीन कहानी : युगबोध का सन्दर्भ- डॉ० पुष्पपाल सिंह, पृ० १२५.

३. हिन्दी कहानी की अन्तरंग पहचान- डॉ० रामदरश मिश्र, पृ० ७३.

पर पिता जो आर्थिक रूप से तथा शारीरिक रूप से भी निरर्थक हैं उसे फालतू समझा जाता है। राजेन्द्र यादव की 'बिरादरी बाहर' में पारस बाबू अपने ही घर में फालतू समझे जा रहे हैं। इस प्रकार जहाँ पिता के गृहस्वामी के रूप में आदर-सम्मान दिए जाने की संस्कृति रही हो, वहीं वर्तमान समय में अर्थ प्रधान समाज होने के कारण आर्थिक दृष्टि से व्यर्थ होने के कारण उन्हें फालतू समझा जाता है। भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत' में माँ जिसे विश्व की जननी के रूप में पूजनीया की दृष्टि से देखने की भारतीय संस्कृति रही है। बॉस के आने पर घर की सजावट के आगे वही 'माँ' अशोभनीय व बेटे की तरक्की में बाधक (बेटे द्वारा यह मानना) सी वस्तु समझी जा रही है और उसे छुपाने का बेटा अथक प्रयास कर रहा है।

डॉ० कृपाशंकर पाण्डेय के अनुसार-- "आर्थिक दबावों से व्यक्तित्व के टूटने के कारण चिन्तन का सन्तुलन बिगड़ना स्वभाविक है।"[१] वर्तमान सामाजिक परिवेश में अर्थ के बिना जीना अत्यन्त दुष्कर है। वास्तव में भारत की मूलभूत समस्या ही यही है कि यहाँ साठ प्रतिशत से अधिक लोग अर्थाभाव के बोझ तले दबे जा रहे हैं। बीस प्रतिशत लोग जैस-तैसे करके अपना व अपने परिवार का भरण-पोषण कर जीवनयापन कर रहे हैं तथा दस प्रतिशत या इससे भी कम ऐसे लोग हैं जिनके पास अथाह सम्पत्ति है जिसे कैसे खर्च किया जाए इसी चिन्ता में मग्न रहते हैं। तात्पर्य यह है कि भारत की कुल नब्बे प्रतिशत जनता दीन-हीन है। अतः अर्थ की दृष्टि से वर्ग वैषम्य का पाया जाना स्वाभाविक है। "अर्थगत वैषम्य के कारण ही यहाँ के गाँवों की सत्तर प्रतिशत जनसंख्या को खाद्यान्न की भी कमी है। न्यूनतम आवश्यक कैलोरी भी नहीं मिल पाती।"[२] मार्क्स भी समाज में फैले इस अर्थगत वर्ग वैषम्य को स्वीकार करते हुए मानते हैं कि वर्गहीन मानवता का अभी जन्म ही नहीं हुआ। समाज में शोषकों द्वारा शोषित एवं सर्वहारा दो वर्ग हैं। शोषित वर्ग निरन्तर प्रयत्न करने के उपरान्त भी उपभोक्ता नहीं है वास्तव में उपभोक्ता पूँजीपति है,

---

१. हिन्दी कथा साहित्य में यथार्थबोध के विविध रूप- डॉ० कृपाशंकर पाण्डेय, पृ० १२३

२. आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में राजनैतिक एवं आर्थिक चेतना- डॉ० पीताम्बर सरोदे, पृ० २६०.

जो शोषित वर्ग का शोषण करके विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत करती है और इसे सर्वहारा बनाती है जिसके कारण दोनों के बीच संघर्ष की प्रक्रिया गतिमान रहती है। "वर्गों के आर्थिक सम्बन्धों तथा उनकी आर्थिक स्थितियों में विषमता के कारण इन वर्गो के बीच टकराव तथा संघर्ष अपरिहार्य है।"[१] शोषित और शोषक वर्ग के इस संघर्ष को सभी लेखकों ने स्वीकारा और अपनी लेखनी द्वारा उसे वाणी भी दी। लेखक पूरी तरह से सर्वहारा या शोषक वर्ग की हिमायती है और वह पूँजीपतियों के खिलाफ आवाज उठाकर शोषित वर्ग का ही पक्षधर है। मार्क्स भी इसी दृष्टि को सहमति देते हुए मानते हैं कि लेखक को सर्वहारा वर्ग के साथ सहानुभूति देना और पूँजीवादी व्यवस्था को समाप्त करना ही अपना लक्ष्य बनाना चाहिए। "उनकी दृष्टि में रचनाकार का कर्तव्य था : सर्वहारा वर्ग को अपनी सहानुभूति देना और इस संघर्ष की प्रक्रिया में योग देते हुए पूँजीवादी व्यवस्था को समाप्त करने की दिशा में प्रयत्न करना।"[२] वर्तमान युग पूँजीवादी युग है जहाँ धन की शक्ति को सभी मानते हैं जीवन के सभी क्षेत्रों व कार्यो के लिए धन की आवश्यकता है। धन के बगैर आदमी के हाथ पैर कटे हुए के समान है। वर्तमान समाज में अमीर और अमीर होता जा रहा है और गरीब और गरीब। अमीर और गरीब के बीच दूरियाँ बढ़ती जा रही हैं, जहाँ आर्थिक शोषण भी बढ़ता जा रहा है।

अमृतराय के अनुसार "पूँजीवादी मनोवृत्ति के परिणाम स्वरूप देश में आर्थिक शोषण का आधिक्य स्वभाविक है।"[३]

आर्थिक विषमता हमारे समाज के लिए एक ऐसा अभिशाप बनता जा रहा है जो व्यक्ति-व्यक्ति के बीच दूरियों को बढ़ाता जा रहा है, उनके अन्दर के मानवीय मूल्यों को समाप्त कर उन्हें भावना शून्य बना रहा है आज व्यक्ति की भावनाओं का कोई मूल्य नहीं रह गया।

---

१. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी में मानव प्रतिमा हेतु भारद्वाज, पृ० १८१.

२ हिन्दी कहानी की रचना प्रक्रिया - डॉ० परमानन्द श्रीवास्तव, पृ० २६१.

३ अमृतराय का कथा साहित्य- डॉ० (श्रीमती) कृष्णा माहेश्वरी, पृ० ७६.

"वर्तमान समाज की आधारशिला अर्थ ही है। अर्थ के हाथों हमारी हर भावना कुचली जा रही है।"[१]

से० रा० यात्री की 'अँधेरे का सैलाब' कहानी में दो परिवारों के बीच की आर्थिक स्थितियों को दर्शाते हुए गरीब परिवार के बच्चों की भावना की दारूण स्थिति को दर्शाया गया है। कहानी में एक ओर इंजीनियर का परिवार है जहाँ दीपावली में भेंट में आए मिठाई के डिब्बों की झड़ी लगी है तो वहीं गरीब परिवार के घर बारह रुपए किलो मिठाई का डिब्बा लाकर पहले से ही बच्चों से छुपाकर रख दिया जाता है। इसका एक सम्बन्धी इंजीनियर है इसे लेकर अपने घर जाता है जहाँ उसके घर भेंट में आए सौगातों का अम्बार लगा है वही उस गरीब व्यक्ति के घर 'अँधेरे का सैलाब' और भी वेग से उमड़ पड़ा है। इस प्रकार उसे अपनी आर्थिक विपन्नता और गहरे सालती है।"[२] वर्तमान समय की सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि व्यक्ति अर्थाभाव की चक्की में पिसता जा रहा है। जहाँ एक ओर सुरसा की तरह मँहगाई अपना मुँह फाड़ती जा रही है वहीं इस भौतिकवादी युग में व्यक्ति भौतिक सुख-सुविधाओं की वस्तुओं को जुटाने व अपने आपको सम्पन्न दिखाने की मानसिकता में धन के पीछे अंधाधुंध दौड़ते हुए धुरीहीन बन गए हैं। आज व्यक्ति का एक-एक पल, एक-एक दिन चिन्ताओं, परेशानियों व उलझनों में विषम से विषमतर बनता जा रहा है। घर की स्थिति सुधारने के उद्देश्य से स्त्रियाँ भी बाहर निकल पड़ी है जिससे घर के बच्चों को माँ का प्यार, सानिध्य भी नहीं प्राप्त हो रहा वे 'क्रेश' में या आया के द्वारा पाले जा रहे हैं। माँ के पढ़ी-लिखी होने के बावजूद वे ट्यूशन द्वारा पढ़ रहे हैं। इस तरह उनका समुचित विकास भी नहीं हो पा रहा और उन दिशाहीन बच्चों में अपराधिक प्रवृत्ति बढ़ रही है। माँ-बाप को घर के इतने सारे खर्चों को निपटाने से ही फुर्सत नहीं मिल रही, फिर भी स्थिति बद से बदतर ही होती जा रही है। आज

---

१ आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में राजनैतिक एवं आर्थिक चेतना- पीताम्बर सरोदे, पृ० २६४.

२ सारिका, अक्टूबर, १९७४ अंधेरे का सैलाब- से०रा० यात्री, पृ० ४६.

का लेखक भी इस अर्थाभाव के चक्र से उद्वेलित होकर साठोत्तरी कहानियों में आर्थिक विपन्नता के कथ्य को उजागर करता है क्योंकि उसके मानस-पटल पर आर्थिक समस्याएँ ही छायी रहती हैं। इसलिए घूम-फिर कर उसकी दृष्टि आर्थिक समस्याओं का समाधान ही ढूँढ़ती है-- "आज कहानी का मुख्य कथ्य चाहे कुछ भी है किन्तु उसे आर्थिक स्थितियाँ, आर्थिक चिन्ताएँ किसी न किसी स्तर पर अवश्य प्रभावित करती दिखायी देती हैं।"[१]

कमलेश्वर की कहानी 'जोखिम' में आज की मँहगाई का यथार्थ चित्रण है जिसने सामान्य व्यक्ति की कमर ही तोड़कर रख दी है। इस कहानी में माँ अपने बेटे को मँहगाई की मार को इन शब्दों में व्यक्त कर रही है। "उसने बताया था कि उम्र के साथ उसकी जरूरतें और भूख घट रही थी, पर पता नहीं बाजार को क्या हो रहा था कि खर्चा बढ़ता जाता था।"[२] इसी मँहगाई का चित्रण रश्मि तन्खा की कहानी 'शीशे के दिन' में भी हुआ है सामान्य व्यक्ति अर्थाभाव के भँवर में फँसा हुआ है। क्योंकि उसे अपना व अपने परिवार का भरण-पोषण ही नहीं करना बल्कि दिखावे के लिए अपना जीवन-स्तर भी सुधारना है जबकि वह आर्थिक दृष्टि से खोखला है। डॉ० रामदरश मिश्र के अनुसार "उसे अपनी भूख ही नहीं मिटानी है बल्कि अपने दिखाने की या कम से कम एक बुद्धिजीवी समाज के जीवन-स्तर की रक्षा भी करनी है।"[३]

आज के इस भौतिकवादी युग में लोग भौतिकता की दौड़ में अंधाधुंध भागे जा रहे हैं। मनु भंडारी की 'नयी नौकरी' में पुरुष की भौतिकतावादी दृष्टि तथा नारी की इयत्ता इस भौतिकता में किस प्रकार स्वाहा हो जाती है, का सफल चित्रण मिलता है। कुन्दन को नयी नौकरी मिलती है वह बड़ी तेजी से भौतिक समृद्धि पाना चाहता है। इसके लिए अपने बॉस को खुश करने के लिए प्रयत्नशील रहता है। वह अपनी पत्नी रमा की नौकरी तक छुड़वा देता है। उसे घर सजाने के काम में लगा देता है। रमा को लगता है उसका कोई अपना व्यक्तित्व ही नहीं है। रमा सोचती है-

---

१. समकालीन कहानी युगबोध का सन्दर्भ : डॉ० पुष्पपाल सिंह, पृ० १११.

२. 'बयान तथा अन्य कहानियाँ', 'जोखिम'- कमलेश्वर, पृ० १०५.

३. हिन्दी कहानी की अन्तरंग पहचान : डॉ० रामदरश मिश्र, पृ० ८३.

"कुन्दन उसे पीछे छोड़कर आगे निकल गया है–बहुत आगे। जैसे वह अकेली रह गई है। एक महीना पहले वह कुन्दन के साथ ही निकला करती थी।"[१] आज अर्थाभाव होते हुए भी व्यक्ति साधन जुटाने का अथक प्रयास कर रहा है या उसे बनावटीपन से पूरा करने का प्रयास कर रहे हैं, कि कहीं वह दूसरे के समक्ष हीन न बन जाए जबकि आज का व्यक्ति दूसरों के समक्ष आत्म प्रदर्शन के प्रयास में निरन्तर हीन बनता जा रहा है। श्री कांत वर्मा की 'संवाद' कहानी में इसी मनःस्थिति का चित्रण देखने को मिलता है। कथानायक हीन भावना का शिकार है उसका पुराना मित्र उनके आफिस में अफसर बनकर आया है। "उसके और प्रसाद के वेतन में केवल दो सौ का फासला है। वह वेतन का फीता लेकर इस बीच स्वयं को प्रसाद से कई बार नाप चुका था।"[२] इस प्रकार वास्तव में दो दोस्त के बीच के ये 'संवाद' न होकर आज के जीवन का अपने ही भ्रम के साथ होता हुआ संवाद है।

राजेन्द्र यादव की कहानियों में ज्यादातर मध्यवर्गीय समाज तथा निम्न वर्ग के व्यक्तियों की स्थितियों का ही वर्णन दृष्टिगोचर होता है। वर्तमान समय में मध्यवर्ग का व्यक्ति आर्थिक दृष्टि से पूरी तरह त्रस्त है। राजेन्द्र यादव की कहानी 'दायरा' में इसी संत्रास को यथार्थ रुप में प्रस्तुत किया गया है। आज के मौलिकता प्रधान समाज में व्यक्ति को कृत्रिम व्यवहार करने वाला बना दिया है। व्यक्ति के पास साधन न होने पर भी किसी तरह से व्यक्ति बनावटी पन से उसे पूरा करने का प्रयास करता है। उसे सदा यही भय लगा रहता है कि वह दिखावट का कोई व्यवहार पूरा नहीं कर पाएगा तो क्या होगा और वह समाज के चार लोगों के बीच हीन भावना से भर उठता है। 'दायरा' कहानी में नायक हरि सारा दिन नकली जिन्दगी जीता है। बनावटी जिंदगी ही उसके लिए संत्रास की स्थिति पैदा कर देती है। वह अपने मुँह से ही अपनी बड़ाई करता रहता है और यही बड़ाई उसके लिए अभिशाप बन जाती है। रात सोते समय उसे महसूस होता है कि उसका अंग–अंग टूट

---

१ मेरी प्रिय कहानियाँ : मनु भण्डारी, 'नयी नौकरी', पृ० ३८.

२. 'संवाद' कहानी संग्रह : श्रीकान्त वर्मा, पृ० १०.

रहा है। पूरे दिन उसे बनावटी हँसी, स्वागत, विदाई, कभी इधर आइए जी, देखो जरूर आ जाना, खाना पीना उधर ही होगा, अजी मटर-पनीर की सब्जी तो आपने ली ही नहीं, श्यामा जरा भर्ता व छोले दे जाना, दो बोतल तुम भी पी लेना, लेकिन लाना खूब ठंडी ही . . . . . ये रेडियो इतनी जोर से कौन बजा रहा है। . . . . . बेटा सोफे पर नहीं खेलते, बाहर . . . . . जाकर खेलो न कोई बात नहीं चादर धुल जायेगी। हाँ साहब नींबू की चाय की तो ताजगी ही और है।[१]

इस प्रकार मेहमानों के सामने हरि अपनी भौतिकता का इतना प्रदर्शन करता है कि इससे उसके परिवार में अशान्ति ही व्याप्त रहती है उसके नकलीपन से विभा क्षुब्ध है। इसी प्रकार का बनावटीपन आज मध्यमवर्गीय परिवारों में छाया हुआ है वे दिखाने के प्रयास में अपना सब कुछ गंवा देते है और उन्हें व उनके परिवार को मिलती है मानसिक अशान्ति।

स्वतंत्रता के पश्चात से आज तक सामाजिक सम्बन्धों में टूटन, विखराव की स्थिति आती चली गई है राजेन्द्र यादव भी इस संबंध में लिखते हैं- "हम बीमारी के बाद की उस स्थिति से गुजर रहे हैं जब कोई दवा, कोई इंजेक्शन, कोई टानिक हमारी मदद नहीं कर सकता, केवल अपनी क्षमता और जिजीविषा ही हमें इस अन्धकूप से निकाल सकती है। शायद हम ऐसे पानी में डाल दिये गये हैं जहाँ कोई रस्सी, कोई लाइक बेल्ट हम तक नहीं फेंकी जा सकती और खुछ तैरकर हमें अपने किनारे तलाश करने होंगे।"[२]

इसी प्रकार राजेन्द्र यादव की ही कहानी मेहमान में भी मध्यमवर्गीय समाज के इस बनावटीपन का यथार्थ चित्रण देखने को मिलता है। मेहमान कहानी में आज के व्यक्ति की कृत्रिमता तथा हीन भावना का बड़ा ही सूक्ष्म व यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है। कहानी का नायक अपने आपको उच्च वर्ग के लोगों में देखना चाहता है। वह सोचता है कि आने वाला मेहमान उसे दरिद्र या निम्न न समझे। अपने आपको उच्च वर्ग का दिखाने के प्रयास में नायक को किस प्रकार

---

१. अपने पार (दायरा कहानी) : राजेन्द्र यादव, पृ० ३६.

२. स्वरूप और संवेदना (कहानी) : राजेन्द्र यादव, पृ० ५९.

से कृत्रिम व्यवहार करना पड़ता है। इसका सूक्ष्म चित्रण मेहमान कहानी में देखा जा सकता है। मैं नीचे पैरों की तरफ देखने लगा, अभी तक मैं नंगे पाँव ही धूम रहा था। जाने क्या सोंचेगें? ऐसी ही स्थिति समस्त मध्यवर्गीय समाज में व्याप्त है। इस इंफीरियारिटी काम्पलेक्स से आज मध्यवर्गीय व्यक्ति बुरी तरह से ग्रस्त है। इसी हीन भावना के कारण परिवारों के व्यक्तियों में भी घुटन व कलह की स्थिति बढ़ती जाती है।

वास्तव में देश की गरीबी के कारण ही समाज के सामान्य व्यक्ति को इस कदर आर्थिक परेशानियों का सामना कर पड़ रहा है। यह गरीबी आज की नहीं है बल्कि स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व भी देश को इस गरीबी का सामना करना पड़ा है। समय के साथ-साथ इस गरीबी ने और उग्र धारण कर लिया। "गरीबी इस देश की स्वतन्त्रता से पहले भी स्थायी पहचान थी। स्वतन्त्रता के पश्चात गरीबी और बढ़ी।"[१] वर्तमान समय का सामान्य व्यक्ति वैसे ही आर्थिक तंगी से अपने-आपको मुक्त नहीं कर पा रहा उस पर भी 'गरीबी हटाओ' जैसे नारे सरकार लगा रही है परन्तु गरीबी हटने की बजाय ज्यों की त्यों या उससे भी बदत्तर हालत में बढ़ती ही जा रही है। इससे व्यक्ति के अन्दर विद्रोहात्मक प्रवृत्ति जन्म ले रही है। वर्तमान समय में भौतिक मूल्य पूरी तरह से अर्थ से सम्बन्धित है जिससे नैतिक मूल्यों में गिरावट आ रही है। व्यक्ति के टूटने का मुख्य कारण उसकी आर्थिक स्थिति है। कमलेश्वर की 'राजा निरबंसिया' में चन्दा का कम्पाउण्डर के साथ भाग जाने का कारण जगपति की आर्थिक स्थिति का अच्छा न होना ही था। इसी प्रकार कमलेश्वर की ही 'गर्मियों के दिन' में भी इसी आर्थिक द्वन्द्व का चित्रण है। साठोत्तरी कहानियों में 'गरीबी हटाओ' जैसे नारों की व्यर्थता पर कई सार्थक कहानियाँ लिखी हैं। रवीन्द्र कालिया ने तो 'गरीबी हटाओ' नामक कहानी-संग्रह को लिखकर इस नारे की व्यर्थता पर प्रकाश डाला है। माहेश्वर की 'मृत्यु दण्ड' कहानी में कहानी का नायक भी इस नारे की व्यर्थता को वाणी देते हुए कहता है "यह एक नया शुरू किया है इन सालों ने। हुंह! गरीबी हटाओ। जैसे गरीबी उनके घर की नौकरानी है कि जब चाहा कान पकड़कर सड़क पर खड़ा कर दिया। गरीबी को जिन्हें हटाना होता है वे पहले

---

१. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में मानव प्रतिमा : हेतु भारद्वाज, पृ० २२३.

अमीरी को हटाते हैं। जहाँ लाखों करोड़ों आदमियों को भरपेट खाना नहीं मयस्सर होता और सारी दौलत चन्द आदमखोरों की अंतड़ियों में समा रही है, वहाँ से गरीबी क्या खाक हटेगी।"[१]

अत्यन्त गरीबी में जीते हुए व्यक्ति के अन्दर जीने की उत्कट इच्छा है वह किसी भी तरह जीना चाहता है। मार्कण्डेय की कहानी 'दूध और दवा' में जिजीविषा की यथार्थ अभिव्यक्ति हुई है। व्यक्ति को चाहे कितने ही कष्ट क्यों न हो, वह मरना नहीं चाहता, जीना चाहता है। 'दूध और दवा' कहानी का नायक गरीब है। उसकी पत्नी की आँखें खराब हैं "न तो दूध के लिए उसके पास पैसे हैं, न ही दवा के लिए। वह सोचता है कि वह लिखेगा, जिससे पैसे मिलेंगे, मैं लिखूँगा और लिखने से पैसे मिलेंगे और पैसे उसे ठण्डा करते रहेंगे। वह यही तो कहती है कि पैसा दिल को ठण्डा तथा शरीर को गरम रखने की अद्‌भुत दवा है। गरीब दुनिया का सबसे अच्छा इन्सान है। गरीब लड़की की मुहब्बत दुनिया की सबसे बड़ी निधि है।"[२] गरीबी के बढ़ने का मूल कारण था कि सत्ता उन्हीं के हाथों में चली गयी जो पहले से ही सम्पन्न थे। जो गरीब था वह वहीं का वहीं रह गया तथा निरन्तर शोषित होता रहा परिणाम स्वरूप अमीर और अमीर होता गया और गरीब और गरीब होता गया। अमृत राय के अनुसार-- "मार्क्सवाद सच्चे अर्थों में प्रजातन्त्र का समर्थक है। वह मानता है कि राजसत्ता आर्थिक दृष्टि से शक्तिशाली वर्ग के हाथ में ही रहती है जो जनता का आर्थिक और राजनीतिक दुहरा शोषण करते हैं।"[३] गरीबी के कारण सामान्य व्यक्ति में असंतोष, कुण्ठा, अवसाद व आक्रोश व निराशा उत्पन्न हुई जिसके परिणाम स्वरूप समाज में बिखराव की स्थिति ने जन्म लिया। आर्थिक विपन्नता से उत्पन्न भूख संघर्ष, कुण्ठा, अवसाद ने व्यक्ति को भाग्यवादी नहीं कर्मवादी बना दिया। व्यक्ति की ईश्वर से आस्था उठ गई वह ईश्वर पर विश्वास न कर जीवन के प्रति जागरूक हुआ और निरन्तर संघर्ष करता हुआ भाग्य का स्वयं निर्माता बन गया। "भूख एवं संघर्ष की अतिशयता के कारण सामान्य वर्ग में ईश्वर के प्रति घोर आक्रोश है।"[४]

---

१ 'स्पर्श', 'मृत्युदंड'- माहेश्वर, पृ० ३२-३३.

२. तारों का गुच्छा, मार्कण्डेय, पृ० ७.

३. अमृतराय का कथा साहित्य- डॉ० (श्रीमती) कृष्णा माहेश्वरी, पृ० ३९.

४. अमृतराय का कथा साहित्य- डॉ० (श्रीमती) कृष्णा माहेश्वरी, पृ० ३५.

आज ईश्वर देने वाला नहीं रह गया स्वयं व्यक्ति छीनकर लेने वाला हो गया है किन्तु साधन सीमित होने से शक्तिशाली ही लेने में समर्थ हो पाता है असहाय रह जाता है। ईश्वर एवं धर्म के प्रति आए परिवर्तन के परिणाम स्वरूप पाप-पुण्य की परिभाषा बदल गयी। इस लोक में किए गए पाप और पुण्य का लेखा-जोखा उस लोक या स्वर्ग-नर्क में भोगना पड़ेगा ऐसा भय लोगों में समाप्त हुआ। अब व्यक्ति को किसी भी कुकृत्य को करने में 'पाप' बोध नहीं जगता, जिससे समाज में अपराध बढ़े हैं। "आज मनुष्य का ईश्वर अस्तित्व सभी धन मात्र है। पैसे की दुनिया में न पाप है न पुण्य न प्रेम है, न भावना। जो कुछ है बस सब धन ही है।"[१]

आज का मनुष्य यंत्रवत् हो गया है। मशीनों के बीच काम करते-करते वह स्वयं कब मशीन बन गया इसका आभास तक उसे नहीं हुआ। मन्नू भंडारी की कहानी 'शायद' में दो यांत्रिक परिवेशों के बीच फँसे व्यक्तित्वहीन होते हुए व्यक्ति की कहानी है। रखाल जो जहाज पर काम करता है। तीन साल बाद घर आता है। और अपने ही घर में वह अपने को अजनबी महसूस करता है उसे कहीं भी अपनापन नहीं लगता। वह जब बाहर से आता है तो अपनी पत्नी को प्यार करना चाहता है, पर कामकाजी पत्नी इस रोमांच का बोझ नहीं उठाना चाहती क्योंकि तीन सालों में पति के साथ न रहने पर उसे बच्चों के साथ अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा जिससे उसका सारा उत्साह ही समाप्त हो गया। वह अब केवल यांत्रिक जिंदगी ही जीती है। छुट्टी खतम होने पर वह अपनी पत्नी माला व बच्चों को छोड़कर यांत्रिक परिवेश में चला जाता है। यांत्रिक परिवेश में आते ही उसे लगता है- 'यार तुम जैसे लोगों को बहुत घुलना-मिलना नहीं चाहिए बीबी बच्चों में। इतनी शिक्षा देता है यह गुरु, तुम लोग फिर भी कुछ नहीं सीखते हो। बेटा अपनी जिन्दगी तो इस मशीन के साथ बँधी है, समझे उसको तेल पिलाओ और चलाओ।'[२] इस तरह आज के समय में व्यक्ति वास्तव में यांत्रिक जिंदगी ही जीता है परिवार में उसकी स्थिति एक मशीन की ही भांति होकर रह गयी है।

---

१. आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में राजनैतिक एवं आर्थिक चेतना- डॉ० पीताम्बर सरोदे, पृ० २८१.

२. शायद (कहानी) मन्नू भंडारी, पृ० १५५.

पश्चिमी जीवन पद्धति ने आज के सामान्य व्यक्ति के मन–मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव डाला साथ ही अर्थ के गहराते प्रभाव के कारण जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मूल्यों में बड़ा भारी परिवर्तन आया है। "आज की भौतिकवादी सभ्यता में पैसा ही सब कुछ है। हमारे सभी जीवन मूल्यों का आधार केवल पैसा रह गया है।"[१] यद्यपि परिवर्तन विकास का द्योतक है और हमेशा से एक युग के मूल्य कुछ समयावधि के उपरान्त परिवर्तित हो जाते हैं किन्तु इधर के कुछ सालों में जो मूल्यों में परिवर्तन आए वह बड़े ही द्रुतगामी रहे हैं परिणाम स्वरूप आज एक ही व्यक्ति को अपनी जीवनावधि के छोटे से दायरे में मूल्यों के इन परिवर्तनों को अनुभव करता है और इसी वजह से आज पीढ़ियों में अन्तराल बहुत अधिक हो गया है। इस मूल्य परिवर्तन ने सामाजिक जीवन दृष्टि में बदलाव को ग्रहण किया।

आज व्यक्ति की सोच में परिवर्तन आया है और व्यक्ति आत्मकेन्द्रित व स्वार्थी होता गया। संयुक्त परिवार टूटकर एकल परिवार में बँटने लगे और धीरे–धीरे सम्बन्धों में अर्थ का प्रभाव बढ़ता गया। व्यक्ति की सोच आर्थिक दृष्टि से, संकीर्ण होती गयी, वह भौतिकवादी हो गया परिणामस्वरूप भौतिक सुख–सुविधाओं की वस्तुएँ जुटाने में ही वह निरन्तर प्रयत्नशील होता गया। "जीवन में विज्ञान तथा वैज्ञानिक उपकरणों के अधिकाधिक प्रयोग ने आदमी को मशीन का दास बनाया।"[२] इसके लिए घर की स्त्रियों को भी अर्थोपार्जन के लिए घर से बाहर आना पड़ा। इससे स्त्रियों की स्थिति में बहुत ज्यादा सुधार हुआ। जिसका प्रभाव पति–पत्नी सम्बन्धों पर पड़ा। जिसे साठोत्तरी कहानियों ने बखूबी चित्रित किया है। (इसका उल्लेख अगले पाठ में विस्तार से किया गया है।) उद्योग धन्धों को बढ़ावा मिला जिससे औद्योगिकरण की प्रक्रिया में तेजी आयी। व्यक्ति रोजगार की तलाश में शहरों की ओर भागने लगा फलतः शहरों की जनसंख्या दिन दूनी रात चौगुनी तरक्की करने लगी नगरों की महानगरों में परिणति हुयी। इस महानगर की भीड़ में भी व्यक्ति अपने

---

१ आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में राजनैतिक एवं आर्थिक चेतना– डॉ० पीताम्बर सरोदे, पृ० २६३.

२. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी में मानव प्रतिमा हेतु भारद्वाज, पृ० २२३.

को अकेला महसूस करने लगा क्योंकि साधन सीमित हैं और भीड़ ज्यादा फलस्वरूप व्यक्ति अत्यधिक स्वार्थी हो गया। मानवता जैसी चीज इस भीड़ में जाने कहाँ खो गई। व्यक्ति-व्यक्ति का ही दुश्मन बन बैठा। मशीनों के प्रयोग ने व्यक्ति को ही मशीन बना दिया वह भावना शून्य होता गया। उसे अपना ही अस्तित्व असुरक्षित लगने लगा। "वस्तुतः आज का शहरी जीवन अनेक विसंगतियों से ग्रस्त है। पत्थरों की से घिरा हुआ जीवन और उसमें दम तोड़ते आकांक्षाओं के सपने नागरिक जीवन को बुरी तरह अपने चंगुल में जकड़े हुए हैं।"[१] इसका प्रभाव मानवीय सम्बन्धों में पड़ा। साठोत्तरी कहानीकारों ने अपनी कहानियों में इसका बड़ा ही यथार्थ स्वरूप हमारे समक्ष रखा है। महानगरों में आर्थिक तंगी ही मुख्य रूप से दिखायी पड़ती है। इस प्रकार महानगरों में जीवनयापन करने वाले व्यक्तियों में न सिर्फ सामान्य व्यक्ति ही अर्थाभाव से प्रताड़ित है बल्कि उच्च मध्य वर्ग का जीवन जीने वाले वे व्यक्ति भी हैं जो अफसर जैसे पदों पर कार्यरत हैं। इनके पास सब कुछ होते हुए भी कुछ नहीं की स्थिति है। श्रवण कुमार की 'मैं' कहानी में एक ऐसे ही उच्च वर्गीय व्यक्ति की आर्थिक तंगदस्ती को दर्शाया है।

श्रवण कुमार की कहानी 'मैं' में एक ऐसे ही उच्चवर्गीय व्यक्ति की आर्थिक तंगी का चित्रण प्रस्तुत करती है, "मैं जिसके दायी ओर एक कोने में रेफ्रिजरेटर पड़ा है, मैं जिसके बायीं तरफ सनमाइका टापवाला डाइनिंग टेबिल है, मैं जिसके दूसरे कमरे में छह फुट ऊँची आइने वाली स्टील की आलमारी खड़ी है और जिसके पास ही एक नया-नया-सा लगने वाला दीवान बिछा है। चारों तरफ सब कुछ है, लेकिन कुछ भी नहीं है। एक सौ पैंसठ रुपए मकान किराया, तीस रुपए बस भाड़ा, पचीस रुपए माँ को मनीआर्डर... कुल जमा सात सौ दस रुपए, पैंतीस पैसे। हर महीने बैंक में तनख्वाह आकर जुड़ जाती है, हर महीने बैंक बैलेंस वही....।"[२] इस प्रकार यह कहानियाँ किसी एक अफसर या 'मैं' की नहीं बल्कि इस वर्ग के 'सब' की कहानी कहती हैं।

---

१ साठोत्तर हिन्दी कहानी - डॉ० विजय द्विवेदी, पृ० ९८.

२. 'जहर', 'मैं' - श्रवणकुमार, पृ० ५-६.

वर्तमान समय में सामान्य व्यक्ति को पल-पल पर यह एहसास होता है कि आज समाज में पैसा ही सब कुछ है पैसा है तो सब कुछ है। व्यक्ति की शक्ति उसकी आर्थिक सम्पन्नता से ही आँकी जा रही है। "आज अर्थ जीवन मूल्य बनकर उभरा है। व्यक्ति का मूल्यांकन और महत्व अर्थ के आधार पर आँका जाने लगा है।"[१] जिस व्यक्ति के पास जितना पैसा है वह उतना ही शक्तिशाली और समाज में प्रतिष्ठित है। मानव-मूल्यांकन आज धन के आधारपर ही हो रहा है वहीं गरीब व्यक्ति का समाज में कोई अस्तित्व नहीं है कोई उसे नहीं पूछता न सम्बन्ध बनाने का प्रयास करता है। ऐसे लोगों से सम्बन्ध होने पर भी (या जान-पहचान रही हो) उसे तोड़ने का प्रयास करते हैं और यदि सामना हो जाए तो अनदेखा कर कतरा कर निकल जाना चाहते हैं। वहीं पैसे वाले लोगों से चाहे वह किसी भी रीति से (या गलत तरीकों से) कमाया हुआ पैसा हो। सभी येन केन प्रकारेण उससे मित्रता व घनिष्ठता बनाने या बढ़ाने का प्रयास करते हैं। भीष्मसाहनी की 'पटरियाँ' कहानी में नायक केशोराम जो चोपड़ा जी का छोटा दमाद है आर्थिक दृष्टि से कमजोर है उससे चोपड़ा साहब सीधे मुँह बात तक नहीं करते न इज्जत देते हैं वहीं बड़ा दमाद जो सम्पन्न है उसके स्वागत-सत्कार के लिए चोपड़ा जी सदा तत्पर रहते हैं। वही उसका मित्र बाबू हरगोविन्द है जिसने दिन दूनी रात चौगुनी तरक्की कर ली और आज तीन मकानों का मालिक है। अब बादाम की गिरियाँ दिन भर चबाता रहता है। वह सोचता है-- "सबसे बड़ी चीज दुनिया में पैसा है, पोजीशन है। बाकी सब ढकोसला है। सब बकवास है। ताकत और पैसा और रौब-दाब, इससे बढ़कर कोई चीज दुनिया में नहीं है। जिसके पास पैसा है उसके पास सब-कुछ है।"[२] वास्तव में केशोराज के ये विचार ही वर्तमान जीवन का सत्य है। इस कहानी में 'पटरी' जीवन की सुख-सुविधाओं का तथा 'कटरा राधोमल' (जहाँ केशोरामजी अपनी पत्नी के साथ रहते हैं) सामान्य व्यक्ति की संघर्षमय जिन्दगी का प्रतीक बनकर आते हैं।

---

१. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में सामाजिक परिवर्तन- डॉ० भैरूलाल गर्ग, पृ० ९०.

२. भटकती राख (पटरियाँ कहानी) भीष्म साहनी, पृ० १३.

'जिन्दगी और गुलाब के फूल' में समाज पर अर्थ का बढ़ता प्रभाव पूरी ईमानदारी के साथ दृष्टिगोचर होता है। बहन कमाने लगती है तो भाई के प्रति स्नेह बन्धन टूटता नजर आता है। यहाँ तक कि बेटे के बेकार होते ही माँ का बेटे के प्रति उदासीन भाव धीरे-धीरे बढ़ता जाता है। उसके व्यवहार में यह परिवर्तन दर्शाता है कि माँ जैसा निश्छल प्यार भी आज अर्थ की तरफ झुकता नजर आ रहा है।

आज के वैज्ञानिक युग में जहाँ व्यक्ति भौतिकता से परिपूर्ण होता जा रहा है। व्यक्ति के ऊपर 'अर्थ' हावी हो जा रहा है वहीं वह पूरी तरह से भावना शून्य होता जा रहा है। यहाँ तक कि आज 'प्रेम' पर भी पूरी तरह से अर्थ हावी होता जा रहा है। आज व्यक्ति की ऐसी धारणा बन गई है कि यदि पैसा है तो उससे ईमान, प्रेम, सम्मान आदि सब कुछ खरीद सकता है। डॉ० पीताम्बर सरोदे के अनुसार "आज की दुनिया में पैसा सर्वोपरि है। अर्थ के पीछे ईमान, प्यार बिकता है। आत्मसम्मान और शरीर बिकता है। धन के इस विकराल प्रभाव से कोई छूट नहीं सकता।"[१] हिन्दी कहानियों में इस पर कई कहानियाँ लिखी हैं। श्रीकान्त वर्मा की कहानी 'शवयात्रा' इसी सन्दर्भ में लिखी एक सशक्त कहानी है जिसमें "इमरती एक वेश्या है और बंशी लाल म्यूनिसिपैलिटी की मैलगाड़ी चलाता है। वह इमरती को रोज देखता था।.... वह इमरती से मिलना चाहता था। परन्तु सोचता था कि जब पैसा होगा तो वह इमरती को मिलने जरूर आएगा। मगर वह जा कभी न सका। इतने पैसे ही नहीं आए। वह जानता था कि इमरती के ग्राहक भले ही कम आएँ, रेट उसका ऊँचा है वह उससे नीचे नहीं उतरेगी।[२] परन्तु वह मिल भी न पाया था कि एक दिन इमरती मर गई....वह उसे अपनी मालगाड़ी में ले जाता है।.... "वह इमरती को इतना ज्यादा प्यार करता था कि अन्त में वह उसे अपनी पत्नी का स्थान देता है। यद्यपि वह मर गई है, वह जानता है, पर उसके अवचेतन में उसके साथ रागात्मक सम्बन्ध अत्यन्त गहरा है।"[३] इस प्रकार वर्तमान समय में

१. आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में राजनैतिक एवं आर्थिक चेतना - डॉ० पीताम्बर सरोदे, पृ० २६३

२. शवयात्रा : श्रीकान्त वर्मा, नई कहानी, प्रकृति व पाठ, डॉ० सुरेन्द्र, पृ० ४१८.

३. शवयात्रा : श्रीकान्त वर्मा, नई कहानी, प्रकृति व पाठ, डॉ० सुरेन्द्र, पृ० ४२३.

सच्चे प्रेम में भी आर्थिक विपन्नता बाधक हो गई है। इस बात का ज्वलन्त प्रमाण प्रस्तुत करती है यह कहानी।

६. नौकरी पेशा व्यक्ति पर अर्थ का गहराता प्रभाव

आधुनिक जटिल सामाजिक परिवेश में सामान्य नौकरीपेशा व्यक्ति अपेक्षाकृत अधिक असंतुष्ट एवं सतत संघर्षरत है क्योंकि उसे बँधे हुए समय में बँधी हुई तनख्वाह मिलती है और यदि वह 'ओवरटाइम' या 'पार्ट टाइम' करता भी है तो थोड़ा ही समय बच पाता है जिससे पैसे भी थोड़े ही ज्यादा बढ़ पाते हैं परन्तु थकान ज्यादा बढ़ती है ऐसे में वह अपने परिवार के लिए समय नहीं निकाल पाता और जीवन में चारों ओर उसे असंतोष ही असंतोष दिखायी पड़ता है। उसका सम्पूर्ण जीवन अपने रहन-सहन के स्तर को सम्मानपूर्ण एवं सुन्दर बनाने के प्रयास में लगा रहता है। वह भविष्य की चिन्ता में भयावह वर्तमान को भोगता है। अपनी जीविका कमाने के लिए उसे आजीवन जुझारू बना रहता है तभी वह अपना तथा अपने परिवार का पेट पाल सकता है। नौकरी पेशा व्यक्ति न सिर्फ पेट ही पालता है बल्कि उसे अपने बच्चों की शिक्षा, उनके विवाह एवं अपना जीवन स्तर ऊपर उठाने के प्रयासों में ही दिन बीतता जाता है और इसके लिए उसे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है और अन्त में उसे न सुख मिल पाता है न संतोष और न सफलता। मिलती है तो शारीरिक एवं मानसिक थकान, एक अजीब उदासी, निराशा ऐसे में व्यक्ति अपने को समय से पहले ही बूढ़ा व थका हुआ पाता है। साठोत्तरी हिन्दी कहानियों में समाज के सामान्य नौकरी पेशा व्यक्ति की मनःस्थितियों का चित्रण बड़े ही मार्मिक व यथार्थ रूप में किया गया है। व्यक्ति की अपनी रुचि-अरुचि का कोई औचित्य नहीं है और न वह स्वतन्त्र है अपनी रुचियों के अनुसार कार्य करने में। आर्थिक विपन्नता उसकी रुचियों को या तो विकृत कर देती हैं या समाप्त ही कर देती हैं। व्यक्ति चाहता कुछ है और आर्थिक विषमता उसे कुछ और ही करने पर मजबूर कर देती है। से०रा० यात्री की 'दर्पण' कहानी में एक ऐसे क्लर्क की मनोवेदना का चित्रण है जो अर्थाभाव के कारण अपने मित्र के बच्चे को जन्मदिन पर उपहार देने में असमर्थ है

इसके लिए वह दूसरे मित्र से पैसे उधार माँगता है। वास्तव में यह कहानी सभी नौकरी पेशा व्यक्ति के जीवन का प्रतिनिधित्व करती है और "उनके जीवन का 'दर्पण' बन जाती है।"[1] सामान्य नौकरी पेशा व्यक्ति अपने मन में तरह-तरह के अरमानों को दबाए हुए जीवन के अर्थाभावों के थपेड़ों को झेलता हुआ उस एक तारीख का इन्तजार करता है। जब उसे तन्ख्वाह मिलती है वह दिन उसकी जिन्दगी में बसंत लेकर आता है और धीरे-धीरे पतझड़ शुरू हो जाता है यानि एक तारीख के अतिरिक्त जीवन में पतझड़ ही पतझड़ दिखता है। ममता कालिया की 'बसंत सिर्फ एक तारीख' कहानी व्यक्ति की इसी मनोदशा का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करती है। "हर महीना जब बीत जाता" तो व्यक्ति को हल्का अचंभा और गहरी खुशी होती है कि वे "भूख, मँहगाई, बीमारी और दुर्घटनाओं को चकमा देते हुए एक और महीना जिन्दा रह लिए।"[2] इस प्रकार आर्थिक विवशता ने मनुष्य के सपनों को रौंद डाला है अर्थ के अभाव में व्यक्ति को अपनी जिन्दगी 'अर्थहीन' लगने लगी है उसके जीने की इच्छा मरती जा रही है वह समय से पहले ही बूढ़ा व लाचार हो गया है। ममता कालिया की ही कहानी 'तस्की को हम न रोएं' में व्यक्ति की इसी विवशता का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया गया है। "निजी रद्दोबदल के सिलसिले में उसको समझ नहीं आ रहा था। कब उसकी कमर आधा फुट चौड़ी हो गयी, किस दिन सिर में पहला सफेद बाल झलका, कब उसका पति फैक्टरी से रात ग्यारह बजे लौटने लगा, कब बच्चों ने उसके साथ छुआ छुई का खेल खेलना बन्द कर दिया।"[3]

ये उसके शरीर में आर्थिक चोटों की मार के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। जिन्हें समाज का सामान्य व्यक्ति महसूस करता है और इन्हीं अनुभवों को कहानियों के माध्यम से कहानीकारों ने अभिव्यक्त किया है। आज नौकरी पेशा सामान्य व्यक्ति यदि अर्थ के साधनों (माध्यमों) को बढ़ाना भी चाहता

---

१. 'धरातल', 'दर्पण'- से०रा० यात्री, पृ० १३.

२. सारिका, जून १९७८ 'बसंत सिर्फ एक तारीख'- ममता कालिया, पृ० २७.

३. 'एक अदद औरत', 'तस्की को हम न रोयें'- ममता कालिया, पृ० ४३.

है तो भी उसका शारीरिक परिश्रम ही कहीं ज्यादा बढ़ता है उसकी तुलना में आमदनी बहुत कम हो पाती है जिससे अर्थाभाव के साथ-साथ वह समयाभाव से भी पीड़ित होने लगता है और इसका प्रभाव उसके परिवार पर पड़ता है जहाँ पत्नी को पति का सुख और बच्चों को पिता का सुख प्राप्त नहीं हो पाता। सामंजस्य की कमी के कारण गृह कलह प्रारम्भ हो जाते हैं और व्यक्ति शारीरिक व मानसिक दोनों रूपों में अपने आपको थका पाता है। "व्यक्तिगत स्तर पर आर्थिक विषमताएँ तथा विपन्नताएँ मानव प्रतिमा के सन्तुलन को ध्वस्त करती हैं।"[1] "मुहम्मद ताहिर की 'समय'"[2] कहानी में नायक ऐसा ही पात्र है, जो नौकरी करता हुआ घर की आवश्यकताओं की पूर्ति में अपने आपको सफल नहीं पाता। अतः वह पार्ट-टाइम नौकरी करता है फिर भी वह घर के खर्चों को पूरा नहीं कर पाता। "शरणबुंध की 'कुत्ते' कहानी में नायक पार्ट-टाइम के रूप में ट्यूशन करता है किन्तु इससे भी उसे संतुष्टि नहीं मिलती क्योंकि लोग ट्यूशन वाले को पैसा देते हैं तो मानो उसे खरीद लेते हैं, "किन्तु इससे तो अच्छा है कि आदमी किसी रंडी का भड़ुवा बनकर कुछ कमाई कर ले।"[3] इसी प्रकार डी० ए० बढ़ते ही बाजार के भाव भी चौगुनी तरक्की करते हैं उससे नायक अत्यधिक हतोत्साहित होता है किन्तु डी० ए० बढ़ते ही पत्नी द्वारा सोने की माँग पर तो वह टूटकर रह जाता है कि आर्थिक स्थितियों को भली-भाँति जानने-समझने, उसके दुःख-सुख में साथ देने वाली पत्नी भी नहीं समझ रही और वह मन की व्यथा मन में ही दबाए अपने व अपने परिवार के बोझ को ढोए चला जा रहा है। आर्थिक तंगियों से उसे अपनी जिन्दगी सन्दर्भ विहीन खोखली लगती है। सामान्य नौकरी पेशा व्यक्ति की तनख्वाह उतनी ही है या बढ़ती भी है तो उससे कई गुना बाजार के भाव बढ़ जाते हैं और इस प्रकार पति-पत्नी में इस छोटी इनकम को लेकर आए दिन झगड़े होते रहते हैं। श्री हर्ष की कहानी 'रिश्ते' में भी इसी आर्थिक तंगदस्ती का चित्रण मिलता है

---

१. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी में मानव प्रतिमा- हेतु भारद्वाज, पृ० २९.
२ कहानी-अक्टूबर, १९७० 'समय'- मुहम्मद ताहिर, पृ० ३५.
३. '२० नये कहानीकार', 'कुत्ते'- शरणबंधु, पृ० १९.

जिसका नायक कम तनख्वाह पाता है जिससे घर खर्च नहीं चल पाता परिणाम स्वरूप पति-पत्नी के बीच तनाव बना रहता है, जिसका प्रभाव सम्बन्धों पर भी पड़ता है। नौकरी पेशे व्यक्ति को सदा यही चिन्ता सताए रहती है कि इस बँधी बँधाई 'इनकम' में वह घर कैसे चलाएगा। खर्चों में कैसे कमी करे कि इन पैसों से वह घर खर्च पूरा कर सके। "नौकरी पेशा व्यक्ति, चाहे वह छोटे अथवा बड़े पद पर है, सब स्थिति से और अधिक परेशान है। माह के अन्त में मिलते चन्द कागज के टुकड़े उसके लिए महीने की रोटी और अन्य आवश्यकताएँ जुटाने में समर्थ नहीं है।"[१] इसी चिन्ता में वह डूबा रहता है। उसका ध्यान पत्नी या उसके बनाव-शृंगार पर जा ही नहीं पाता। "मधुकर सिंह की 'सैलाब'"[२] में एक पत्नी की इसी मनोदशा का चित्रण देखने को मिलता है वह पति व बच्चों को अच्छा व्यंजन खिलाना-पिलाना व पति को शृंगार द्वारा रिझाना चाहती है। इसके लिए उसे उधार लेना पड़ता है परन्तु नौकरी करके आया हुआ पति वेतन के रुपयों का हिसाब लगाते-लगाते ही सो जाता है। पत्नी के 'मेकअप' पर ध्यान भी नहीं दे पाता क्योंकि उसका ध्यान तो वेतन के रुपयों पर ही केन्द्रित है। इसी की चिन्ता में डूबा, निरन्तर नौकरी करता हुआ वह यह समझ ही नहीं पाता कि उसकी उम्र कैसे बढ़ती गई और उसने कब बुढ़ापे की दहलीज पर कदम रखा। यह बुढ़ापा भी आर्थिक मार के कारण समय से पहले ही व्यक्ति में दिखाई देने लगता है। रमेश चन्द्र शाह की 'कहानी' के नायक में ऐसे ही व्यक्ति को देखा जा सकता है। उसकी मनोवेदना इस प्रकार है, "दरअसल मेरी लड़ाई किसी और से नहीं खुद अपने-आप से है कि मैं क्यों बिना लिए दिए, बिना कुछ किए-कराए तैंतीस साल का हो गया। मैं कितनी तेजी से बुढ़ा रहा हूँ? सचमुच मेरी उम्र तेईस साल से ज्यादा नहीं होनी चाहिए। ये दस बरस मेरे ऊपर किसने लाद दिए?"[३]

---

१. समकालीन कहानी युगबोध का सन्दर्भ, डॉ० पुष्पपाल, पृ० ११२.

२ 'सचेतन कहानी : रचना और विचार' (सैलाब) मधुकर सिंह, पृ० ९२.

३ 'जंगल में आग' 'कहानी'- रमेश चन्द्र शाह, पृ० १०७.

"सामान्य वर्ग आर्थिक अभावों से सर्वाधिक पीड़ित है। अपना परिश्रम बेंचकर भी इन्हें योग्य पारिश्रमिक प्राप्त नहीं होता। यह आर्थिक असमानता ही वर्ग के सामाजिक एवं सांस्कृतिक मार्ग का अवरोध करती है।"[१]

इसी प्रकार सिद्धेश की कहानी 'सच्चाई' में नायक कलकत्ते जैसे महानगर में रहता है जिसमें महानगरीय जीवन की सच्चाइयों को दर्शाया है। वहाँ दम्पत्ति के रहते हुए जीवन के दस बारह वर्षो में ही उन्हें लगता है। जैसे सब समाप्त हो गया क्योंकि महानगर की भीड़ में जीता हुआ भी सामान्य व्यक्ति अपने को नितान्त अकेला पाता है। इंक्रीमेन्ट बढ़ने के साथ ही बाजार भाव के दाम भी कई गुना बढ़ जाते हैं। इस मँहगाई से आज का सामान्य व्यक्ति चाहे वह गाँव, शहर, नगर या महानगर का हो, अत्यन्त चिन्तित है।

७. समाज में नारी की स्थिति पर अर्थ का प्रभाव

वर्तमान समय में घर की स्थिति को सुधारने की दृष्टि से घर की औरत को नौकरी के लिए घर की दहलीज से बाहर कदम निकालना पड़ा। नौकरी पेशा स्त्री को अब दोहरी जिम्मेदारियों का वहन करना पड़ा। इसके साथ-साथ उसे सांस्कृतिक संकट का भी सामना करना पड़ा। क्योंकि उसे अर्थ संचय हेतु घर के बाहर काम के लिए आना पड़ा, दूसरे पुरुषों के सम्पर्क में रहना पड़ा जहाँ कई परिस्थितियों में पर-पुरुष से यौन-सम्बन्ध भी स्थापित करना पड़ा। विवाह पूर्व यौन सम्बन्धों को आज की नारी अन्यथा भी नहीं लेती 'ऊँचाई' कहानी की नायिका विवाह-पूर्व के यौन सम्बन्धों को बेझिझक अपने पति के समक्ष प्रकट कर देती है और उसके लिए उसके मन में पछतावा भी नहीं है। महीप सिंह की 'कील' महेन्द्र भल्ला की 'एक पति के नोट्स' कमलेश्वर की 'राजा निरबंसिया' राजेन्द्र यादव की 'जहाँ लक्ष्मी कैद है' कृष्ण बलदेव वैद की 'त्रिकोण' आदि कहानियों में नारी के इसी बदले हुए रूप का चित्रण दृष्टिगोचर होता है। वर्तमान समय में यदि लड़की कमा

---

१. अमृतराय का कथा साहित्य- डॉ० (श्रीमती) कृष्णा माहेश्वरी, पृ० ५२.

रही है तो उसका विवाह अपने स्वार्थसिद्धि के लिए माँ-बाप टालते हैं क्योंकि उन्हें वह आर्थिक संबल प्रदान कर रही है यद्यपि उसके अविवाहित होने का आभास उन्हें सालता है। हेतु भारद्वाज नौकरी पेशा स्त्री के सन्दर्भ में विचार प्रस्तुत करते हैं-- "नौकरी पेशा औरत की जो प्रतिमा स्वान्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी में है वह अविवाहित रहकर अपने भाई-बहन तथा माँ-बाप का पालन करती है। फिर भी उसके परिवार पर बोझ बनी रहने का आभास परिजनों को होता रहता है।"[१]

नारी अर्थोपार्जन के लिए घर के बाहर आयी, उसने पुरुषों के साथ कन्धे से कन्धे मिलाकर काम किया जिससे नारी में आत्मनिर्भरता का जन्म हुआ। वह पुरुष के साथ समानता का अधिकार पाने के लिए जागरूक हुयी। नारियों ने एकजुट होकर 'नारी स्वतन्त्रता व बराबरी के हक के लिए आवाज उठायी आज स्त्री पूरी तरह से स्वावलम्बी हुयी। "सामान्य वर्ग की स्त्रियों को भी जीविका के लिए पुरुषों के बराबर कार्य करना पड़ता है। इससे जहाँ एक ओर स्त्री-पुरुषों में समानता रहती है तथा स्त्रियों में आत्मनिर्भरता आती है।"[२]

नौकरी पेशा स्त्री को नौकरी करते हुए कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। जैसे गर्भावस्था के दौरान उन्हें भरपूर आराम की आवश्यकता होती है परन्तु पैसों की लालच में न वे नौकरी छोड़ पाती है और न नौकरी के दौरान इतनी छुट्टी मिलती है कि वह छुट्टी ही ले सकें। अर्थाभाव में काम करते हुए कई बार युवावस्था में उन्हें अपने चरित्रहीन अधिकारियों की कामवासना का शिकार होना पड़ता है जिससे लज्जावश कई बार वे आत्महत्या भी कर लेती हैं। मार्कण्डेय की कहानी 'कल्यानमन' में मंगी की आर्थिक विपन्नता की भयावह स्थितियों का यथार्थ चित्रण मिलता है। वर्तमान समय की नारी का व्यक्तित्व स्वतन्त्र है। वह पति से अलग अपने व्यक्तित्व को स्वीकारती है। उसकी अपनी महत्वकांक्षाएँ, रुचियाँ व आवश्यकताएँ हैं। अब पहले की तरह पति पर निर्भर नहीं है बल्कि आर्थिक दृष्टि से पति का हाथ बँटाती है। उसे आर्थिक

---

१ स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी में मानव प्रतिमा : हेतु भारद्वाज, पृ० १४५.

२ अमृत राय का कथा साहित्य डॉ० (श्रीमती) कृष्णा माहेश्वरी, पृ० ५२.

स्वालम्बन ने स्वतन्त्र व्यक्तित्व प्रदान किया। हेतु भारद्वाज के अनुसार "वह अब पति के ऊपर निर्भर नहीं बल्कि पति के साथ आर्थिक संकट में भागीदारी करती है।"[१] आज पति-पत्नी के बीच स्वामी-दासी वाली परम्परा न होकर मैत्री भाव पनपा है। पति-पत्नी के बीच अब विवाह एक धार्मिक कर्म न होकर पति पत्नी की आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन बन गया।

स्वातन्त्र्योत्तर नारी जीवन में आये परिवर्तनों पर कई कहानीकारों ने अपने विचार प्रकट किये हैं। मन्नू भण्डारी ने भी अपनी कहानियों के माध्यम से इन परिवर्तनों पर काफी व्यंग्य किये हैं। मन्नू भण्डारी की कहानी 'रानी माँ का चबूतरा' में नारी जीवन की पीड़ाओं और उसकी दयनीय स्थिति पर प्रकाश डाला है। वास्तव में आज समाज में जो कमजोर, दयनीय व निरीह है चाहे आर्थिक रूप से या शारीरिक रूप से, वही निन्दा का पात्र है। 'रानी माँ का चबूतरा' में आस-पास के लोग गुलाबी को चुड़ैल समझते हैं। मजबूरी में वह नौकरी करती है ओर जब वह अपने बच्चों को छोड़कर नौकरी पर जाती है तो पास-पड़ोसी सभी उसकी निन्दा करते हैं। एक दिन बच्चा नाली में गिर जाता है तो मुहल्ले वाले उसे उठाते तक नहीं। जब वह उन पर चीखती-चिल्लाती है तो सब उसे कर्कशा और बहुत बुरी औरत कहते हैं, पर सत्यता यह है कि वह गरीब है, अभावग्रस्त है, बच्चों के खातिर वह नौकरी करती है इसलिए वह बच्चों को छोड़कर जाती है। एक दिन जब वह दुखी हो जाती है तो तंग आकर कहती है- "आ हा बड़े आये बस्ती वाले। पहले कोठरी खोलकर जाती थी तो मेरा छोरा सरकते-सरकते मोरी में आकर गिर गया। किसी ने उठाया नहीं। बड़े अपने बनते हैं। छोरा भी तो न जाने किस मिट्टी का बना है। सारे दिन मोरी में सड़ता रहा, पर मरा नहीं, मर जाता तो पाप कटता।"[२] इस तरह एक स्त्री की दयनीय स्थिति का चित्रण बखूबी इस कहानी में किया गया है। आज नौकरी करने वाली स्त्री पास-पड़ोस के लिए रहस्यमयी बन जाती है

---

१. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी में 'मानव-प्रतिमा'- हेतु भारद्वाज, पृ० २३०

२. रानी माँ का चबूतरा : मन्नू भण्डारी, प१० ३७.

इस सन्दर्भ में सन्तबख्श लिखते हैं- "आज हर नारी इसी तरह जूझ और टूट रही है और पड़ोस के लिए रहस्यमयी बनी हुयी है।"[१]

इसी अर्थाभाव की विवशता ने नारी को वैश्यावृत्ति के लिए भी मजबूर कर दिया जहाँ चौका-बासन आदि करने, शिक्षित होने पर भी रोजगार न मिलने या आमदनी बहुत न्यूनतम होने पर जहाँ अर्थाभाव से उसे जूझना पड़ा वहीं वेश्यावृत्ति से उसकी आर्थिक स्थिति में सुधार आया। किन्तु यह समाज ऐसी नारियों को उपेक्षा की नजरों से देखता है उन्हें समाज से बहिष्कृत किया जाता है और वहीं समाज के लोग जो उसके साथ मुँह काला करते हैं उसे ऐसा करने से मजबूर करते हैं (उचित रोजगार न देकर) अमृतराय के अनुसार-- "आर्थिक अथवा अन्य किसी विवशता के कारण शारीरिक व्यापार करने वाली स्त्री को कुलटा अथवा व्याभिचारिणी कहना हमारे पवित्रयाभिमानी ढोंगी समाज के लिए नितान्त सरल है। इस प्रकार से अप्रत्यक्ष रूप से तिल तिलकर मारने वाले समाज को अमृतराय नितान्त क्रूर मानते हैं।"[२]

हंस पत्रिका के एक लेख में भी नारी की इसी समस्या को उजागर किया है--

"कैसी मइया मिली थी उसकी' उमर भर खुद रंडी बनी रही। देह बेच-बेचकर दारू पीती रही। अब उमर गिर गयी तो अपनी ही जाया बेटी को रंडी बनाना चाहती थी। उसकी कमाई पर रंगरहस करना चाहती थी।"

पर इसमें उसकी मइया का भी क्या कसूर था? शैला का बाबा भी तो अपनी बेटी के छिनालपन पर आँखें बन्द किए रहता था। उसे क्या पता नहीं था कि उसकी बेटी रात-रात भर बाबू के कमरे में पड़ी क्या करती रहती थी। शैला को रंडी बनाने में क्या उसके बप्पा का कसूर नहीं था?.... शैला का बप्पा मरद होकर नामरद बन रहा था, तो जूठन की मइया तो फिर भी औरत थी- समाज की कमजोर जात! ऊपर से राड़ भी।

---

१ नई कहानी : कथ्य और शिल्प- डॉ० सन्तबख्श सिंह, पृ० १२०-१२१.

२ अमृत राय का कथा साहित्य- डॉ० (श्रीमती) कृष्णा माहेश्वरी, पृ० ८३.

यह किस्सा तो बालन्डिया बस्ती के लिए आम हो जैसे। अब रुकमी को ही लीजिए उस दिन जूठन से कह रही थी "जूठन मेरी सहिया (सहेली) किसी तरह मेरा भी मेल बिठा दे ना बाबू के साथ, बड़ा गुन गाऊँगी रे! दो 'बेकत' की मजूरी में कुछ पूरा नहीं पड़ता है, छौ बेकत के पलिवार में बप्पा को भी रोज पैटी पर महुआ चाहिए ही होता है।

.....बाबू से मेल बिठा दोगी तो छहो बेकत तेरे कस में होंगे रे जो तू कहेगी सो करेंगे।

"इह" मन टीस उठा था जूठन का। फिर भी उसने पूछा था उससे, "तेरा बप्पा तेरे को कुछ कहेगा नहीं?"

"इह! कहेगा क्या? मरद होता मेरा बप्पा तो घर की खरची नहीं चलाता?"[१]

इस प्रकार आर्थिक तंगदस्ती नारी को वेश्यावृत्ति जैसे घिनौने कर्म को करने पर मजबूर कर देती है।

आज जिस व्यक्ति के घर में दो वक्त की रोटी के लिए पैसा नहीं जुट पाता उनके घर में बेटियों के विवाह की कल्पना भी करने मात्र से वे भयभीत हो जाते हैं। ऐसे परिवारों में बेटी का विवाह एक विकट समस्या बन जाती है। आर्थिक मजबूरियों में लड़की का विवाह अगले साल पर टाल दिया जाता और वह अगला साल आने का नाम नहीं लेता। इस समस्या पर अनेकों कहानियाँ लिखी गई हैं। सुधा अरोड़ा की कहानी 'साल बदल गया' इसका सशक्त प्रमाण है। एक तरफ तो सम्पन्न वर्ग साल बदलने का जश्न मनाते हैं दूसरी तरफ कथानायिका अपने आर्थिक प्रश्नों से घिरी नये साल में कोई बदलाव महसूस नहीं करती। क्योंकि वह पहले भी अपने परिवार में आर्थिक तंगियों से गुजर रही थी और आज साल बदलने पर भी उसे आर्थिक तंगदस्ती से गुजरना पड़ रहा है। जब उसकी पुत्री साल बदलने की बात माँ से कहती है तो माँ की प्रतिक्रिया इस प्रकार व्यक्त

---

१. अक्टूबर १९८८/हंस/ पृ० ६५.

होती है "अरे, तो नए साल को कौन सुरखाब के पर लगे हैं?" "तुम्हारे बाऊ जी की तनख्वा तो वही पुरानी है। उस पर तीन-तीन जवान बेटियाँ आँखों के सामने कंवारी खड़ी हों तो..." और उनका बेटी पुराण शुरू हो गया। बड़ी बहन एक मिनट को ठिठकी फिर आलू काटने लगी। वह जानती थी कि उसकी दोनों जुड़वा बड़ी बहनें हर साल प्रार्थना की मुद्रा में हाथ जोड़कर मनाती हैं--ईश्वर करे, इस घर में आखिरी साल हो।"[१] वास्तव में यह कहानी वर्तमान भारतीय परिवेश के ऐसे परिवारों का यथार्थ रूप जो आर्थिक विपन्नता के पहाड़ के तले दबा जा रहा है, का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करती है।

आज की नारी ने जहाँ घर की स्थिति सुधारने की नीयत से घर के बाहर कदम रखा, उससे उसकी सोच, स्थिति में सुधार तो आया ही किन्तु इसके साथ ही उसके पारिवारिक जीवन में बिखराव और खास-तौर से पति-पत्नी सम्बन्धों पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा, उसके आत्मीय सम्बन्ध टूटे हैं। "यहाँ तक कि आर्थिक संकट ने परिवारगत सम्बन्धों में भी परिवर्तन की स्थिति उत्पन्न कर दी है। पति-पत्नी सम्बन्धों में परिवर्तन लाने के लिए किसी हद तक आर्थिक संकट ही उत्तरदायी है, जिसने पति के स्वामित्व के परम्परागत मूल्य को खंडित कर दिया।"[२] वह घर-बाहर की जिम्मेदारियों को ढोते हुए स्वयं टूट सी गई है । उसे मानसिक व शारीरिक थकान से बुरी तरह से झकझोर दिया है और इसका असर पारिवारिक वातावरण में दृष्टिगोचर होता है। वह सोचने पर विवश हो जाती है कि घर के बाहर कदम रखने का उद्देश्य उसका 'घर में सुख' देना था परन्तु वह पहले जैसा सुख-चैन, वहं घर? वह पति? वह बच्चे जो आत्मीयता से सराबोर थे। वे वास्तव में कहाँ गए उसकी इसी घुटन, बेचैनी और व्याकुलता को साठोत्तरी हिन्दी कहानियों ने अपना विषय बनाकर बड़ी मार्मिकता से चित्रित किया है। रमेश बक्षी की 'जिनके घर ठहते हैं', निर्मल वर्मा की 'धागे' उषा प्रियम्वदा की 'एक और विदाई' में नारी की इसी अनुभूति का सशक्त चित्रण देखने को मिलता है।

---

१. कहानी, अप्रैल १९७१ 'साल बदल गया'- सुधा अरोड़ा, पृ० ३७.

२. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी में सामाजिक परिवर्तन : डॉ० मैरूलाल गर्ग, पृ० ९०.

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि आज नारी की स्थिति यद्यपि अपेक्षाकृत सुधरी है। नारी को पुरुष के समान अधिकार मिले हैं तथापि नारी आज भी शोषित है। संविधान द्वारा स्त्री-पुरुष को समानाधिकार दिया जाना मात्र कागज तक ही सीमित होकर रह गया है। वास्तव में अधिकांश पुरुष के विचार स्त्री के सम्बन्ध में अब भी वही पुरातन पंथी हैं। स्त्री आज शिक्षिता होते हुए भी प्राचीन संस्कृति के मोह को छोड़ नहीं पा रही और पुरुष की मानसिकता कि वह पर स्त्री से सम्बन्ध जोड़ने की कल्पना तो कर सकता है पर अपनी स्त्री का पर पुरुष से खुल कर बात करना उसकी सहनशक्ति से परे की बात है। पत्नी के विषय में वह सदैव शंकालु प्रवृत्ति लिए रहता है जिससे स्त्रियाँ आज आर्थिक रूप से स्वावलम्बी होने के बावजूद पुरुष प्रधान समाज में पग-पग पर शोषित होती हैं।

८. निम्न स्तरीय व्यक्ति की आर्थिक विवशता

देश में बढ़ती आर्थिक विपन्नता ने जहाँ सामान्य व्यक्ति के जीने की स्थितियों को दूभर कर दिया है। आज वह किसी भी क्षेत्र में कदम बढ़ाता है। उसे आर्थिक समस्याएँ ही मथती रहती हैं। ऐसे में समाज में निम्न स्तर का जीवन जीने वाले भिखारी वर्ग या तमाशा आदि दिखाकर अपनी जीविका कमाने वाले लोगों की स्थिति तो गैर गुजरी ही है। समाज का ऐसा वर्ग सबसे ज्यादा जुझारू तथा सबसे कम आय पाने वाला होता है। उसे तो सिर्फ दो वक्त की रोटी की ही चिन्ता सताए रहती है जिसे वह नमक व प्याज के साथ खा ले। उसे भौतिक सुख-सुविधाओं से दूर-दूर का कोई नाता या सारोकार नहीं होता। उसे तो यदि रोटी के साथ सब्जी या दाल आदि मिल जाए तो वह उसके लिए किसी पकवान से कम नहीं होता किन्तु वह सूखी रोटी भी अपने परिवार के लिए जुटाने में असमर्थ ही रह जाता है और यदि परिवार में कोई बीमार पड़ जाए तो उसकी दवा में दिनभर की मजूरी चली जाती है और पूरा परिवार भूखे पेट ही सो जाता है। इन आर्थिक तंगियों

से तंग आकर अंतोगत्वा 'आत्महत्या' के अलावा उसके पास दूसरा कोई चारा नहीं बचता। गरीबी का घिनौना रूप यहाँ देखने को मिलता है।

"राकेश वत्स की 'छुट्टी का एक दिन'"[१] कहानी में आर्थिक विपन्नता का अत्यंत मार्मिक चित्रण हुआ है। नायक मजदूर छुट्टी के दिन बाजार में घूमता है और बच्चों के आइसक्रीम की मांग पर पैसा आड़े आता है। जो मजदूर अपनी पत्नी को तन ढकने के लिए एक साड़ी तक अगले महीने के वेतन पर सूद समेत देने का वादा करके अंगूठा लगाकर ला पाता है वह भला बच्चों को आइसक्रीम कैसे खिला सकता है। यहां तक कि घर जाने के लिए चिलचिलाती धूप में वह बस में यह सोचकर बच्चों को लेकर चढ़ जाता है कि बच्चों का पैसा नहीं लगेगा पर जब कंडक्टर बच्चों के भी पैसे माँगता है, जो उसके पास नहीं है तो वह उन्हें धक्के देकर नीचे उतार देता है। वे उस भीषण धूप में नंगे पैर ही चल पड़ते हैं। इसी प्रकार गरीब मजदूर की विपन्नता का चित्रण 'ताजा रोटी की महक' राकेश वत्स की कहानी में भी मिलता है।

कुंआ (राजाराम सिंह) कहानी में एक गरीब व्यक्ति की आर्थिक मजबूरियों का इस कदर चित्रण हुआ है कि व्यक्ति अपना पेट भरने के लिए अपने बच्चे तक को बेचने में भी हिचकिचाता नहीं है। कहानी के ये संवाद दिल दहला देने वाले हैं-

"कहाँ जा रहे हो वीर' पताली ने पूछा जंगली लोगों को मैदानी लोगों में 'वीर' कहकर पुकारने की परम्परा है।

"बुधवा हाट मालिक"

"कुछ खरीद-फरोख्त करनी है क्या?

---

१ रविवार, २ मार्च १९८० अंक 'छुट्टी का दिन'- राकेश वत्स, पृ० ३.

"कहाँ की बात। फूटी कौड़ी मयस्सर नहीं। जंगल में पत्ते भी नहीं रहे कि दोना-पतरी बना लें"

"फिर क्यों जा रहे हो",

"इस बच्चे को कहीं ठांव धराने। सुनते हैं, शहर के लोग आजकल वहाँ आते हैं, छोटे बच्चों की तलाश में। घरों में काम करने के लिए"। "बिना जाने समझे ऐसे ही दोगे, अपने बच्चे को किसी अनजान को," क्या करुँगा मालिक। घर में रखकर भूखे मारने से तो अच्छा है। अब तो जंगल पहाड़ पर कंदमूल फल भी नहीं मिलता। खाने को । कम से कम एक खाने वाला मुँह तो कम होगा। और फिर जहाँ कहीं भी रहेगा, अनाज तो मिलेगा इसको।"

"तो क्या बेच दोगे?

"कुछ न कुछ, सौ पचास तो मिल ही जाएगा। "आगे उसका रास्ता अलग हो गया था।"[१]

'भूख की बिक्री' (सिम्मी हर्षिता) में एक संतरे बेचने से दूसरे खरीदने वालों के मोल-भाव कराने पर भूखों की स्थिति का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है कि चाहे बेचने वाला हो या खरीदने वाला सभी गरीबी की मार से त्रस्त हैं।

इसी प्रकार शैलेश मटियानी की 'इब्बू मलंग', 'भय', 'दो दुखों का एक सुख', 'प्यास' आदि कहानियाँ आर्थिक विपन्नताओं की कहानियाँ कहती हैं। प्रभु जोशी की कहानी फोकस के बाहर' एक ऐसे कस्बाई फोटोग्राफर मजदूरनुमा व्यक्ति की कहानी है जो आर्थिक मजबूरी में अपना जीवन यापन कर रहा है।

"कितना पानी' (सुदीप)"[२] में आर्थिक विपन्नता की सीमा पार ही हो गई है पूरी कहानी रहस्य से भरी हुई है पाठक यही समझता है कि यह वास्तविक घटना है और वह गरीबी त्रासदी से

---

१ हंस अक्टूबर १९८८- 'कुँआ' राजाराम सिंह, पृ० ५९.

२ 'श्रेष्ठ समान्तर कहानियाँ' (कितना पानी)- सुदीप, पृ० ४९-५०.

कांप उठता है। अंत में यह रहस्य खुलता है कि यह स्वप्न नहीं घटना है। कहानी का नायक माँ तथा बच्चों को कमर में एक डोरी से बांधकर डुबाने ले जाता है और बच्चों से कहता है कि वह पिकनिक मनाने जा रहा है। एक-एक करके जब बच्चा डूबता है तो माँ-बाप उनकी रोने-बिलखते और बचाव के लिए चीखती हुई आवाजों को अनसुना करके आगे बढ़ते हैं तो गरीबी और भूख अपने कारुणिक रूप में आ खड़ी होती है किंतु तभी सपना खुलता है और नायक अपने को फिर वही गरीबी, तंगी और घुटन भरी कोठरी में पाता है। स्वदेश दीपक की 'तमाशा' में मदारी पेट की भूख के लिए खेल दिखाते हुए अपने ही बेटे के पेट में छुरा भोंक देता है। यह गरीबी का सर्वनाशी रूप है। "अमृत राय भूख को सर्वाधिक महत्व देते हैं। उनकी अनेक कहानियों में भूख का वर्णन है। उनके अनुसार भूख आर्थिक विवशता का दूसरा नाम है।"[१] इसी प्रकार विष्णु प्रभाकर ने 'भिखारी' और कुलभूषण ने 'आजादी' कहानियों में भिखारी जीवन की आर्थिक तंगी का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है।

९. शिक्षित बेरोजगारी के कारण अर्थाभाव

स्वतन्त्रता के पश्चात देश में शिक्षा सुविधाओं का विकास हुआ किंतु जनसंख्या में आशातीत वृद्धि के कारण उत्पादन साधन कम पड़ने लगे परिणाम स्वरूप शिक्षित बेरोजगारी की विकट समस्या सामने आयी। वर्तमान समय में शिक्षित बेरोजगारी भी अर्थाभाव का एक बहुत बड़ा कारण है। साठोत्तरी कहानियों में इस समस्या को बड़े विस्तार से और उसके सूक्ष्मतम संदर्भों में चित्रण किया गया है। आज बेरोजगारी का सबसे मुख्य कारण उचित व्यक्ति को उचित रोजगार न मिलना है। आज रिश्वत और सिफारिश की शक्ति के आगे योग्य व्यक्ति की शिक्षा और प्रतिभा को नजरअंदाज कर दिया जाता है, जिससे युवा पीढ़ी में निराशा, कुंठा, अवसाद, आक्रोश ने जन्म लिया उनके सपने बिखरने लगे। निम्नलिखित कहानियों में इसी शिक्षित बेरोजगारी का चित्रण देखने को मिलता है-

---

१ अमृतराय का कथा साहित्य- डॉ० (श्रीमती) कृष्णा माहेश्वरी, पृ० ९२.

'जिंदा होने के खिलाफ (रमेश बत्तरा) बेरोजगार होने के कारण ही एक खीझ से भरा रहता है, "वह कच्ची दीवार पर से पुरानी सफेदी की तरह भुरभुराने लगा था।"[१] वह बेकारी के कारण घर से इतना कट गया है कि पिता की मौत की खबर उसकी माँ को बतानी पड़ती है। फिलहाल (मधुकर सिंह) के नायक को लाख चेष्टा करने पर भी नौकरी नहीं मिल पाती तो वह यह खीझ अपने पिता से निकालता है। "मैं निष्ठा और ईमानदारी पूर्वक बोल रहा हूँ मैंने कमाने की बहुत कोशिश की है। मेरा इसमें कोई कसूर नहीं कि मैं आवारा हूँ। काम ढूँढते-ढूँढते सारी उम्र बीत गयी तो मैं क्या करूँ? उनकी नजर में मैं ही सबसे ज्यादा गिरा हूँ।"[२] रवीन्द्र कालिया की 'सिर्फ एक दिन में एक शिक्षित बेकार युवक की एक दिन की दिनचर्या से उसकी पूरी मानसिक बुनावट का पता चलता है। कहानी का नायक 'मैं' इतना परेशान है कि उसे डिग्रियाँ भी बेकार लगती हैं। रोजाना पेपर में वाण्ट देखना, फिर एप्लाई करना, नौकरी न मिलने के कारण वह कुण्ठाग्रस्त हो गया है। उसे सब कुछ पुराना सा लगता है। "यद्यपि मैं अक्सर महसूस करता हूँ कि छत के ऊपर का आकाश शेल्फ में रखी किताबों ओर ट्रंक में रखी डिग्री की भाँति पुराना हो गया है, उसके नीचे बैठना मुझे बुरा नहीं लगाता।"[३] "चक्रव्यूह (सिम्मी हर्षिता)"[४] में बेरोजगारी जैसी समस्या को बड़ी यथार्थता से चित्रित किया है। इंटरव्यू से पूर्व समझदारी भरी यह चर्चा अंशुमाली के सामने वस्तुस्थिति को खोलकर रख देती है-

'किसी से मिले-विले?

"पिट्‌ढे भरे पड़े हैं।

'कद्दू दिमाग का सलैक्शन हो जाता है, योग्यता कोई नहीं देखता' 'आज नौकरी योग्यता को नहीं पहचान को मिलती है।'

---

१. 'नंग-मतग' जिन्दा होने के खिलाफ- रमेश बत्तरा, पृ० २९.
२. 'फिलहाल' कहानी, जून १९७३ मधुकर सिंह, पृ० ४३.
३. 'नौ साल छोटी पत्नी' (सिर्फ एक दिन), रवीन्द्र कालिया, पृ० ३१.
४ संचेतना- २८ दिसम्बर १९७३, चक्रव्यूह- सिम्मी हर्षिता, पृ० ५.

'टूटना' (प्रतिभा वर्मा) में जो युवा असंतोष चित्रित हुआ है, उसका भी मुख्य कारण शिक्षित बेरोज़गारी ही है। 'एक रात' (रामदरश मिश्र) में प्रवीन जो उच्च शिक्षा प्राप्त है, उसे भी नौकरी नहीं मिल पाने की व्यथा का मार्मिक चित्रण है। 'नालायक बहू (मंजुल भगत) भी शिक्षित बेरोजगारी और नियुक्तियों में भ्रष्टाचार का सशक्त चित्रण प्रस्तुत करती है। अधिकांश विज्ञापन निरर्थक निकलते हैं पिछले द्वार से सिफारिश वालों को कुर्सी सौंप दी जाती है बढ़ती बेरोजगारी विशेषतः शिक्षित बेरोजगारी ने एक ओर नैराश्य और अवसाद को जन्म दिया। शिक्षा, योग्यता और प्रतिभा की दारुण अवमानना और भ्रष्ट व्यवस्था अगले द्वार के सम्मुख उम्मीदवारों की कतार की कतार रिजैक्ट हो जाती है। "भाई भतीजावाद प्रश्रय ने युवा-मानस के स्वप्न को तोड़कर उसे घोर आर्थिक यंत्रणा में डाल दिया।"[1] अम्मा हर किसी से शेखर की नौकरी की बात उठाती है। इस प्रकार बौना (श्रवण कुमार) में भी इसी शिक्षित बेरोजगारी का चित्रण है। गिरिराज किशोर की ठंडक का नायक श्रीकर रोजगार की तलाश में बाहर जाता है पर वहां भी उसे कोई रोजगार नहीं मिला जिस कारण निराश होकर वापस आना पड़ा। वास्तव में यह सत्य ही है कि पूरे देश में ही बेरोजगारी की अव्यवस्था फैली है और इस सत्य को उसकी पत्नी भी अनुभव करती है "रोटी का मिलना बाहर जाने या अंदर रहने पर निर्भर थोड़े ही करता है। बाहर-जाकर भी आदमी रहेगा तो मुल्क में ही। मुल्क-भर की हालत लगातार एक-सी होती जा रही है।"[2] यह कहानी सारे देश व सामान्य व्यक्ति की मनोदशा का यथार्थ वर्णन करती है।

शिवप्रसाद सिंह की 'एक यात्रा सतह के नीचे' कहानी का अवधू अपनी बेकारी के कारण अपने परिवार के बदले रुख का शिकार है, जिसे सहना उसके लिए अत्यंत कठिन है। उसके लिए ही क्यों उसकी पत्नी के लिए और भी कठिन है। "परिवार के लिए पैसा ही सब कुछ है। मनुष्य से बढ़कर तो पैसा है। परिवार में अवधू उसकी पत्नी शोभा से कोई बात तक नहीं करता।"[3]

- समकालीन कहानी : युगबोध का संदर्भ- डॉ० पुष्पपाल सिंह, पृ० ९६.
- 'हम प्यार कर लें', 'ठण्डक'- गिरिराज किशोर, पृ० २५.
- स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी में मानव प्रतिमा- हेतु भारद्वाज, पृ० १४५.

'टूटना' (प्रतिभा वर्मा) में जो युवा असंतोष चित्रित हुआ है, उसका भी मुख्य कारण शिक्षित बेरोज़गारी ही है। 'एक रात' (रामदरश मिश्र) में प्रवीन जो उच्च शिक्षा प्राप्त है, उसे भी नौकरी नहीं मिल पाने की व्यथा का मार्मिक चित्रण है। 'नालायक बहू (मंजुल भगत) भी शिक्षित बेरोजगारी और नियुक्तियों में भ्रष्टाचार का सशक्त चित्रण प्रस्तुत करती है। अधिकांश विज्ञापन निरर्थक निकलते हैं पिछले द्वार से सिफारिश वालों को कुर्सी सौंप दी जाती है बढ़ती बेरोजगारी विशेषतः शिक्षित बेरोजगारी ने एक ओर नैराश्य और अवसाद को जन्म दिया। शिक्षा, योग्यता और प्रतिभा की दारुण अवमानना और भ्रष्ट व्यवस्था अगले द्वार के सम्मुख उम्मीदवारों की कतार की कतार रिजैक्ट हो जाती है। "भाई भतीजावाद प्रश्रय ने युवा-मानस के स्वप्न को तोड़कर उसे घोर आर्थिक यंत्रणा में डाल दिया।"[१] अम्मा हर किसी से शेखर की नौकरी की बात उठाती है। इस प्रकार बौना (श्रवण कुमार) में भी इसी शिक्षित बेरोजगारी का चित्रण है। गिरिराज किशोर की ठंडक का नायक श्रीकर रोजगार की तलाश में बाहर जाता है पर वहां भी उसे कोई रोजगार नहीं मिला जिस कारण निराश होकर वापस आना पड़ा। वास्तव में यह सत्य ही है कि पूरे देश में ही बेरोजगारी की अव्यवस्था फैली है और इस सत्य को उसकी पत्नी भी अनुभव करती है "रोटी का मिलना बाहर जाने या अंदर रहने पर निर्भर थोड़े ही करता है। बाहर-जाकर भी आदमी रहेगा तो मुल्क में ही। मुल्क-भर की हालत लगातार एक-सी होती जा रही है।"[२] यह कहानी सारे देश व सामान्य व्यक्ति की मनोदशा का यथार्थ वर्णन करती है।

शिवप्रसाद सिंह की 'एक यात्रा सतह के नीचे' कहानी का अवधू अपनी बेकारी के कारण अपने परिवार के बदले रुख का शिकार है, जिसे सहना उसके लिए अत्यंत कठिन है। उसके लिए ही क्यों उसकी पत्नी के लिए और भी कठिन है। "परिवार के लिए पैसा ही सब कुछ है। मनुष्य से बढ़कर तो पैसा है। परिवार में अवधू उसकी पत्नी शोभा से कोई बात तक नहीं करता।"[३]

---

१. समकालीन कहानी : युगबोध का संदर्भ- डॉ० पुष्पपाल सिंह, पृ० ९६.
२. 'हम प्यार कर लें', 'ठण्डक'- गिरिराज किशोर, पृ० २५.
३. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी में मानव प्रतिमा- हेतु भारद्वाज, पृ० १४५.

निर्मल वर्मा की कहानी 'लंदन की एक रात' में बेकारी का चित्रण बड़े ही स्पष्ट एवम् प्रभावकारी ढंग से किया गया है। यह कहानी बेकार युवकों की बेगारगी को दर्शाती है तथा इस बेगारगी का कोई अन्त नहीं दिखता हैं इस कहानी को बड़े ही काव्यात्मक ढंग से आगे बढ़ाया है। इसमें भी शराब, होटल, सेक्स, मारपीट इत्यादि सभी कुछ है। यह एक नायक के बेकार होने के ही कारण है। वही अकेलापन, भटकाव, मारपीट, रंगभेद, नृत्य होटल इत्यादि सभी यंत्रणा व भटकाव के कारण ही है।

आज के इस अर्थ-प्रधान समाज में जो जितना कमाता है उसकी इज्जत उतनी ज्यादा है और यदि कोई बेरोजगार है अर्थहीन है तो उसका न सिर्फ समाज में बल्कि परिवार में भी पग-पग पर तिरस्कार होता है भीष्म साहनी की 'खून का रिश्ता' जिसमें चाचा मंगलसेन जो गरीब हैं उन्हें घर में कोई भी इज्जत नहीं देता इस बात को वीर जी समझता है इसलिए जब सगाई में जाने की बात होती है तो वह अपने चाचा (मंगलसेन) को भी जाने को कहता है। इस पर सबको आश्चर्य होता है माँ तो यहाँ तक कहती है,"हाय-हाय बेटा, शुभ-शुभ बोलो। अपने रईस भाइयों को छोड़कर इस मरदूद को साथ ले जाएं? सारा शहर थू-थू करेगा।" इस पर वीर जी बोलते हैं "माँ, जी अभी तो आप कह रहीं थीं खून का रिश्ता है। किधर गया खून का रिश्ता? चाचा जी गरीब हैं इसीलिए?"[1] इस प्रकार 'खून का रिश्ता भी अमीरी-गरीबी की दृष्टि से आंका जाता है जो जितना धनवान है वह उतना ही सम्मानित है। इस प्रकार सभी को अर्थ की दृष्टि से आंका जाता है।

सुरेश सिन्हा की 'नया जन्म' और अमरकांत की 'इंटरव्यूह' में भी अर्थाभाव से पीड़ित व्यक्ति की कहानी है जो नौकरी न मिलने पर बेरोजगारी की यातनाओं, नौकरी देने के बहाने किए जाने वाले रोजगार, दिखाने का इंटरव्यूह तथा भाई-भतीजावाद के कारण निराशा कुंठा व आक्रोश की स्थितियों का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करती है। इसी प्रकार अमरकान्त की ही 'डिप्टी कलेक्टरी', भीष्म साहनी की चीफ की दावत', श्रीमती विजय चौहान कृत 'एक बुतशिकन का जन्म, शत्रुघ्न लाल कृत 'रोज की बातें' कमल जोशी की 'जीवन चक्र' जीतेन्द्र की 'टूटा पत्ता' आदि कहानियों में

---

१. भटकती राख (खून का रिश्ता), भीष्म साहनी, पृ० ५४.

बेरोजगारी', अनुशासनहीनता तथा सिफारिश आदि समस्याओं पर यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

आज का सामान्य व्यक्ति हर प्रकार से असहाय है। उसकी इस असहाय स्थिति का मुख्य कारण अर्थ-संकट है। आर्थिक सुदृढ़ता व्यक्ति को टूटने से बचाती है। दूधनाथ सिंह की कहानी 'स्वर्गवासी' में इसी संदर्भ में लिखी गई एक सशक्त कहानी है। 'स्वर्गवासी' कहानी में मनस्तत्व के सहारे वास्तविकता को एक नरक के रूप में प्रदर्शित किया है। यह कहानी एक निम्नमध्य वर्ग के एक बेकार युवक की कहानी है। यह युवक बेकार है, भ्रष्टाचार के कारण पटवारी की नौकरी से निकाल दिया जाता है। फिर नौकरी के लिए अपने जीजा के पास आता है। जीजा-जीजी के घर तथा आस-पास के विघटित वातावरण को देखता है, उसी विघटित निम्नस्तर के माहौल में वह रहता है। वह इस वातावरण में अन्दर से टूट रहा है। पर वह इतना बेहया है कि कुछ करता नहीं है। उस नरक में भी स्वर्ग सुख का अनुभव करता है। लेकिन यह ग्लानि उसे अस्थिर तथा विकृत बना देती है। इस प्रकार सामान्य स्वस्थता किस प्रकार विकृति में परिवर्तित होती है इसका यथार्थ तथा मार्मिक चित्रण स्वर्गवासी कहानी में देखने को मिलता है।

१०. आर्थिक विपन्नता -सूखा, बाढ़ और अकाल

अकाल, बाढ़ और सूखा भी आर्थिक विपन्नता का कारण है। इस अकाल सूखा और बाढ़ का सबसे ज्यादा प्रभाव गरीबों (जो गांवों में रहते हैं) पर पड़ता है। साठोत्तरी कहानियों में यह अपने यथार्थरूप को लेकर कहानियों के माध्यम से सामने आ खड़ा हुआ है। कमलेश्वर की 'इतने अच्छे दिन'[1] में सूखा और अकाल की मार से पीड़ित मानव के घिनौने रूप का साक्षात्कार कराया गया है। 'इतने अच्छे दिन' में बाला को जब तीन साल सूखा से पीड़ित होने पर कोई काम नहीं मिलता तो वह हड्डियों का व्यापार करने लगता है। अब उसे पशुओं यहाँ तक की रिश्तेदारों की हड्डियाँ मूल्यवान लगने लगती हैं। यहां पर अमानवीयता की सीमा ही पार कर गयी है। एक बोरे हड्डियों के बदले उसे सवा रुपया चीनी मिल से मिल जाती है। वह झुलसती-तपती धरती के नीचे

---

१. सारिका, मार्च १९७५ 'इतने अच्छे दिन'- कमलेश्वर, पृ० ७२

लाश दबा देता है जिससे वह लाश जल्दी गल जाए तो उसे हड्डियाँ मिले। वह लाश रात में कोई उठा न ले जाए इसलिए वह अपनी बहन कमली को रखवाली के लिए छोड़ देता है उस कमली को बंता ट्रक ड्राइवर उठा ले जाता है और पेशा करवाता है। बाला को कमली का पता चल जाता है, पर वह उसे वहाँ से नहीं लाता क्योंकि वह सोचता है कि 'इतने अच्छे दिन' तो कभी न थे। यहाँ पर तो वह चार-पाँच रुपए रोज का बना लेती है। इस प्रकार यह कहानी अकाल और सूखा-ग्रस्त जीवन का विकरालतम् रूप चित्रित करती है। 'अजनबी सुख' (माहेश्वर) में अकाल की मार से पीड़ित व्यक्ति की दुर्दशा का चित्रण है जिसे इस स्थिति में दूसरों के घर से जूठा बचा-खुचा भोजन भी नहीं मिल पाता। "जब कोई खाए तो जूठा बचे। खैराती कभी-कभी आन-गांव भी निकल जाता। मगर अब कहीं कुछ नहीं मिलता था। उसे देखते ही लोग दुरदुराने लगते थे। बहुत से लोग गांव छोड़कर चले गए थे और रोज जा रहे थे। रात-दिन नदी किनारे से चिताओं का धुआं उठने लगा था। खैराती को याद नहीं पिछली बार उसने क्या खाया था। कुछ दिन वह जामुन के पत्ते तोड़कर लाता और लेटकर चबाया करता।"[१] उन परिस्थितियों में अमानवीय स्थिति का चरम दिखायी पड़ता है, जब खैराती को उसकी कुतिया खाती है और खैराती यही समझता है कि वह उससे प्रेम कर रही है। कुतिया जैसी वफादार जानवर भी ऐसी विषम परिस्थिति में अपने मालिक को खाकर उदर की भूख शांत करती है।

इसी प्रकार 'जो घटित हुआ' (हिमांशु जोशी) में अकाल का सशक्त चित्रण प्रस्तुत हुआ है। 'बाढ़' (मधुकर सिंह) में 'बाढ़' की समस्या दृष्टिगत है। जलते हुए डैनें (हिमांशु जोशी) में बाढ़, अकाल, सूखा का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत हुआ है। भूख व्यक्ति के समस्त मानवीय मूल्यों को लीलकर इंसानियत को हैवानियत में रूपान्तरित कर देता है। शिव प्रसाद सिंह की कहानी 'इन्हें भी इंतजार है' में कुबरी डोबिन जो अर्थाभाव से पीड़ित है। उसे भीख मांगने में शर्म आती है लेकिन फिर भी वह भीख मांगने के लिए मजबूर है क्योंकि सूखे और बाढ़ के कारण उसकी गृहस्थी व अनाज चौपट हो गयी है। जिससे उसे कोई काम भी नहीं मिल रहा। ऐसे में अपने व अपने परिवार के अस्तित्व की रक्षा के लिए उसे संघर्ष करना पड़ रहा है।

---

१. डॉ० माहेश्वर की कहानियाँ (अजनबी सुख)- माहेश्वर, पृ० २५

निष्कर्ष

इस प्रकार भारत के ३०-३५ वर्षों के प्रगति के इतिहास को यदि देखा जाय तो निराशा ही हाथ लगेगी क्योंकि एक तरफ तो देश को स्वतन्त्रता मिली जिसके लिए व्यक्ति ने तरह-तरह के सपने संजोए थे, तो दूसरी तरफ देश का विभाजन एक ऐसी त्रासदी थी जिसकी पीड़ा भारतीय जनता आज तक न भुला पायी, लगातार युद्धों की विभीषिका, सूखा, अकाल के कारण भारतीय अर्थव्यवस्था पर बुरा प्रभाव पड़ा तथा व्यक्ति अर्थ के शिकंजे में जकड़ता चला गया। स्वार्थ से प्रेरित राजनीति, भाई-भतीजावाद, रिश्वत खोरी, भ्रष्टाचार सिफारिशों, धनलोलुपता, हिंसा, अत्याचार-अनाचार लूटपाट आदि तत्वों का समाज में बोलबाला बढ़ता गया जिससे बेरोजगारी, शिक्षित बेरोजगारी गरीबी में वृद्धि हुयी फलतः समाज में कुंठा, अवसाद, घोर निराशा आक्रोश व अनास्था से व्यक्ति ग्रसित होता गया। औद्योगिकीकरण से जीवन पद्धति में बदलाव आया परन्तु देश की जनसंख्या में वृद्धि हुई व्यक्ति का रोजगार की तलाश में शहरों की ओर आने से साधन सीमित ही रहे और जनसंख्या ज्यादा। व्यक्ति ने इस भीड़ में भी अपने को एकाकी पाया। असुरक्षा की भावना बढ़ती गयी और व्यक्ति आत्मकेन्द्रित होता गया, जिससे संयुक्त परिवारों में टूटन आयी, स्त्री को अर्थोपार्जन के लिए बाहर निकलना पड़ा। इससे संबंधों पर अर्थ का प्रभाव बढ़ा। आदर्शों, मूल्यों व नैतिकता का पतन हुआ, ईश्वर के प्रति अनास्था बढ़ी व्यक्ति कर्मवादी हो गया। स्वार्थी प्रवृत्ति का विकास हुआ। व्यक्ति, भावना, शून्य होकर भौतिकता के पीछे अंधाधुंध भागता हुआ अपना जीवन जिए जा रहा है, जिससे अंतोगत्वा उसे कुछ हासिल नहीं होता है। इस प्रकार देश ने प्रगति तो की किन्तु दिशाहीन जहां व्यक्ति को स्वयं यह नहीं पता कि वह कहां जा रहा है? कार्ल मार्क्स ने भी प्रगति शब्द की व्याख्या की है- "प्रगति में गति का प्रवाह तो होता है किन्तु केवल आगे बढ़ते रहने का नाम ही प्रगति नहीं है वस्तुतः एक विशिष्ट दिशा में आगे बढ़ते रहने को प्रगति कहते हैं।"[१]

---

१. स्वातंत्र्योत्तर कहानी में मानव प्रतिमा- हेतु भारद्वाज, पृ० १८१.

आज किसी भी समस्या का समाधान ढूँढने पर सर्वप्रथम 'अर्थ' की ही समस्या आड़े आती है क्योंकि सभी के मूल में 'अर्थ' है। अमृतराय के मार्क्सवादी चिंतन के अनुसार "जब तक आर्थिक शोषण से मुक्ति नहीं मिलती जनता की स्थिति में सुधार सम्भव नहीं क्योंकि अर्थ ही सबके मूल में विद्यमान है।"[१]

यद्यपि जैसा कि स्वीकारा गया कि 'अर्थ' ही सभी के मूल में स्थित है इसलिए यदि देश या समाज को सुधारना है तो देश की सामाजिक व्यवस्था में सुधार लाना होगा जिससे देश की आर्थिक स्थिति या अर्थव्यवस्था में सुधार लाया जा सके। हमें यह मानकर चलना होगा कि 'अर्थ' 'सब कुछ' होते हुए भी 'बहुत कुछ' नहीं है। वास्तव में यदि देश या समाज को सुधारना है, तो पहले परिवार व स्वयं व्यक्ति से इसकी शुरुआत होनी चाहिए। व्यक्ति का व्यक्ति के प्रति प्रेम व त्याग भावना को विकसित करना होगा। विश्वास जैसे शब्दों पर विश्वास करना होगा।

गोविन्द चन्द्र पाण्डे भी मानते हैं- "धन अथवा अर्थ शक्ति इच्छा पूर्ति का साधन होते हुए भी आवश्यक रूप से हित का सम्पादन नहीं करती। साधनों को साध्य मानने से उनकी सामाजिकता और मानवीय सार्थकता ओझल होने लगती है।"[२]

---

१. अमृतराय का कथा साहित्य- डॉ० (श्रीमती) कृष्णा माहेश्वरी, पृ० १७.

२. गोविन्द चन्द्र पाण्डे- मूल्य मीमांसा, पृ० १०२.

"चतुर्थ अध्याय"

अर्थ के कारण सामाजिक एवम् पारिवारिक सम्बन्ध

अध्याय-४ 'अर्थ के कारण सामाजिक एवम् पारिवारिक सम्बन्ध'

१. साठोत्तर भारत का आर्थिक परिदृश्य

२. अर्थ का समाज के सम्बन्धों पर पड़ता दबाव

(क) पति-पत्नी सम्बन्ध

(ख) भाई-भाई सम्बन्ध

(ग) भाई-बहन सम्बन्ध

(घ) माँ-पुत्र-पुत्री सम्बन्ध

(ङ.) पिता-पुत्र सम्बन्ध

(च) वृद्धावस्था तथा अन्य सम्बन्ध

(छ) समाज के अन्य सम्बन्ध

अध्याय-४

साठोत्तर भारत का आर्थिक परिदृश्य

स्वतन्त्रता के बाद राजनैतिक दृष्टि से कुर्सी का हस्तान्तरण या राजसत्ता का हस्तान्तरण तो हो गया पर आर्थिक दृष्टि से विपन्न भारत में सामाजिक बदलाव की प्रक्रिया प्रारम्भ की गई क्योंकि स्वतन्त्रता के पहले रचनाकारों की मूल चेतना मनुष्य मात्र को स्वस्थ रूप में देखने की अपनायी गई थी। इसी के चलते साहित्य में समाज में गुणात्मक परिवर्तन के भी संकेत दिए गए। १९४८ में गाँधी की मृत्यु और गणतन्त्र की स्थापना में (१९५०) नए समाजवाद की जो पृष्ठभूमि तैयार की वह सांस्कृतिक दृष्टि से उपनिवेशवाद का पर्याय भी थी जिसमें समूचे भारत को खण्ड-खण्ड में रखकर और उसके विकास की प्रक्रिया को प्रारम्भ करने की संकल्पना थी। राजनैतिक स्तर पर राजनेताओं द्वारा की गई थी। १९५२ में प्रथम पंचवर्षीय योजना का क्रियान्वयन इसी प्रक्रिया का परिणाम थी। अन्तर केवल इतना है प्रथम पंचवर्षीय योजना को क्रियान्वित करने के पहले ही विभिन्न आर्थिक परिस्थितियों से संघर्ष करना पड़ा था। आर्थिक व्यवस्था के चरमराते स्वरूप को व्यवस्थित करने का जो संकल्प नेहरू ने अपने पंचशील सिद्धान्त के माध्यम से क्रियान्वित करने का श्री गणेश किया। उसका परिणाम उपनिवेश में विखण्डन के साथ प्रारम्भ हुआ।

साहित्य राजनीति की धुरी हुआ करती है। उपन्यास से जितना आत्मसाक्षात्कार पात्रों के परिवेशगत संस्कारगत आस्थागत मूल्यों के साथ जुड़ता है जिसके आधार पर यह स्वीकार किया जाता है कि साहित्य राजनीति की धुरी है- अपनी केन्द्रीय विशेषता में इस शोध प्रबन्ध की विशिष्टता को रेखांकित करता है। प्रथम पंचवर्षीय योजना के साथ ही पार्टीगत स्वरूप को कायम करने के साथ ही औद्योगिक विकास की प्रक्रिया भी प्रारम्भ की गई जिसका परिणाम नगरीकरण के

रूप में उभरा। गाँव से पढ़े-लिखे लोगों का पलायन इसी रूप में सामाजिक विखण्डन की प्रक्रिया का केन्द्रवर्ती तत्त्व प्रमाणित हुआ।

राजनेताओं ने तुष्टीकरण के सापेक्ष धर्म निरपेक्षता की आड़ में अर्थ का जो दुरूपयोग किया और राज्य को विशेष स्थिति देने की प्रक्रिया में भारतवर्ष में बदले हुए विदेशी धर्म के प्रचार प्रसार को रोकने के लिए मुक्त हस्त से जो प्रमाण प्रस्तुत किया। उससे लोकतंत्र की व्यवस्था खण्डित हुयी। इसी के चलते भारतवर्ष में गणतंत्र का जन्म हुआ और उस गणतंत्र ने प्रत्येक मनुष्य को अपने अधिकार का पाठ पढ़ाया। राजनेताओं ने जिस मध्यमवर्ग की उपेक्षा की उससे राजदण्ड और अर्थदण्ड की प्रक्रिया तथा विकास की दर बढ़ी नहीं बल्कि क्रमशः घटती चली गयी और देश परांगमुख होकर विदेशी सहायता पाकर अपने विकास का स्वांग रचने लगा। रामधारी सिंह दिनकर की यह पंक्तियाँ इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण हैं-

अब फावड़े और हल राजदण्ड बनने को हैं

धूसरता मिट्टी से सोने का शृंगार सजाती है

दो राह समय के रथ का घर-घर न सुनो

सिंहासन खाली करो कि जनता आती है।"

देश को स्वतन्त्रता मिलने के साथ ही भारत विभाजन के कारण जनसंख्या स्थानान्तरण से भारतीय अर्थव्यवस्था पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। साथ ही आर्थिक विकास का कार्य बड़े जोरों-शोरों से शुरू किये गये। १९५० में देश में अपना संविधान लागू किया गया। जिसके अनुसार देश के प्रत्येक नागरिक को आर्थिक आत्मनिर्भरता का अधिकार प्राप्त हुआ। इसके लिए शासन में नये तन्त्र का गठन किया गया। स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत का सबसे पहला कार्य जमींदारी उन्मूलन था। देश की कृषि के विकास पर पर्याप्त ध्यान दिया गया तथा सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्रों में बड़े एवं छोटे उद्योग का इस काल में पर्याप्त विकास हुआ। उत्पादन के साधनों में पर्याप्त अभिवृद्धि

हुई। इन सबके लिए अपार धनराशि व्यय की गई किन्तु आर्थिक प्रगति के नाम पर आशाजनक परिणाम दृष्टिगोचर नहीं हुए क्योंकि योजना की अधिकांश धनराशि भ्रष्टाचारी ही लील गए। फलस्वरूप धन का केन्द्रीकरण हुआ जिससे श्रमिकों की दशा और गिर गई। देश के आर्थिक विकास की दृष्टि से कांग्रेस सरकार ने ५१-५२ में प्रथम वर्षीय योजना, ५६-५७ में द्वितीय पंचवर्षीय योजना और ६२ में तृतीय पंचवर्षीय योजना बनायी जिससे पंचवर्षीय योजनाएँ वृहद से वृहद्त्तर होकर क्रियान्वित होती चली गयीं। जिसके परिणामस्वरूप कृषि, उद्योग धन्धों उत्पादन के साधनों में वृद्धि, परिवार नियोजनों के कार्यक्रमों में वृद्धि तो हुई किन्तु इन योजनाओं से पूँजीपति ही अधिक लाभान्वित हुए फलतः अमीर और अमीर बनता चला गया और गरीब और गरीब होता चला गया। राष्ट्रीय सम्पत्ति कुछ ही हाथों (पूँजीपतियों) के हाथों में आती चली गयी जिससे समाज में धनी और निर्धनों के बीच आर्थिक वैषम्य और बढ़ता गया। लगातार युद्धों के कारण अर्थव्यवस्था कमजोर पड़ गई क्योंकि उस समय सुरक्षा साधनों पर बहुत अधिक व्यय हुआ। कोटा, परमिट तथा लाइसेंस के परिणामस्वरूप आर्थिक भ्रष्टाचार में बढ़ोत्तरी ही हुयी। १९६१ में बैंकों का राष्ट्रीयकरण हुआ। जिससे पूँजी के विकेन्द्रीकरण में सहायता मिली। इतने सब प्रयासों के बावजूद भी आर्थिक खुशहाली के स्थान पर गरीबी, मँहगाई तथा बेरोजगारी ही बढ़ी। अमृत राय के मार्क्सवादी चिंतन के अनुसार- "जब तक आर्थिक शोषण से मुक्ति नहीं मिलती जनता की स्थिति में सुधार सम्भव नहीं क्योंकि अर्थ ही सबसे मूल में विद्यमान है।"[१]

गाँवों में भी विकास के चरण पहुँचे जिससे वहाँ के रहन-सहन सोचने-विचारने की दृष्टि में अन्तर आया लोग जागरूक हुए। फलतः वहाँ की सहजता भी धीरे-धीरे कृत्रिमता में बदलने लगी, आर्थिक विपन्नता व वैषम्य दृष्टिगोचर होने लगा। गाँव का शिक्षित वर्ग रोजगार न मिलने पर निराशा, कुण्ठा से भर उठा। लोग रोजगार की तलाश में शहरों में पलायन करने लगे जिससे शहरों में जनसंख्या का दबाव बढ़ा। साधन सीमित व जनसंख्या ज्यादा होने के कारण लूट-घसोट,

---

१. अमृत राय का कथा साहित्य- डॉ० (श्रीमती) कृष्णा माहेश्वरी, पृ० १७.

छीनने-झपटने की प्रवृत्ति में बढ़ोत्तरी हुई व्यक्ति स्वार्थी व आत्मकेन्द्रित होता गया। शहर की भीड़ में व्यक्ति अकेला रह गया। समाज अर्थप्रधान हो गया। इन सभी परिस्थितियों का प्रभाव समाज के साहित्यकार पर बहुत गहरा पड़ा क्योंकि साहित्यकार की इसी समाज की उपज है। और आज का साहित्यकार इसी समाज के मध्यमवर्ग से सम्बन्धित होने के कारण इन अनुभवों को काफी नजदीक से देखता है और इन सभी स्थितियों से अड़ोलित भी होता है, जिसे वह अपनी कहानियों के माध्यम से हमारे सम्मुख यथार्थ रूप में प्रस्तुत करता है। देश में व्याप्त गरीबी, बेरोजगारी, मँहगाई के कारण व्यक्ति अपने जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति में अपने आपको असमर्थ पारहा था। फलतः घर की स्त्रियों को भी अर्थोपार्जन हेतु घर की दहलीज लांघकर बाहर आना पड़ा। जिससे उनकी सोच में बदलाव आया। पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलने पर उनमें समानाधिकार व आत्मनिर्भरता की भावना ने जन्म लिया, पति के प्रति स्वामीत्व की भावना का धीरे-धीरे लोप होता गया और मैत्री भाव पनपता गया, परिवारों में स्त्री-पुरुष सामंजस्य बनाए रखने की भावना भी जाती रही। जिससे परिवारों में विघटन, स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में बदलाव तथा समाज के सभी सम्बन्धों में आर्थिक दृष्टि से अर्थ का प्रभाव दृष्टिगोचर हुआ।

"आर्थिक विपन्नता तथा विषमता ने व्यक्ति के मन में असुरक्षा का भाव उत्पन्न किया तथा उसके सामाजिक तथा पारिवारिक सम्बन्धों तक को आहत किया।"[१]

वर्तमान सामाजिक परिवेश में अर्थ ने अपनी जड़ इतनी दूर तक फैला ली है कि समाज का कोई पहलू उससे अछूता नहीं रह गया। देश, समाज, परिवार, व्यक्ति सभी अर्थ के शिकंजे में जकड़े हुए हैं, जिससे वर्तमान समय में सामाजिक व पारिवारिक सम्बन्धों पर अर्थ हावी होता जा रहा है। आज सम्बन्ध आर्थिक दृष्टि से तौलकर निभाये जाते हैं। वास्तव में अर्थ प्रधान दृष्टि सम्बन्धों के निर्वाह में इतनी प्रमुख भूमिका अपनाती है कि व्यक्ति आत्मीय रिश्तों को भी निभा नहीं पा रहा है। सम्बन्धों के निर्वहन में व्यक्ति की आर्थिक सम्पन्नता या विपन्नता आड़े आती है। यदि

---

१. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी में मानव प्रतिमा-हेतु भारद्वाज, पृ० ४४.

व्यक्ति आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न है, तो दूर-दराज का सम्बन्धी होने पर भी लोग उससे आत्मीयता दिखाते हैं और यदि आर्थिक दृष्टि से विपन्न है, तो आत्मीय सम्बन्ध होने पर भी व्यक्ति उससे कटता है। आर्थिक विवशता ही व्यक्ति को ऐसा करने से रोकती है।

"आज के सामाजिक जीवन का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पक्ष यह है कि आज हमारे सभी सामाजिक सम्बन्धों और पारिवारिक रिश्तों पर अर्थ-तंत्र हावी हो गया है।"[१]

अर्थ का समाज के सम्बन्धों पर पड़ता दबाव

पति-पत्नी सम्बन्ध

किसी भी समाज में यदि वाह्य या आन्तरिक परिवर्तन होता है तो सर्वप्रथम यह परिवर्तन समाज के परिवारों के व्यक्तियों पर स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। आज समस्त परिवर्तनों के मूल में 'अर्थ' ही दृष्टिगोचर होता है जो भौतिक समृद्धि के लिए सारे पारिवारिक एवम् सामाजिक सम्बन्धों को तोड़ता जा रहा है और मूल्यहीन सम्बन्धों को निर्मित करने में लगा है। परिवार में मूल्यवान सम्बन्धों में भी टूटन पूरी तरह से दृष्टिगोचर होती है। जैसे- पति-पत्नी, पिता-पुत्र, माँ-पुत्र, भाई-बहन, भाई-भाई जैसे आत्मीय सम्बन्धों पर व्यक्ति की अर्थ प्रधान दृष्टि ने कुठाराघात किया। परिणामस्वरूप परिवारों में विघटन की प्रक्रिया ने तेजी पकड़ी और एकल परिवारों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। एकल परिवारों में भी सबसे ज्यादा पति-पत्नी के सम्बन्धों में बदलाव आया है। आज पति-पत्नी समग्र रूप से एक दूसरे से बँधे रहने में अपने आपको असमर्थ पा रहे हैं परिणामस्वरूप एक-दूसरे से दूर होते जा रहे, अजनबी होते जा रहे हैं। दोनों के रास्ते भिन्न-भिन्न हैं, दोनों का अपना स्वतन्त्र-व्यक्तित्व है। इसी कारण तलाक जैसी प्रक्रिया जो पहले एक 'बुरी घटना' थी जिसके प्रति पति-पत्नी या समाज का दृष्टिकोण बड़ा भयावह था और इस तरह की घटनाएँ बहुत कम देखी जाती थीं। कारण कि संयुक्त परिवारों में रहते हुए पति-पत्नी के बीच बढ़ते हुए मन मुटाव को बड़े लोग सामने आकर सुलझा दिया करते थे। आज एकल

---

१. समकालीन कहानी : युगबोध का सन्दर्भ- डॉ० पुष्पपाल सिंह, पृ० १२५.

परिवार होने व पत्नी का स्वतन्त्र अस्तित्व होने से समझाने-बुझाने की स्थिति ही नहीं रही परिणामस्वरूप आज तलाक पति-पत्नी या समाज के लिए सामान्य सी बात हो गयी।

मोहन राकेश के कहानी 'एक और जिन्दगी' पति-पत्नी के सम्बन्धों में टूटन की कहानी है। प्रकाश और बीना शादी तो करते हैं पर कुछ महीनों में ही उन्हें अपनी स्वतन्त्रता में शादी बाधक लगने लगती है। बीना, प्रकाश से ज्यादा कमाती है और विचारों तथा ज्ञान में भी प्रकाश से ज्यादा वजनी है। अतः दोनों स्वतन्त्र जीवन-यापन करने लगते हैं और कभी-कभी मिलते हैं जिसके परिणामस्वरूप उनके पुत्र (पलाश) का जन्म होता है, जिसे बीना आकस्मिक घटना समझती है तो प्रकाश सोचता है अनजाने में ही उससे एक कसूर हो गया, उसी बच्चे की पहली सालगिरह में दोनों ही उसे अपने पास रखकर सालगिरह मनाने को कहते हैं। दोनों ही बच्चे को लेकर एक-दूसरे को अदालत में खींचने की धमकी भी देते हैं। अन्त में दोनों अदालत गए और तलाक हो जाता है। दूसरी पत्नी के बारे में सोचते ही उसे 'पलाश' का ख्याल आता है पर तुरन्त वह अपनी चेतना को झटका देता है और आधुनिक परिवेश में अपने आपको रखकर सोचता है-

"फिजूल की भावुकता में कुछ नहीं रखा है। बच्चे-अच्चे तो होते ही रहते हैं। सम्बन्ध-विच्छेद करके फिर से ब्याह कर लिया जाए, तो घर में और बच्चे हो जायेंगे। मन में इतना सोच लेना होगा कि इस बच्चे के साथ कोई दुर्घटना हो गयी।"[१]

इसी प्रकार दूसरी पत्नी के बारे में वह 'बीना' से बिल्कुल उल्टे विचार रखता था क्योंकि "बीना में अहंकार था, वह उसके बराबर पढ़ी-लिखी थी, उससे ज्यादा कमाती थी। उसे अपनी स्वतन्त्रता का बहुत मान था और उस पर भारी पड़ती थी। बातचीत भी खुले मरदाना ढंग से करती थी।"[२]

---

१. मोहन राकेश की कहानियाँ - एक और जिन्दगी, पृ० २७९.

२. मोहन राकेश की कहानियाँ - एक और जिन्दगी, पृ० २७९.

" 'एक और जिन्दगी' (मोहन राकेश) में व्यक्तियों की टकराहट से टूटन आती हैं। बीना आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबी भी है और दर्पशीला भी है इसी से सम्बन्ध ठण्डे होते-होते टूट जाते हैं।"[1]

वर्तमान सामाजिक परिवेश में पति-पत्नी के सम्बन्धों में तनाव, टूटन का मुख्य कारण पत्नी का अर्थोपार्जन तथा स्वतन्त्र विचारों का होना है, क्योंकि इससे स्त्रियों में आत्मनिर्भरता आयी और है। वे आज पति के प्रति स्वामित्व की भावना को ठुकराते हुए मैत्री भाव को प्राथमिकता देती हैं। ऐसे में जहाँ उनकी भावना या स्वतन्त्रता को ठेस पहुँचती है वहाँ सम्बन्धों में टूटन की स्थिति आती है।

"पति-पत्नी सम्बन्धों में भी परिवर्तन की स्थिति उत्पन्न कर दी है। पति-पत्नी सम्बन्धों में परिवर्तन लाने के लिए किसी हद तक आर्थिक संकट ही उत्तरदायी है, जिसने पति के स्वामित्व के परम्परागत मूल्य को खण्डित कर दिया।"[२]

गिरिराज किशोर की कहानी 'ठण्डक' में पति-पत्नी के सम्बन्धों में आर्थिक समस्याओं के कारण आयी ठण्डक को चित्रित किया गया है। पति लम्बे अर्से के बाद विदेश से लौटकर आता है। एक तरफ वह घर की स्थिति का जायजा लेता रह जाता है और वर्तमान सुख से वंचित ही रह जाता है तो दूसरी तरफ उसकी पत्नी भी यही सोचती रह जाती है कि इतने दिन परदेस में कैसे रहे होंगे। इन्हीं सोच के कारण दोनों में प्रेम व आत्मीयता का भाव ही नहीं आ पाता और उनके सम्बन्धों में ठण्डक आ जाती है जो उन्हें एक दूसरे के प्रति तटस्थ कर देते हैं। आर्थिक विपन्नता व्यक्ति को इतना झकझोर देती है कि यह सम्बन्धों को बुरी तरह आहत कर देती है। पति के आर्थिक रूप से सुदृढ़ न होने पर तथा परपुरुष के आर्थिक सहायता देने पर पत्नी का सम्बन्ध अपने पति से धीरे-धीरे ढीला पड़ने लगता है और अन्त में एक झटके से टूट भी जाता है।

---

१. हिन्दी कहानी अंतरंग पहचान – रामदरश मिश्र, पृ० ७३

२. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी में सामाजिक परिवर्तन- भैरूलाल गर्ग, पृ० ९०.

कमलेश्वर की कहानी 'राजा निरबंसिया' में इसी सन्दर्भ में लिखी एक सशक्त कहानी हैं इसमें निम्न मध्य वर्गीय व्यक्ति की आर्थिक विपन्नता दर्शायी गयी है जिसके कारण उसके सम्बन्धों (पति-पत्नी) में गहरा दबाव दृष्टिगोचर होता है और उसकी पत्नी चंदा सम्बन्ध तक को आर्थिक कारणों से तोड़ देती है। जगपति और चन्दा पति-पत्नी हैं, उनमें अथाह प्रेम है किन्तु यह प्रेम सम्बन्ध कम्पाउण्डर बचन सिंह के 'अर्थ' से प्रभावित होता है। जब पति की बीमारी में कम्पाउण्डर आर्थिक रूप से सहायता करता है तथा जगपति को लकड़ी की दुकान खोलने में भी आर्थिक सहायता देता है, तो चन्दा का आकर्षण उसके प्रति होता जाता है क्योंकि वह आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न है और वह उसके बच्चे की माँ तक बन जाती है। अन्त में उसके साथ भाग भी जाती है। 'राजा निरबंसिया' कहानी के साथ एक पुरानी कहानी भी चलती है। एक राजा के जीवन की। राजा और जगपति दोनों ही निरबंसिया हैं, दोनों की पत्नियाँ दूसरे से गर्भवती होती हैं। "प्रतिकूलता यह है कि एक राजा है एक आदमी। एक की पत्नी पर-पुरुष प्रसंग के पीछे आर्थिक अभाव की भयावहता होती है एक संयोग मात्र है, दूसरे की पत्नी के पर-पुरुष के पीछे आर्थिकता का भयावह दबाव है।"[१]

आर्थिक विषमता कहीं-कहीं पति-पत्नी के परिवारों का अर्थ-वैषम्य बनकर उनकी मानसिकता में एक-दूसरे के परिवारों के प्रति घृणा, कुण्ठा या चुनौती को ललकारता है, परिणामस्वरूप इसका प्रभाव पति-पत्नी सम्बन्धों पर दिखता है। राजेन्द्र यादव की कहानी 'टूटना' में यही मानसिकता पति-पत्नी के सम्बन्धों पर हावी हो जाती है और सम्बन्ध टूटकर बिखर जाते हैं। इस कहानी में लीना जो असिस्टेंट कमिश्नर इन्कमटैक्स की बेटी है। किशोर जो लीना का ट्यूशन करने वाला एक साधारण सा ट्यूटर है, जो बाद में लेक्चरर बन जाता है। दोनों के बीच आर्थिक वैषम्य की खाई होने के बावजूद वे प्रेम विवाह करते हैं। किशोर, दीक्षित से स्पर्धा करता है क्योंकि वह आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न था, उसका रहन-सहन, व्यवहार सब उच्च स्तरीय था जिससे वह भयभीत रहता था इस पर जब लीना उसके (किशोर के) उच्चारण, पहनावे या

---

१. हिन्दी कहानी अन्तरंग पहचान : रामदरश मिश्र, पृ० १३८.

आधुनिक ज्ञान को सहज भाव से ठीक कराना चाहती है तो वह खीझ उठता है क्योंकि उसके मन मे यही विचार उठता है कि मानो दीक्षित ही लीना के माध्यम से उसकी हँसी उड़ाता है। सहज भाव से लीना के समझाने पर भी वह लीना पर बरस पड़ता है। इस तरह दोनों के बीच इतनी दूरियाँ बढ़ती जाती हैं कि दोनों अलग हो जाते हैं, उनके सम्बन्ध टूट जाते हैं। लीना से अलग होने पर पर किशोर, दीक्षित से तुलना करते हुए भौतिक सुख-सुविधाओं को एकत्र करने के प्रयास में लग जाता है और जब लीना उसे पत्र द्वारा दीक्षित की मौत की खबर देती है तो किशोर सोचता है कि वास्तव में ताकत आजमाता दूसरा हाथ बीना का नहीं बल्कि स्वयं दीक्षित का ही था।

"आधुनिक काल में अर्थ जीवन का मूल्य बन गया है तथा अर्थ ने मानव-प्रतिमाओं के सम्बन्ध को भी प्रभावित किया है। आर्थिक संकट ने पति-पत्नी तक के सम्बन्धों के सन्तुलन को नया रूप दिया है।"[१]

वर्तमान समय में पति-पत्नी के आर्थिक प्रभुत्व की ही भावना दृष्टिगोचर होती है। पति-पत्नी में जो आर्थिक दृष्टि से ज्यादा सबल व प्रभावशाली होता है, उसी के मूल्यों, विचारों को प्रमुखता मिलती है और परिवार में उसी का आधिपत्य या स्वामित्व होता है। गिरिराज किशोर की 'फ्राक वाला घोड़ा निकर वाला साईस' कहानी में नारी के बदलते हुए व्यक्तित्व को दर्शाया गया है। जहाँ स्त्री के आर्थिक रूप से अधिक सक्षम होने पर वह अपने को पति से ज्यादा 'सुपरियर' समझती है। इसीलिए रीता नागरथ के समक्ष अपने आधुनिक विचार रखती हुए कहती भी है- "आप पुरुष लोग समझते हैं। जो कुछ आप कमाकर लाते हैं। उसके कारण हम लोग आप लोगों का सम्मान करते हैं और इसी कारण आप लोग अपने-आपको स्वतन्त्र रख पाने में समर्थ हैं। लेकिन आज व्यक्तिगत सम्बन्धों का भी आर्थिक महत्त्व अधिक है। अगर मैं आपसे छः गुना कमाती हूँ तो छः गुना ही बड़ी भी हूँ......"[२]

---

१. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी में मानव प्रतिमा-हेतु भारद्वाज, पृ० ५४.

२ पेपरपेट (कहानी फ्राक वाला घोड़ा, निकर वाला साईस) गिरिराज किशोर, पृ० १०१.

इस कहानी में पति मात्र क्लर्क है जबकि पत्नी डिप्टी सेक्रेटरी। यहाँ पति, पत्नी के ऊपर पूरी तरह आश्रित है। वर्तमान समय में पति-पत्नी के पारस्परिक सम्बन्ध समाज में उनकी आर्थिक स्थिति पर निर्धारित करती है। डॉ० मैरूलाल गर्ग के अनुसार- "आज सभी सम्बन्धों की पृष्ठभूमि में आर्थिक प्रभुत्व की भावना प्रछन्न रूप से विद्यमान रहती है। अतः पति-पत्नी में से जो भी इस दृष्टि से प्रभावशाली होता है उसी के मूल्यों को मान्यता प्राप्त होती है और परिवार में उसी का प्रभुत्व स्थापित हो जाता है।"[१]

पति-पत्नी सम्बन्धों में अर्थ ने अपनी पकड़ इतनी मजबूत कर ली है कि अर्थ के आगे प्रेम जैसी भावना भी लुप्त होती जा रही है। व्यक्ति भावना शून्य होकर सिर्फ पैसे के ही बारे में विचार करते हुए अपना सारा जीवन ही दिशाहीन सुख की खोज में लगा देता है। पति-पत्नी दूर-दूर रहते हुए नौकरी करते हैं। ये उनकी मजबूरी है क्योंकि साथ रहने की लालसा में किसी एक की नौकरी छूटती है। अब ये उनके ऊपर है कि साथ रहने का सुख उठाएँ या नौकरी का। वे नौकरी यानि पैसे को ही प्राथमिकता देते हैं क्योंकि इससे उनकी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो सकती है। इस तरह भौतिक सुख की लालसा में वे दूर रहते हुए एक-दूसरे की भावनाओं को नकार देते हैं और जीवन का कीमती समय पैसे कमाने और कमाने और कमाने की लालसा में निकाल देते हैं। मोहन राकेश की कहानी 'सुहागिनें' इसी प्रकार की कहानी है। इस कहानी में मनोरमा- जो गर्ल्स हाई स्कूल की हेड मिस्ट्रेस है। सुशील के साथ उसकी शादी हुई थी परन्तु नौकरी की वजह से वह अपने पति से दूर रहती है। उसे एक बच्चे की चाहत है। इसके लिए वह अपने पति से कहती है पर सुशील मना कर देता हैं क्योंकि उनके ऊपर अभी बहुत से जिम्मेदारियाँ हैं। उसे अपनी छोटी बहन उम्मी का विवाह करना था तथा दो छोटे भाइयों को, जो कालेज में पढ़ रहे हैं उनके खर्चे उठाने हैं। वह कहता भी है- "उन दिनों उसके लिए एक-एक पैसे की अपनी कीमत थी। वह कम से कम चार-पाँच साल एहितियात से चलना चाहता था। हजार चाहने पर भी वह सुशील के

---

१ स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी में सामाजिक परिवर्तन- डॉ० मैरुलाल गर्ग, पृ० ९०

सामने हठ नहीं कर सकी थी।"[१] उसके पति सुशील के पत्र आते भी तो घर के खर्चों, जरूरतों की ही बातें होती जिससे व बुझती गई। दूसरी तरफ इसकी नौकरानी, काशी जो आर्थिक तंगी से गुजर रही है उसका पति अजुहया जो पठानकोट में दूसरी औरत के साथ रहता है। यहाँ कभी–कभी आता है औरत से लड़ाई-झगड़ा करके पैसे छीनकर सेब के पेड़ों का ठेका वसूल कर चला जाता है। सुशीला को काशी से हमदर्दी है और वह उसकी सहायता मानवता के नाते कर देती है। उसे लग रहा था कि उसका शरीर बहुत ठण्डा हुआ जा रहा है और यह ठण्ड उसके अन्दर से आ रही है।

आज पति–पत्नी के सम्बन्धों में बहुत ज्यादा बदलाव आया है जिससे उनकी मानसिकता में भी परिवर्तन आया। आज पुरुष अपनी पत्नी को पराए मर्द के पास भेजने में भी संकोच नहीं करता। परिस्थितियों से वशीभूत हो वह पत्नी द्वारा किए गए इस कुकृत्य को भी सह लेता। यद्यपि उसके अन्दर एक पीड़ा सी उठती है किन्तु आर्थिक दृष्टि से अक्षम होने के कारण वह सब कुछ देखते–सुनते हुए भी चुप रहता है। दूधनाथ सिंह की कहानी 'सब ठीक हो जायेगा' में एक ऐसा ही पति है, जो शारीरिक रूप से तथा आर्थिक रूप से भी असमर्थ है और उसकी पत्नी के अवैध सम्बन्ध हैं। वह दुखी भी होता है पर सोचता है सब ठीक हो जायेगा। " 'सब ठीक हो जायेगा' एक ऐसे पति की कहानी है जो शारीरिक व आर्थिक दोनों दृष्टियों से अक्षम है। वह अपनी पत्नी को रात भर दूसरे आदमियों के साथ देखता है, पर कुछ बोलता नहीं। वह सोचता है सब ठीक हो जायेगा, लेकिन वह अपनी पत्नी के अवैध सम्बन्धों से दुखित है।"[२]

सामाजिक परिवर्तन में सर्वप्रथम परिवर्तन पारिवारिक होता है जो पति–पत्नी के सम्बन्धों में परिवर्तन से प्रारम्भ होता है। आज पति–पत्नी सम्बन्धों में बड़ी तेजी से विघटन हो रहा है। यह विघटन सिर्फ मानसिक उदासीनता तक ही सीमित न होकर क्रियान्वित भी हो जाता है। वास्तव में

---

१. मोहन राकेश की सम्पूर्ण कहानियाँ (सुहागिनें)– मोहन राकेश, पृ० १५४.

२. पहला कदम (सब ठीक हो जाएगा कहानी)– दूधनाथ सिंह, पृ० ८०.

पति-पत्नी सम्बन्धों के विघटन का मुख्य कारण 'अर्थ' ही है जो आगे समान व्यक्तित्वों में 'अहम्' की भावना को प्रबल करता है। पति-पत्नी का दृष्टिकोण अर्थ प्रधान होने से उसके सम्बन्धों की ऊष्मा समाप्त होने लगती है और सम्बन्ध खोखले लगने लगते हैं वे ये सोचने पर मजबूर हो जाते हैं कि आज जीवन में पैसा ही सब कुछ है बाकी कुछ नहीं। भीष्म साहनी की 'पटरियाँ' में केशोराम जी जो कटरा राधोमल में अपनी पत्नी के साथ रहता है। उसके ससुर जो अम्बाला में सुपरिटेण्ड हुआ करते थे आजकल रिटायर होकर लाजपत नगर (जहाँ रईसों के बंगले हुआ करते हैं) में रहते हैं। केशोराम इण्टेण्ट का व्यापार करने वाला कमीशन एजेण्ट है। लोग उसके ससुर के आगे उसकी इज्जत नहीं करते। यहाँ तक कि ससुर भी अपने बड़े दमाद जो आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न हैं, से आदर से बात करते हैं, जबकि केशोरामजी को महत्व ही नहीं देते। "वह जानता था कि लोगों के व्यवहार में उसके प्रति बेरूखी पायी जाती है। यहाँ तक कि अपने सगे-सम्बन्धियों के व्यवहार में भी।"[1] यहाँ तक कि उसकी पत्नी भी आर्थिक विपन्नता के ही कारण उस पर खीझती है, चिल्लाती है। वह सोचता है- "सबसे बड़ी चीज दुनिया में पैसा है, पोजीशन है। बाकी सब ढकोसला है। सब बकवास है। ताकत और पैसा और रोब-दाब, इनसे बढ़कर कोई चीज दुनिया में नहीं है, जिनके पास पैसा है उसके पास सब कुछ है।" बाबू हरगोविन्द ने मेरे साथ ही एजेण्टी का काम शुरू किया था। आज तीन मकानों का मालिक है। जब-जब जाता हूँ, अपने मकान के चबूतरे पर टहल रहा होता है और जेब में से बादाम की गिरियाँ निकाल-निकालकर खा रहा होता है।...... इधर मेरा घर है कि मैं और मेरी पत्नी बात-बात पर एक-दूसरे पर चिल्लाने लगते हैं। मुझे गुस्सा आता है तो मैं हाँफने लगता हूँ। एक कमरे से दूसरे कमरे में जाता हूँ। हाथ पसारता हूँ फिर हाँफने लगता हूँ। पत्नी भी हाथ पसारकर कहती है और चिल्लाओ, चिल्लाते जाओ। बुजदिल कहीं का। मरदूद। कर-कुरा सकता नहीं, केवल चिल्ला सकता है।" और मेरी नाकामयाबियों को

---

१. पटरियाँ-भीष्म साहनी, पृ० ११.

एक-एक कर मेरे मुँह पर मारने लगती है।"[1] इस कहानी में भी आर्थिक विषमता के कारण पति-पत्नी सम्बन्धों में तनाव आ जाता है और जीवन कटुता से भर उठता है।

वर्तमान समय की नारी वास्तव में अर्थोपार्जन के कारण स्वावलम्बी बनी है। उसमें आत्मनिर्भरता, आत्मविश्वास जैसी भावना कूट-कूट कर भर गयी है। उसने अपने व्यक्तित्व की गरिमा के महत्व को जाना है और समाज में अपनी एक अलग पहचान बनायी है। आज वह डरी, सहमी या किसी के अधीन रहकर कार्य करने वाली नारी नहीं है। उसका अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व है। वह स्पष्टवादिता है, उसने अन्याय के विरुद्ध आवाज उठायी है। वह आज खुलकर हर विषय पर चर्चा कर सकती है। झिझक, शर्म या संकोच जैसी भावना आज की नारी में नहीं है। किन्तु पुरुष प्रधान समाज आज भी नारी के प्रति वही सदियों पुरानी मानसिकता रखता है और नारी के इस खुलेपन पर उसे शक होता है। वह आज भी अपनी पत्नी को परपुरुष से खुलकर बात करते हुए नहीं देख पाता। इन सब क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं का असर पति-पत्नी सम्बन्धों पर बहुत ज्यादा पड़ता है। यदि पति या पुरुष खुले विचारों का है तो वह नारी के इस खुलेपन से सामंजस्य स्थापित कर लेता है अन्यथा सम्बन्ध बिखर जाते हैं। शशि प्रभा शास्त्री की कहानी 'बीच की कड़ियाँ' इस दृष्टि से एक सफल कहानी है। इस कहानी में नायक अजित अपनी कमाने वाली पत्नी सुषमा से, जो खुले विचारों की है, उसके खुलेपन पर सन्देह करता है किन्तु उसके खुलेपन के ही कारण उसका विश्वास पुनः धीरे-धीरे वापस लौट आता है और उसके भीतर का तूफान उमड़-घुमड़ कर भीतर ही भीतर शान्त भी हो जाता है। शशिप्रभा शास्त्री ने अपनी कहानियों में स्त्री-पुरुष के बनते-बिगड़ते सम्बन्धों को ही अपना प्रतिपाद्य विषय बनाया है, जिसमें पति-पत्नी के सम्बन्ध टूटने की स्थिति तक आते हैं और टूटने के दर्द का आभास कराते हुए पुनः सम्बन्धों में सामंजस्य स्थापित हो जाता है। ये सम्बन्ध टूटते-टूटते बच जाते हैं। उनकी 'अंतरंग', 'एक गाँठ', 'एक वर्ष', 'आँधी', 'तट के बंधन', 'इतनी सी बात' आदि कहानियाँ नारी के यथार्थ सन्दर्भ में लिखी गयी हैं। रामदरश

---

१. पटरियाँ-भीष्म साहनी, पृ० १३.

मिश्र के अनुसार- "शशिप्रभा की कहानियाँ नारी-पुरुष के बनते-बिगड़ते सम्बन्धों से गुजरने वाली कहानियाँ हैं।"[१]

आधुनिक समाज में अर्थ मानव सम्बन्धों को बनाने-बिगाड़ने में अपनी बहुत बड़ी भूमिका अदा करता है। आज देश, समाज व परिवार आदि सभी सम्बन्धों के मूल में प्रायः अर्थ ही है। व्यक्ति अपने मूल्यवान खूनी रिश्तों को भी अर्थ के तराजू में तौलकर इन्हें इसी आधार पर जोड़ता या तोड़ देता है। इसी कारण आज संयुक्त परिवारों में व्यक्ति सामंजस्य नहीं बिठा पा रहा और संयुक्त परिवार टूट रहे हैं। हर किसी को 'मैं' और 'मेरा परिवार' ही दिखते हैं। सभी अर्थ के कारण स्वार्थी होते जा रहे हैं जिससे एकल परिवारों में बढ़ोत्तरी होती जा रही है लेकिन वहाँ भी आर्थिक रूप से सम्पन्न दिखने ही होड़ में पति-पत्नी दोनों नौकरी करते रहते हैं। दोनों का स्वतन्त्र अस्तित्व है, उनका अपना समाज व उसे देखने समझने का अपना दृष्टिकोण है। पति-पत्नी दोनों अपने-अपने कार्य क्षेत्रों में इतना व्यस्त है कि वे एक-दूसरे के लिए समय ही निकाल पाते। अतः दूरियाँ दिन-प्रतिदिन बढ़ती जाती हैं, तनाव बढ़ता जाता है। साथ में कोई बड़ा बुजुर्ग नहीं होता जो इनके सम्बन्धों में आये तनाव को मध्यस्थता द्वारा सुलझा दे परिणाम एक ही दिखता है सम्बन्धों में आये तनाव का अन्त, सम्बन्ध विच्छेद से होता है। 'भविष्य के पास मँडराता अतीत' (राजेन्द्र यादव) में सम्बन्धों के आए तनाव के कारण सम्बन्ध विच्छेद की स्थिति को दर्शाया गया है। नरेन्द्र मोहन के अनुसार " 'भविष्य के पास मँडराता अतीत' में सम्बन्धों में तनाव आ जाने से विच्छेद जरूरी हो गया। विच्छेद के अनन्तर पति की दारूण मानसिक अवस्था का आकलन इस कहानी में हुआ है।"[२]

रमेश चन्द्र शाह की कहानी 'पक्ष' में भी पति-पत्नी के दाम्पत्य जीवन की कटुता का कारण भी आर्थिक ही है। पति यतीन को उसकी पत्नी मनोरमा इसलिए दोषी मानती है क्योंकि

---

१. हिन्दी कहानी अंतरंग पहचान-रामदरश मिश्र, पृ० ७३.

२. समकालीन कहानी की पहचान - डॉ० नरेन्द्र मोहन, पृ० २३.

उसका पति एक आदर्श पुत्र होने के नाते उसे छोड़कर घर के सभी सदस्यों का ध्यान रखता है, उनके लिए खटता, अपनी इच्छाओं के बलि देता रहता है। किन्तु पति-पत्नी को दुख इसी बात का है कि इतना सब करने के बावजूद वे आदर्श बेटे-बहू न बन सके। "पति-पत्नी सम्बन्धों में सबसे अधिक परिवर्तन स्वातन्त्र्योत्तर कहानी में परिलक्षित होता है। व्यक्ति-व्यक्ति के सम्बन्धों में सबसे जटिल नाटकीय और अनिवार्य सम्बन्ध स्त्री-पुरुष का आपसी सम्बन्ध है, इसलिए वही लेखकों को असाधारण रूप से आकर्षित करता है।"[१]

वर्तमान भारतीय समाज में स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों में बहुत भारी परिवर्तन आया। स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानीकारों ने अपनी कहानियों में इस स्थिति का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है। उन्होंने स्त्री-पुरुष सम्बन्धों को चाहे वह पति-पत्नी सम्बन्ध हो, प्रेमी-प्रेमिका सम्बन्ध हो, भाई-बहन सम्बन्ध हो, पिता-पुत्री सम्बन्ध हो, अफसर और उसके नीचे कार्य करने वाली स्त्री हो, को लेकर अनेकों कहानियाँ लिखी गईं किन्तु पति-पत्नी सम्बन्धों को लेकर जितनी कहानियाँ लिखी गई हैं उतनी अन्य सम्बन्धों को लेकर नहीं लिखी गईं, क्योंकि स्वातन्त्र्योत्तर भारतीय समाज में पति-पत्नी सम्बन्धों पर महान परिवर्तन दृष्टिगोचर हुआ। कमलेश्वर, मन्नू भण्डारी, राजेन्द्र यादव, निर्मल वर्मा, श्रीकान्त वर्मा, रवीन्द्र कालिया, मोहन राकेश, भीष्म साहनी, शिव प्रसाद सिंह यदि कहानीकारों ने स्त्री-पुरुष सम्बन्धों पर कई कहानियाँ लिखी हैं। जिनमें स्त्री-पुरुष सम्बन्धों का यथार्थ चित्रण दृष्टिगोचर हुआ है। आज की नारी अर्थोपार्जन या आजीविका चलाने अथवा घर की स्थिति सुधारने या अन्य कई कारणों से घर के बाहर समाज में आयी जिससे उसके दृष्टिकोण में बहुत परिवर्तन आया और उसने विवाह जैसे धार्मिक कार्यों को भी आधुनिक दृष्टि से देखते हुए इसे अपने अस्तित्व की सार्थकता के रूप में स्वीकारा इसलिए पति का भी स्वामित्व रूप खण्डित हुआ है। "स्त्री-पुरुषों के सम्बन्धों में सबसे बड़ा परिवर्तन पत्नी के पतिव्रत धर्म को लेकर हुआ है। अब विवाह एक धार्मिक कर्म न होकर पति-पत्नी की आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन मात्र है। पत्नी के लिए अब पतिव्रत धर्म की परम्परागत सीमायें टूट गयीं हैं, क्योंकि पत्नी की सत्ता पति से

---

१. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी में मानव प्रतिमा- हेतु भारद्वाज, पृ० २३०.

अलग भी होती है, ऐसा उसने स्वयं अनुभव कर लिया है। पहले पत्नी की सत्ता पति के साथ ही समाहित थी, किन्तु अब पत्नी अपने आप में स्वतन्त्र तथा अलग व्यक्तित्व है। इस परिवर्तन के कारण पति-पत्नी सम्बन्धों में एक असंतुलन आया है।"[१]

आज की पत्नी, पति को मित्रवत ग्रहण करती है, जो जीवन भर उसके सुख-दुख में साथ दे, उसके साथ जीवन के हर मोड़ में साथ दे। नारी शिक्षा ने नारी वर्ग को जागृत, सचेत व स्वावलम्बी बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। आज नारी मात्र भोग्या ही नहीं है बल्कि बौद्धिक साधन भी है। आज के पुरुषों (पतियों) ने स्त्री के इस स्वतन्त्र व्यक्तित्व को स्वीकारा भी है और सम्मान देकर बराबरी का दर्जा भी दिया किन्तु समाज में ऐसे पुरुष भी हैं जो अपनी संकीर्ण मानसिकता के कारण परम्परागत पुरुष के रूप में नारी के इस बदलते रूप को नकारते हुए नारी को उसी प्राचीन परम्परागत रूप में ही देखने के इच्छुक लगते हैं और ऐसे ही मानसिकता के लोगों के कारण आज भी नारी का शोषण समाज के हर कोने में हो रहा है, पुरुष द्वारा शोषण से मुक्ति पाने के प्रयास में गृह में शीत युद्ध प्रारम्भ होता है और इसका सीधा-सीधा प्रभाव पति-पत्नी सम्बन्धों पर दृष्टिगोचर होता है। "स्त्री और पुरुष अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व की रक्षा के लिए नातो-रिश्तों की सामाजिक-नैतिक धारणाओं से ऊपर उठकर एक साथ रहते हुए जिन्दगी में जीने के रहस्य को जानने की कोशिश कर रहे हैं। फिर भी स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में स्त्री सेक्स और सामाजिक ढाँचे में विद्रोह करने और अपने अस्तित्व की स्वतन्त्र स्थिति प्रमाणित करने के बावजूद समर्पिता की मुद्रा से उबर नहीं पायी है।"[२]

'समर्पिता' भाव होने के कारण ही आज की स्त्री की मनःस्थिति दोराहे पर खड़े होने की स्थिति है न वह पूरी तरह से आधुनिकता को ही ग्रहण कर पा रही है और न पुरातनता या परम्पराग स्त्री के अस्तित्व को नकार ही पा रही है। आज वह घर के बाहर आयी है इसलिए स्त्री के

---

१. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी में मानव-प्रतिमा - हेतु भारद्वाज, पृ० २३०.

२ नयी कहानी - प्रकृति और पाठक - बी० सुरेन्द्र, भूमिका, पृ० ३३.

आधुनिक अस्तित्व को स्वीकारती है परन्तु पुरुष या पति व बच्चों के प्रति अपने कर्तव्य को निभाने में विवश है, जो उसे परम्परागत स्त्री के कर्तव्य का बोध कराते हुए घर के प्रति उसके उत्तरदायित्वों से परिचित कराते हैं। ऐसे में घर और बाहर की दोहरी जिम्मेदारियों का वहन करती हुयी स्त्री आज के समय में शारीरिक व मानसिक दोनों रूपों में ही बुरी तरह पिस रही है, इसलिए उसकी जुझारू प्रवृत्ति ने उसे इस दोहरी जिम्मेदारियों को ढोते हुए मानसिक अशान्ति, कुण्ठा, घुटन को ढोते हुए मानसिक अशान्ति, कुण्ठा, घुटन के बोझ तले दबा दिया है जिसका प्रभाव घर में पति-पत्नी सम्बन्धों पर पड़ा है। यही कारण है कि पति-पत्नी सम्बन्धों में तनाव दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है और एक दिन इतना बढ़ जाता है कि सम्बन्ध विच्छेद की स्थिति आ जाती है। आज की स्त्री तलाक जैसे शब्द से भय भी नहीं खाती क्योंकि तलाक के उपरान्त सबसे बड़ी समस्या अर्थ की आती है। आज की स्त्री अर्थोपार्जन में पूरी तरह सक्षम है। इसके लिए वह पति पर आश्रित नहीं है। अतः सम्बन्ध विच्छेद करने में वह तनिक भी संकोच नहीं करती क्योंकि घर और बाहर की जिम्मेदारियों को वह पहले भी ढोती थी और आगे में ढोने में सक्षम है। यद्यपि विवाह उसे सामाजिक प्रतिष्ठा प्रदान करने का साधन मात्र रह गया है तथापि सम्बन्ध विच्छेद से आज नारी की सामाजिक प्रतिष्ठा पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि आज समाज की स्त्री के प्रति दृष्टिकोण भी परिवर्तित हुआ है। राजेन्द्र यादव की कहानी 'अपने पारे' की नायिका पम्मी अपनी पुत्र को लेकर पति से पृथक रहती है। आर्थिक रूप से स्वतन्त्र है और अन्य पुरुषों के साथ सम्बन्ध भी रखती है। पति भी वही करते हैं किन्तु बच्चा उस स्थिति में अत्यन्त कुंठित है। अपनी बर्ड-डे पर माँ के साथ पिता के पास जाता है, पापा प्यार करते हैं, उपहार भी देते हैं, साथ में हर वर्ष नयी मम्मी भी। फिर भी बच्चा बेहद असंतुष्ट होकर लौटता है। नायिका भी आन्तरिक स्तरपर इस स्थिति को स्वीकार नहीं करती फिर भी जीवन चल रहा है क्योंकि नायिका परमुखोपक्षी है।

वर्तमान सामाजिक परिवेश में जीवन-मूल्यों में बड़ा भारी परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। आज व्यक्ति की दृष्टि अर्थप्रधान हो गयी है। आज अर्थ ही जीवन का मूल्य बन गया है। व्यक्ति के

व्यक्तित्व का मूल्यांकन ही आर्थिक दृष्टि से हो रहा है। जो व्यक्ति जितना प्रतिष्ठित है उतना ही सम्मानित है। दीन-हीन गरीब व्यक्ति की उपेक्षा हो रही है और यही आर्थिक दृष्टिकोण व्यक्ति के सम्बन्धों में अपना गहरा प्रभाव छोड़ता है। अर्थ प्रधान दृष्टि ने पारिवारिक स्तर पर स्त्री-पुरुष सम्बन्धों और उसमें भी पति-पत्नी सम्बन्धों को सबसे ज्यादा आहत किया। आज पति का स्वतन्त्र व्यक्तित्व का मूल्य नहीं रहा। इसका सबसे बड़ा कारण है पत्नी का अर्थोपार्जन करना। "स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों में बदलाव का एक मुख्य कारण स्त्री का जीविकोपार्जन में सक्रिय भाग लेना है।"[1] प्राचीन समय में हमारे जीवन का मूल्य था पति का स्वतन्त्र अस्तित्व किन्तु वर्तमान समय में ये मूल्य धूमिल पड़ गए हैं। पति या पिता चार पैसे कमाकर लाता था तो पत्नी या बच्चे उसे सम्मान की दृष्टि से देखते व घर का स्वामी मानते किन्तु वर्तमान समय में पति को समानता की दृष्टि से देखा जाता है बल्कि जो ज्यादा कमाता है पति-पत्नी में, उसी का वर्चस्व देखा जाता है। कहानीकार भी इस सम्बन्धों को करीब से महसूस करता है और इसे सामाजिक परिप्रेक्ष्य में यथार्थता से चित्रित भी करता है। रवीन्द्र कालिया की 'नौ साल छोटी पत्नी' में विभिन्न मानसिकता के पति-पत्नी से साक्षात्कार कराया गया है। नारी के अहं ने पुरुष के परम्परागत अधिकार-भावना को ठेस पहुँचाया है, नारी के बराबरी के अधिकार ने उसके अहं को आहत किया है। वह हीन से और हीन होता चला गया। अब उसमें सामर्थ्य नहीं कि पत्नी को प्रेमी के पत्र पढ़ने से रोक सके या विरोध कर सके। रवीन्द्र कालिया की कहानी 'नौ साल छोटी पत्नी' कहानी में इसी कटु सत्य को उद्घाटित किया गया है। इस कहानी में पति कुशल व पत्नी तृप्ता के सम्बन्धों और विशेष तौर पर पत्नी की मानसिक बुनावट में समय के साथ-साथ सामाजिक आर्थिक सम्बन्धों के बदलाव और नयी चेतना के विकास का प्रत्यक्ष प्रमाण मिलता है तथा एक ही सन्दर्भ में भिन्न-भिन्न आयामों में मानवीय स्थिति की गहरी आत्मीय पहचान मिलती है। मन्नू भण्डारी की 'यही सच है' में स्त्री-पुरुष सम्बन्धों को बिल्कुल भिन्न रूप में प्रस्तुत किया है। हेतु भारद्वाज के अनुसार- "पारिवारिक स्तर

---

१. हिन्दी कहानी अन्तरंग पहचान : रामदरश मिश्र, पृ० ७३.

पर सबसे बड़े परिवर्तन स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में हुए हैं।"[१] इसी प्रकार 'नितान्त निजी' (ममता कालिया), 'घिराव' (महीप सिंह), 'धरातल' (शिव प्रसाद सिंह), 'लौटते हुए' (राजेन्द्र यादव), 'हर शाम' (राम कुमार), 'झूठा दर्पण' (उषा प्रियम्बदा), 'एक दिन की डायरी' (मार्कण्डेय) आदि कहानियों के पति-पत्नी आर्थिक विषमताओं के बीच जूझते हुए कहानियों में दर्शाए गए हैं। 'प्रतिशोध' दूधनाथ सिंह द्वारा लिखित कहानी है, जिसमें मध्यमवर्गीय जीवन का मार्मिक व यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया गया है। पत्नी नौकरी करती है क्योंकि उसकी नौकरी के बिना घर का खर्च नहीं चल पाता और इसीलिए पति उससे नौकरी करवाने पर मजबूर है। वास्तव में यहीं से शुरू होती है दोनों के सम्बन्धों में बदलाव की स्थिति। "तीन चार दिन' कहानी पति-पत्नी के सम्बन्धों को मनोवैज्ञानिक धरातल पर रूपायित करती है। बाहर गिरी और अरुणा ही सन्तुष्ट दिखाई देती है लेकिन दोनों का प्रायः एक ही रोना है।"[२]

आज के व्यक्ति के दिलों दिमाग पर अर्थ ने ऐसे डंक मारा है कि व्यक्ति अर्थ के कारण बड़ी से बड़ी परेशानियाँ भी झेल लेता है। ममता कालिया की 'साथ' कहानी में अशोक, सुनन्दा जिसके साथ उसने विवाह नहीं किया है, साथ रहता है। अशोक ने पहली पत्नी से तलाक भी नहीं लिया है। यदि सुनन्दा शादी के लिए कहती है तो उसे गिफ्ट वगैरह देकर चुप करवा देता क्योंकि पहली पत्नी से तलाक लेकर ही वह सुनन्दा से विवाह कर सकता था और पहली पत्नी को तलाक इसलिए नहीं लेता क्यों उसे उस रकम की याद आ जाती थी, जो हरजाने के रूप में उसे अपनी पत्नी को देनी पड़ती। "अशोक दोनों हाथों से लड्डू लेना चाहता है वह पत्नी से तलाक इसलिए नहीं लेता कि हरजाने की लम्बी रकम देनी पड़ेगी, इसीलिए वह स्त्री को फुसलाता है जिससे काम-सुख भी मिलता रहे। जिन दिनों सुनन्दा की जिद कड़ी होती है उसे बैंक से पैसे निकाल कर साड़ी

---

१. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी में मानव प्रतिमा - हेतु भारद्वाज, पृ० ५३.

२. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी में सामाजिक परिवर्तन : डॉ० भैरुलाल गर्ग, पृ० १६४.

खरीदनी पड़ती। वैसे समय वह बिस्तर पर फुसफुसाते हुए एक से अधिक बार कहता, 'यू आर मोर दैन माई वाइफ, यू आर माई वाइफ।"[१]

स्वतन्त्रता के उपरान्त समाज में अर्थ का बोलबाला बढ़ता ही चला गया। व्यक्ति अर्थ के प्रति अत्यन्त सचेत होता गया जिससे अर्थ प्राप्ति के अधिकाधिक प्रयास किये जाने लगे इसके लिए घर के ज्यादा से ज्यादा लोग अर्थोपार्जन में अपने आपको लगाने लगे। घर की स्त्री भी अर्थोपार्जन हेतु बाहर आयी। इससे न सिर्फ पति-पत्नी के सम्बन्ध ही प्रभावित हुए बल्कि परिवार व समाज के सभी सम्बन्धों पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा। जैसे भाई-भाई, भाई-बहन, माँ-पुत्र, माँ-पुत्री, पिता-पुत्र या पिता-पुत्री तथा बॉस व उसके नीचे काम करने वाले स्त्री-पुरुषों के सम्बन्धों में गहरी छाप छोड़ी।

"आर्थिक समस्याओं का दबाव केवल पति-पत्नी सम्बन्धों पर ही नहीं पड़ा है अपितु भाई-भाई, सारे परिवार, माँ-बेटे, पिता-पुत्र सभी सम्बन्धों को इसने प्रभावित किया है।"[२]

भाई-भाई सम्बन्ध

वर्तमान समय में भाई-भाई जो एक ही कोख से उत्पन्न हुए है। उनमें भी अर्थ के कारण दरार आई है। आर्थिक विवशता उन्हें एक-दूसरे से दूर करती जा रही है। उनके बीच आत्मीयता पूरी तरह समाप्त होती जा रही है। यदि वे पास हैं तो भी उनके मन एक दूसरे से मीलों दूर रहते हैं। आर्थिक दबाव के कारण वे चाहकर भी सामान्य व्यवहार नहीं कर पाते।

भीष्म साहनी का 'खून का रिश्ता' में बड़ा भाई अपने छोटे भाई (मंगलसेन) को बात-बात पर सबके सामने उसके गरीब होने, अर्थोपार्जन न करने के कारण, डाँटते-डपटते रहते हैं जो वीर जी (बड़े भाई का बेटा) को बिल्कुल सहनीय नहीं लगता। वह यह भली-भाँति समझता है कि

---

१. 'छुटकारा संग्रह', 'अपत्नी', ममता कालिया, पृ० ७०.

२. समकालीन कहानी : युगबोध का सन्दर्भ - डॉ० पुष्पाल, पृ० १२६.

आर्थिक तंगी के कारण ही चाचा (मंगल सेन) को घर में कोई नहीं पूछता। जब चाचा को अपनी शादी में ले जाने के लिए वीर जी कहते तो माँ हैरान होकर बोलती हैं-- "हाय-हाय बेटा, शुभ-शुभ बोलो। अपने रईस भाइयों को छोड़कर इस मरदूद को साथ ले जाएँ? सारा शहर थू-थू करेगा। "माँ जी, अभी तो आप कह रहीं थीं, खून का रिश्ता है। किधर गया खून का रिश्ता? चाचा जी गरीब हैं इसीलिए?"[१]

रमेश उपाध्याय की 'समतल' में दो सगे-भाइयों के बीच आर्थिक कारणों से ही तनाव बढ़ता गया और मातृ-प्रेम पहले जैसा सहज नहीं रह पाया। 'माँ जाये' (द्रोणवीर कोहली) में आर्थिक कारण ही दोनों भाइयों के सहज सम्बन्ध में दूरियाँ उत्पन्न करता है और इसी कारण बड़ा भाई अनन्त राय अपने छोटे भाई ओम प्रकाश को निर्दयता से पीटता हैं क्योंकि उसने चन्द रुपयों की उसकी बूट पालिश खराब कर दी थी, वह उसे इतनी बेरहमी से मारता है और मारते समय यह भी भूल जाता है कि वह उसका माँ-जाया भी है। दोनों के बीच खून का रिश्ता है और दोनों एक ही कोख की औलाद हैं।

मोहन राकेश की 'आर्द्रा' में एक ही माँ (बचन) के दो बेटों (बड़ा लाली और छोटा बिन्नी में आर्थिक दृष्टि से जमीन-आसमान का अन्तर था। जहाँ बिन्नी दिन भर बाहर मेहनत करके मुश्किल से महीने के साठ-सत्तर ला पाता है और माँ की रोटियों पर आश्रित रहता है, वहीं जो वकील है उसके घर नौकरों द्वारा ही घर का सारा काम होता है। सारी सुख-सुविधाओं से सम्पन्न है, पैसों की कोई कमी ही न थी। इसी आर्थिक विषमता के कारण दोनों भाइयों में दूरियाँ थीं। माँ भी दोनों बेटों की इन स्थितियों से परिचित थी किन्तु माँ होने के नाते वह जब बिन्नी के पास होती तो लाली की याद आती और वह लाली के घर आ जाती है पर उसके घर की सुख सुविधाओं को देखकर अपने को एक मेहमान मानती है। लाली की पत्नी कुसुम भी जिस शिष्टता से बात करती वह उन सबसे आत्मीय नहीं हो पाती और बिन्नी की याद करती है जो अर्थाभाव में अपना

---

१. भटकती राख - खून का रिश्ता - भीष्म साहनी, पृ० ५४

जीवनयापन करता है। "कुसुम जिस शिष्टता और कोमलता से बात करती है, उससे बचन को लगता था कि वह उस घर में केवल मेहमान है। दिन भर उसके करने के लिए वहाँ कोई काम नहीं होता था।"[१] जिससे उसे बिन्नी की याद और सताती जिसे अपनी माँ की बहुत आवश्यकता थी जो उसके लिए रोटी बनाए व उसके साथ रहे।

इब्राहिम शरीफ की कहानी 'जमीन का आखिरी टुकड़ा' में भी भाई से भाई का दूर होना उनकी आर्थिक विषमता ही थी।

से० रा० यात्री की 'आहत' कहानी में भी भाइयों के सम्बन्धों में बदलाव आने का कारण आर्थिक दबाव ही है जिससे व्यक्ति के सम्बन्ध जटिल हो जाते हैं। "से० रा० यात्री की 'आहत' कहानी विषमता की पृष्ठभूमि में विकसित होकर भाइयों के परस्पर सम्बन्ध को जटिल बना देती है।"[२]

हृदयेश की कहानी 'जाला' में भी दो सगे भाइयों के बीच आत्मीयता का अभाव दृष्टिगोचर होता है। वे दोनों पास होते हुए भी मन से कोसों दूर रहते हैं। छोटा भाई जब बड़े भाई के पास आता है, तो दोनों के बीच बातचीत वास्तव में मात्र औपचारिकता होती है। दोनों के ही व्यवहार में खुलापन नहीं दिखता "अखबार देखोगे?" चाय निपट चुकी थी, अब यह खाली था।

"आता है?"

"आता नहीं है, पड़ोस से मँगा दूँगा।"

"मिले तो मँगा लेना। जल्दी नहीं है।"[३]

---

१. मोहन राकेश की सम्पूर्ण कहानियाँ – आर्द्रा, पृ० ४७.

२ हिन्दी कथा साहित्य में यथार्थबोध के विविध रूप – डॉ० कृपाशंकर पाण्डेय, पृ० १२३.

बड़ा भाई सम्बन्धों के इस ठण्डेपन के बारे में सोचता भी है। वह अपने व भाई के सम्बन्धों के बारे में सोचता है कि उसका एक यही भाई ही तो है अपना कहने के लिए उसे देखकर कभी-कभी वह आत्मीयता से भर उठता है, किन्तु पुनः सम्बन्ध में ठण्डापन आ जाता है।

भाई-बहन सम्बन्ध

भाई-भाई सम्बन्धों में ही अर्थ प्रधान दृष्टि ने अपना प्रभाव नहीं डाला बल्कि भाई-बहन के गहन भावनात्मक और पवित्र सम्बन्धों में भी अर्थ प्रधान दृष्टि कुण्डली मारे बैठा है जो उनके सम्बन्धों में विष घोल देता है और उनके हृदय की भावनाओं को शून्य कर अपना आधिपत्य जमा बैठती है। आज भाई-बहन के प्यार की ऊष्मा को अर्थ ने शीतलता प्रदान कर दी है, जिससे वे एक-दूसरे से सम्बन्ध निभाते नहीं वरन ढ़ोते हैं। कभी-कभी इनका मन व आत्मा इन सम्बन्धों को जीने के लिए ललकता भी है परन्तु आर्थिक विवशताएँ उन्हें ऐसा करने से रोक देती है। साठोत्तरी कहानीकारों ने भी इस अनुभव को बहुत पास से देखा व भोगा है। अतः साठोत्तरी कहानियों में इन सम्बन्धों के बीच आयी आर्थिक विवशता को यथार्थ रूप में निरूपित किया है।

ऊषा प्रियम्वदा की कहानी 'जिन्दगी और गुलाब के फूल' में भाई-बहन तथा माँ-पुत्र के बदलते हुए अर्थ सम्बन्धों का सशक्त चित्रण दृष्टिगोचर होता है।[३] इस कहानी में एक बेकार भाई सुबोध की कहानी है जिसकी बहन वृन्दा कमाने लगती है तो भाई-बहन के सम्बन्धों में अपार परिवर्तन आता है। साथ ही साथ कमासुत पुत्री के प्रति माँ ज्यादा आकर्षित होने लगती है, जबकि पुत्र को उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता है। बहन के नौकरी करते ही भाई के कमरे का सारा समान बहन के कमरे में जाने लगा। माँ भी जिसके लिए सभी सन्तानें समान होती हैं फिर भी वह पुत्र को ज्यादा ही महत्व देती है किन्तु आज परिस्थितियाँ बदलने से कमाने वाली पुत्री की प्रति उसका झुकाव ज्यादा हो गया और वह पुत्री के प्रति कहीं न कहीं अपना मूक समर्थन दे देती है। भाई

---

३. छोटे शहर के लोग : हृदयेश, पृ० ८६-८७.

अपने ही घर में अपने आप को पराया समझने लगता है। एक दिन घर से निकलता भी है किन्तु पुनः लौट आता है। इस कहानी के सन्दर्भ में डॉ० रामदरश मिश्र लिखते हैं- "जिन्दगी और गुलाब के फूल' में भाई बेकार है, बहन कमाने लगती है। कमाने वाली बहन का भाई के प्रति स्पर्श स्नेह सम्बन्ध टूट जाता है और वह परिवार का एक अवांछित बोझ मानकर उसकी उपेक्षा करने लगती है। पुत्र को प्यार करने वाली माँ भी बेटी का पलड़ा भारी देखकर चुपचाप निर्णय में कहीं शरीक हो जाती है। ऐसी कहानियाँ यह भी सूचित करती हैं कि नारी अर्थोपार्जन में सक्रिय हिस्सा ले रही है और संयोग से पुरुष बेकार हो तो सम्बन्धहीनता बड़ी गहरी हो उठती है।"[१] ममता कालिया की 'बीमारी' में भाई अपनी बहन के स्नेहात्मक सम्बन्धों को भी आर्थिक कारणों से तिलांजलि दे देता है। बहन की बीमारी में उसने पैसा लगाया और उस खर्चे का चैक मिलने पर वह उसे स्वीकार कर लेता है मानो वह उसका सगा भाई नहीं अपितु कोई अपरिचित हो। जिसे अपनी सगी बहन के बीमार होने से कोई लेना-देना नहीं बल्कि उस पर खर्च हुए रुपयों से ही मतलब था।

आर्थिक रूप से नारी के सबल होने पर हमारे मूल्यों में महान परिवर्तन आया और यह परिवर्तन बहन-भाई के सम्बन्धों में भी आया। जहाँ पहले भाई, बहन की रक्षा का प्रण लेते थे और आखिरी दम तक उसे आर्थिक या शारीरिक संबल प्रदान करने में सक्षम थे वहीं अब बहन के आर्थिक रूप से मजबूत होने पर बहन भाई को आर्थिक रूप से सहारा देती हैं और भाई भी बिना किसी झिझक के उसे स्वीकार कर लेता है। एक समय ऐसा होता था कि घर का पुरुष (पिता या पुत्र) ही कमाकर लाता था और जितना भी कमाकर लाता था उसी से घर खर्च चलाता था। स्त्री की कमाई अस्पृश्य मानी जाती थी और बहन या पुत्री द्वारा कमाया हुआ पैसा भाई या माँ-बाप स्वीकारते नहीं थे। उसे उसी के काम या विवाह में लगा दिया जाता था परन्तु आज मूल्य बदल गए हैं और स्त्री द्वारा कमाया हुआ पैसा स्वीकार करने में पति, भाई या माँ-बाप को किसी प्रकार का संकोच नहीं दिखता। आज की स्त्री चाहे पत्नी हो, बहन हो या बेटी पैसा कमाकर लाती है तो

---

१ 'जिन्दगी और गुलाब के फूल' - उषा प्रियम्वदा, पृ० ७.

अपने पति, भाई या माँ–बाप पर हक भी जमाती है और कहीं–कहीं उपेक्षा भी करती नजर आती है, यही कारण है जिससे सम्बन्धों में बदलाव आया है। कमलेश्वर की कहानी 'आसक्ति' में बेकार भाई का नौकरी करती बहन के साथ रागात्मक सम्बन्ध अर्थ प्रधान दृष्टिकोण आ जाने के कारण ही उनमें आते हुए तनावों को बखूबी दर्शाया गया है। मोहन राकेश की कहानी 'रोजगार' में भी यही स्थिति दर्शायी गयी है जहाँ बड़ा भाई बेकार बैठा है और बहन कमाकर (गलत धन्धे से) उसका खर्चा उठाती है। एक ही घर में रहने से दोनों को असुविधा होती है। इसलिए बहन उसकी व्यवस्था होटल में कर देती है किन्तु अपने अक्खड़ स्वभाव के कारण उसकी किसी से पटती नहीं और लगातार होटल बदलाया जाता है। लड़की (बहन) होटल अपने भाई के पैसे देने आती है तो मिसेज एडवर्डस बोली "अपनी करतूतों पर इसे शर्म नहीं आती। "मैं पैसे देकर यहाँ रहता हूँ, मुफ्त में नही रहता। "तू पैसे देता है?" मिसेज एडवर्ड रजिस्टर खोलकर गुस्से में उसके पन्ने उलटने लगी। कमाकर पैसा देता तो तेरे होश हवास दुरस्त रहते। तूने तो जिन्दगी में एक ही काम सीखा है और वह है खाना और पड़े रहना।"[२] इस तरह बड़ा भाई होकर भी यह जानते हुए भी कि वह बहन की पाप की कमाई पर पल रहा है। उसकी चेतना इस पर भी झटका नहीं देती और वह ऐश से अपना जीवनयापन कर रहा है।

पृथ्वीराज मोंगा की कहानी 'अन्तर' का भाई अपनी बहन (सुशीला) के बारे में सब कुछ जानने के बाद भी घर नहीं आता क्योंकि "सुशीला जो कुछ कर रही है, उसमें कहीं कोई ज़्यादती महसूस नहीं हुई और खानदान? खानदान–आनदान क्या होता है? बूढ़े लोगों द्वारा गढ़ लिया गया एक निरर्थक शब्द। इस शब्द के लिए सुशीला 'कुछ' भी क्यों सहन करे? पिता ने उसे क्या दिया है? अपना नाम, बस।"[२] इसी ऊहापोह की स्थिति में वह घर भी नहीं आता। यहाँ तक कि अपनी

---

१. हिन्दी कहानी अंतरंग पहचान – डॉ० रामदरश मिश्र, पृ० ७८.
२. मोहन राकेश की सम्पूर्ण कहानियाँ–रोजगार – मोहन राकेश, पृ० ८३.
२. कहानी, मार्च १९७५ अंतर– पृथ्वीराज मोंगा, पृ० १७.

प्रेमिका (ऊषा) से विवाह भी नहीं करता, क्योंकि वह उसका भी खर्च उठाने में अपने को असमर्थ पा रहा था।

माँ-पुत्र, पुत्री सम्बन्ध

वर्तमान सामाजिक व पारिवारिक जीवन में अर्थतंत्र के शिकंजे में व्यक्ति ऐसे जकड़ गया है कि उसकी पकड़ से निकलना असम्भव सी बात है। व्यक्ति अर्थ के पीछे अन्धाधुंध होकर भाग रहा है। पैसा कमाना ही आज व्यक्ति का एकमात्र लक्ष्य बन गया है। इसके लिए उसे चाहे अपने मूल्य त्यागने पड़े, ईमान-विश्वास बेचना पड़े या व्यक्ति की आत्मा-शरीर तक का सौदा करना पड़े यहाँ तक कि उसके सम्बन्ध पीछे छूट जाएँ, टूट जाए उसे किसी बात की परवाह नहीं। यही कारण है कि आज हर सम्बन्धों को चाहे वह सामाजिक हो या पारिवारिक अर्थ प्रधान दृष्टि से ही देखा व आँका जाता है। सम्बन्धों की जब बात उठायी जाती है तो माँ जैसा पवित्र व निष्पक्ष व्यवहार भी पुत्र-पुत्री के सम्बन्ध में आता है। आज माँ भी इस अर्थ प्रधान समाज से उद्वेलित होती है और अपने पुत्र या पुत्री के आर्थिक रूप से सम्पन्न या विपन्न होने पर पक्षपात की भावना को हवा देती है। आज माँ का निःस्वार्थ प्रेम भी पुत्र-पुत्री सम्बन्धों का निर्वाह करने में अर्थ को आड़े ला देता है और उसे प्रेम की पवित्रता व गहराई पर प्रश्नचिन्ह लगा देता है।

ऊषा प्रियम्वदा की 'जिन्दगी और गुलाब के फूल' में यही स्थिति दृष्टिगोचर हुई है। जहाँ पुत्र के बेकार होने और पुत्री के कमाने पर माँ का झुकाव पुत्री की ओर बढ़ता जाता है और वह पुत्र को उपेक्षा भरी नजरों से देखती है। "यहाँ तक कि बेटे के बेकार होते ही माँ के व्यवहार में भी अन्तर आ जाता है।..... पुत्र को प्यार करने वाली माँ बेटी का पलड़ा भारी देखकर चुपचाप निर्णय में कहीं शरीक हो जाती है।"[1] वर्तमान अर्थ प्रधान समाज में, जिसमें सभी सम्बन्धों से बढ़कर पैसा हो गया है। सभी सम्बन्ध अर्थ के कारण टूटते नजर आ रहे हैं। माँ-बेटे के सम्बन्धों में भी यह टूटन दृष्टिगोचर हुई है। 'चीफ की दावत' भीष्म साहनी द्वारा लिखित एक सशक्त कहानी है जिसमें

बेटा चीफ को अपने घर दावत पर बुलाता है, पर सोचता है, माँ का क्या होगा, यह तो दावत की रौनक ही बिगाड़ देगी (क्योंकि वह आधुनिक परिवेश में फिट नहीं हो पा रही है)। उसे अपनी निरक्षर व बूढ़ी माँ 'फालतू समान' लगने लगती है बल्कि समान बेजान चीज होती है तो उसे सजा देते छुपा देते हैं पर यह तो सजीव है इसका क्या करें? इसी उलझन में बेटा अपनी माँ को बन्द रखता है पर माँ अफसर के सामने आ जाती है, तो बेटा बहुत नाराज होता है। पर अफ़सर माँ के गुणों से बहुत प्रभावित होता है और माँ की तारीफ करता है। बेटे को माँ अर्थपूर्ण करने का एक महत्त्वपूर्ण साधन प्रतीत होने लगती है और उसके लिए हितकर साबित हुई। माँ की निरीहता और बेटे के प्रति अटूट हित-कामना से माँ-बेटे की सम्बन्धों की विडम्बना बहुत गहरी हो जाती है। डॉ० नामवर सिंह इस कहानी के सन्दर्भ में लिखते हैं- "शामनाथ अपनी बूढ़ी माँ को इस घर में, उस घर में छिपाता फिरता है। उधर माँ है कि लड़के के व्यवहार को बुरा नहीं मानती। बल्कि स्वयं ही उसे अपने अस्तित्व में संकुचित हुई जा रही है और लड़के के भले के लिए अपने को यहाँ से वहाँ छिपाती फिरती है। एक विडम्बना यह भी है।.... शामनाथ ने देखा कि जिस चीज को छिपाने के लिए उन्होंने इतनी परेशानियाँ उठायी, वह खुल ही नहीं गयी बल्कि हितकर साबित हुई। यहाँ तक कि दावत से भी बढ़कर। यह सबसे बड़ी विडम्बना है।"[२]

इसी प्रकार दीप्ति खण्डेवाल की कहानी 'विषपायी' में माँ-बेटे के सम्बन्ध इसी निर्मम स्थिति से साक्षात्कार कराते हैं। माँ आर्थिक तंगी से इतना ज्यादा त्रस्त है कि वह बड़े को बलवान इसलिए बनाती है, क्योंकि वह चार पैसे कमाकर लाए। इसी कारण वह उसे दूध-रोटी खिलाती है जब बड़े को देखकर छोटा भी माँ से दूध रोटी माँगता है कि "माँ एक दिन मुझे भी दूध रोटी दो न" तो माँ का यह निर्मम उत्तर "चल हट कमबख्त! तू दूध-रोटी खाकर क्या करेगा? बड़का तो जवान हो गया, चार पैसे कमायेगा। तू तो मरे अभी बरसों मेरा हाड़ खाएगा।"[२] माँ के यह वाक्य

---

१. हिन्दी कहानी की अंतरंग पहचान - डॉ० रामदरश मिश्र, पृ० ७८.

२. कहानी : नयी कहानी - डॉ० नामवर सिंह, पृ० ३३-३४.

२. कहानी, जनवरी १९७३, विषपायी- दीप्ति खंडेलवाल, पृ० ५.

अर्थ की उस विकरालता से परिचय कराते हैं जिसने माँ जैसे पवित्र व निःस्वार्थ प्रेम को आज इस दयनीय व निर्मम स्थिति तक पहुँचा दिया है। इस प्रकार इस कहानी में वर्तमान समाज में आर्थिक कारणों से सम्बन्धों में बदलाव का यथार्थ चित्रण हुआ है जहाँ माँ के प्रति पुत्र के सम्बन्ध और व्यवहार का संवेदनात्मक और व्यंग्यात्मक चित्र खींचा गया है। कृष्ण बलदेव की कहानी 'अगर मैं' आज कहानी का पुत्र-माँ के सम्बन्धों में भी यही आर्थिक तंगी आड़े आती है क्योंकि माँ पुत्र के आर्थिक कष्टों व संघर्षों को समझ ही नहीं पाती इसीलिए पुत्र अपनी माँ से दुखी रहता है।

गिरिराज किशोर की कहानी 'रिश्ता' मानवीय रिश्ते के विघटन की कहानी है। इस कहानी में माँ-पुत्र का रिश्ता है और नहीं भी। मनकी (माँ) और गिरधारी (पुत्र) के बीच सम्बन्धों में न तो कोई औपचारिकता है और न ही कृत्रिमता या बनावटीपन एक सीधी सपाट जिन्दगी है। इसमें मानवीय रिश्ते की विडम्बना की यथार्थ अभिव्यक्ति दृष्टिगोचर होती है। यह कहानी माँ-बेटे सम्बन्धों के बीच दिल को दहला देने की कहानी है। "मनकी ने अपने पल्ले से मिठाई की दो डलियाँ निकालकर रोटियों पर रख ली।" रोटी की पीपी बनाकर कुतर-कुतर कर मिठाई खाती रही। कभी-कभी दाल से भी लगा लेती थी। लड़का बराबर उसका मुँह देख रहा था। थोड़ी देर बाद बोला माँ तूने दाल तो खायी नहीं। मैंने तो दाल तेरे मारे कम ली थी। मुँह का टुकड़ा निगल कर बोली, क्या खाऊँ इसमें हल्दी तक तो डाली नहीं। मुझे घास-पात अच्छा नहीं लगता। वो तो डाक्टराइन के नौकर ने लड्डू दे दिए थे, काम चल गया। क्या हुआ लड्डू मुँह में रखते समय क्षण भर झिझकी फिर रख गयी।"[१]

पिता-पुत्र सम्बन्ध

साठोत्तरी कहानियों में सम्बन्धों के बिखराव के सन्दर्भ में पिता-पुत्र के सम्बन्धों को लेकर अनेक कहानियाँ लिखी गई हैं। आर्थिक परिस्थितियों ने पिता-पुत्र के सम्बन्धों में भी कड़वाहट भर दी है। कहीं तो पिता इतना सख्त हृदय हो जाता है कि पुत्र द्वारा कमाई न करने पर वह उसे घर से

---

१. 'रिश्ता' गिरिराज किशोर, रिश्ता और कहानियाँ, पृ० १४६.

निकालने तक में संकोच नहीं करता है और कहीं पुत्र इतना कठोर दिल हो जाता है कि बुढ़ापे की स्थिति में जब उसके पास आय का साधन नहीं होता साथ ही वह शारीरिक रूप से भी रिटायर हो जाता है। पुत्र का सम्बन्ध पिता के लिए निर्मम हो जाता है। वह उसी पिता को बोझ के समान समझने लगता है। जिस पिता ने उसे पैदा होने से आज तक पाला-पोसा और इस लायक बनाया कि वह सिर ऊपर कर इज्जत के साथ जी सके। "आर्थिक परिस्थितियों ने पिता-पुत्र के सम्बन्धों में भी एक तीखी अनुभूति भर दी है।"[१]

अवध किशोर की कहानी 'दूसरी शुरूआत के पूर्व' में यही स्थिति दर्शायी गयी है जहाँ पिता-पुत्र सम्बन्धों के निर्वहन में आर्थिक परिस्थितियाँ आड़े आती है और इनके सम्बन्ध खण्डित होते नजर आते हैं। शिक्षित बेरोजगार युवक को पिता डाँट-फटकार कर बाहर निकाल देते हैं। अर्थ व्यक्ति के सम्बन्धों पर कितना गहरा प्रभाव डालता है। वह इस कहानी में दर्शाया गया है जहाँ सारे सम्बन्धों को पिता एक ही झटके में तोड़कर उसे अजनबी शहर में भटकने के लिए फेंक देता है। वह मात्र सत्तर रुपये महीने पाता है और अपने पिता को अपनी दुर्दशा दिखाकर उन्हें 'भीतर से छीलना' चाहता है। इस तरह कितना अजीब लगता है। जब पिता और पुत्र के बीच किसी अतिथि की औपचारिकता का जैसा रिश्ता पनपने लगता है। अपनी टूट को छिपाने के लिए वह 'काफी निर्मम हो गया था। इस सम्बन्धों की दारूण स्थिति अपनी सीमा को भी तोड़ देती है जब युवक मात्र बीस रुपये की पूँजी प्राप्त करने के लिए विवाह से पूर्व ही परिवार नियोजन का आपरेशन करवा लेता है। इस तरह इस कहानी में पिता-पुत्र सम्बन्ध का अत्यन्त निर्मम व दारूण रूप पाठकों के समक्ष प्रस्तुत होता है, जिसे स्वयं पाठक भी समाज में अनुभव करता है। "धनवान व्यक्तियों के जीवन में सम्बन्धों तथा भावनाओं का कोई मूल्य नहीं।"[२]

अमृत राय की कहानी 'अमलतास' में ठेकेदार प्रीतम चन्द्र अर्थ प्रधान दृष्टि होने के कारण पुत्र जैसे घनिष्ठ सम्बन्ध को ताक पर रख देते हैं। उनके सभी पुत्र उनके धन्धे में लगे हुए हैं। सबसे

---

१. समकालीन कहानी : युगबोध का सन्दर्भ - डॉ० पुष्पाल सिंह, पृ० १२७.

२ अमृत राय का कथा साहित्य - डॉ० कृष्णा माहेश्वरी, पृ० ४२.

छोटा पुत्र-निर्मल का मन धन्धे में नहीं लगता उसे ऐसा वातावरण दम घोटता है जहाँ हर समय पैसे की ही बातें होती रहती हैं। वह पिता के इस बेईमान धन्धे में नहीं लगना चाहता। इस पर पिता के क्रोध की सीमा न रही क्योंकि वे एक व्यापारी पहले हैं पिता बाद में। इसलिए वे अपने बेटे के साथ इतने सख्त हो जाते हैं कि जब वे अपने पुत्र को चाँदी के तारों से नहीं बाँध पाते हैं तो उसे घर से निकाल देते हैं।

मधुकर सिंह की कहानी 'फिलहाल' में भी पिता-पुत्र सम्बन्धों के निर्मम पक्ष को उजागर किया गया है। देश में चारों ओर ही पैसों की हाय-हाय मची है। सभी की स्थिति एक जैसी ही है। पढ़-लिखकर भी किसी को नौकरी या काम नहीं मिलता। इस कहानी में भी पुत्र ने कमाने का बहुत प्रयास किया किन्तु जब उसे कहीं काम न मिला तो वह आवारों की तरह घूमने-फिरने लगा वह कहता भी है- "मैं निष्ठा और ईमानदारी से बोल रहा हूँ, मैंने कमाने की बहुत कोशिश की है, मेरा इसमें कोई कसूर नहीं कि मैं आवारा हूँ।"[१] अकुलेश की कहानी 'काँच का गिरना' में पिता-पुत्र सम्बन्ध न होकर पिता-धन सम्बन्ध को ही प्राथमिकता दी गई है, जहाँ पिता का दृष्टि सदा पुत्र के धन पर ही लगी रहती है। वह हर समय बेटे से पैसे ऐंठने की ही तरकीब सोचता रहता है। उसे आकाश में उड़ती हुई भूखी चीलों और अपने सम्बन्धियों में कोई फर्क नजर नहीं आता।

रमेश बक्षी की 'पिता-दर-पिता' और प्रभु जोशी की 'पितृ-ऋण' इस प्रकार की कहानियाँ हैं। जहाँ पुत्र द्वारा पिता के प्रति घृणा और उपेक्षा भाव देखा जा सकता है। 'पिता-दर-पिता' का 'मैं' पिता के सम्बन्ध में उपेक्षा से कहता है, "अरे हटाइए पिता-फिता से कुछ नहीं होता। और एक भार सिर पर रहता है। अब मुझे देखिये क्या फर्क पड़ता है कि ये मेरे पिता हैं या देवदार का पेड़ मेरा पिता है।"[२]

इसी प्रकार 'पितृ-ऋण' में पिता जो कुष्ठ रोग से पीड़ित है, उन्हें उनका बेटा पैसों के कारण बनारस छोड़ आया बिल्कुल असहाय अवस्था में। वह यही सोचकर इतना आश्वस्त है कि उसने

---

१. 'फिलहाल' कहानी जून १९७३ - मधुकर सिंह, पृ० ११.

२. 'पिता-दर-पिता' - रमेश बक्षी, पृ० ५५.

पिता के पास पैसे नाम पर कुछ भी नहीं छोड़ा। पिता को फालतू समान की तरह वह बनारस में फेंक आता है।

वर्तमान सामाजिक परिवेश में पुत्र-पुत्री अपनी सोच को ऊपर रखने व अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए माता-पिता को एक बोझ ही मानते हैं और वे उनकी नजरों में 'फालतू समान' से ज्यादा कुछ नहीं हैं। साठोत्तरी कहानियाँ इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण हैं, जिनमें 'माँ' (चीफ की दाव) पिता (वापसी, पितृ-ऋण, बिरादरी से बाहर) की सच्चाई यही है कि आर्थिक दबाव के कारण सम्बन्धों में गहरा प्रभाव पड़ रहा है, जिसके परिणामस्वरूप सम्बन्धों में बिखराव की स्थिति दिखायी देती है। "जीवन जीने की विषमतर स्थितियों और अर्थ प्रधान दृष्टि के परिणामस्वरूप हमारे सामाजिक रिश्ते-नाते, संयुक्त परिवार बड़ी तेजी से विघटित हुए हैं और विघटन की यह प्रक्रिया तीव्रतर होती जा रही है।"[१]

"ऊषा प्रियम्वदा की कहानी 'वापसी' "[२] में गजाधर बाबू जो रिटायर्ड होने के बाद अपने परिवार में वापस आते हैं किन्तु उन्हें वहाँ आर्थिक दृष्टिकोण से फालतू समझा जाता है, वे अपने ही परिवार में अपने को मिसफिट पाते हैं और वे दूसरी नौकरी के लिए 'वापसी' का निर्णय लेते हैं। नरेन्द्र कोहली की कहानी 'शटल' में भी रिटायर्ड पिता ईश्वर दास अपने ही बेटों-बहुओं के बीच पराया सा हो जाता है। वह अपनी पत्नी भगवन्ती से भी बात करने में हिचकिचाता है, क्योंकि इसे देखकर बच्चे मुस्कुराते हैं। लड़के अलग हो गए हैं कोई उनको खर्चा देने को तैयार नहीं है पर साथ रहने पर खर्चा उठा सकते हैं। माँ को सभी अपने पास रखना चाहते हैं क्योंकि वह घर के काम में हाथ बँटा सकती है। इस प्रकार इस कहानी में सम्बन्धों का मौन तनाव दृष्टिगोचर होता है। राजेन्द्र यादव की कहानी बिरादरी से बाहर में पारस बाबू को भी अपने ही घर में अजनबीपन भोगना पड़ता है। वे बुढ़ापे की अवस्था में कुछ भी कर सकने में अपने आपको असक्षम पाते हैं। उन्हें ऐसा आभास होता है मानो उन्हें बिरादरी से बाहर कर दिया गया है।

---

१. समकालीन कहानी : युगबोध का सन्दर्भ – डॉ० पुष्पाल सिंह, पृ० १२८.

२. 'जिन्दगी और गुलाब के फूल', 'वापसी' : ऊषा प्रियम्वदा, पृ० २७.

अकुलेश परिहार की कहानी 'डूबता सूरज' में भी एक ऐसे ही वृद्ध व्यक्ति की पीड़ा सर्द होती है जो नौकरी से रिटायरमेंट मिलने के पश्चात अपने गाँव लौटता है, तो वहाँ के जीवन परिवेश में अपने को फिट नहीं पाता है और वहाँ सदैव अजनबीपन का बोध होता रहता है।

यशपाल की कहानी 'समय' में भी पिता की लाचार तथा टूटेपन का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया गया है। इन सभी कहानियों मे पुत्र, पिता को एक निरर्थक अवांछित वस्तु मानते हुए उसकी उपेक्षा करते हुए देखे जाते हैं। गंगा प्रसाद विमल की कहानी 'उसकी पहचान' में पुत्र अपने पिता के प्रति विद्रोहात्मक भाव पाले रहता है। वह पिता के सम्बन्ध में कहता भी है "न जाने क्यों पिता की याद आते ही मुझे पिता के साथ हुई लड़ाइयाँ याद आती हैं। मुझे अफसोस होता है, वह हमेशा निहत्थे रहे। मैं उनसे लड़ता रहा।"[१] से० रा० यात्री की 'दरारों के बीच' कहानी में भी पुत्र अपने पिता के प्रति घृणा भाव पाले रहता है। पिता के घर में आते ही उसे अपने विपन्न घर में पाखण्ड मूर्त रूप में विचरण करता दिखलायी पड़ने लगता था।

कृष्ण बलदेव की कहानी 'ऋण' पिता-पुत्र के सम्बन्ध में इसी भावना से ओत-प्रोत है। मणिका मोहनी की कहानी 'दूरियों के बीच' का नायक भी अपने पिता को निरर्थक ही मानता है। वास्तव में पुत्र का पिता के प्रति घृणा या उपेक्षा भाव पिता के प्राचीन मूल्यों से चिपके रहने के कारण है। पिता अपने मूल्यों को छोड़ नहीं पाता और पुत्र पिता के मूल्यों से घृणा करता है। वह नवीन मूल्यों की तलाश में निरन्तर बढ़ने के प्रयास में रत है। दोनों के बीच सामंजस्य स्थापित नहीं हो पाता। जहाँ पिता अपने प्राचीन मूल्यों को नयी पीढ़ी के पुत्रों में थोपने का प्रयास करने कारण ही पुत्रों द्वारा उपेक्षित होता है। ज्ञानरंजन की कहानियाँ इस दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। वास्तव में वे सम्बन्धों के कहानीकार हैं। "ज्ञान रंजन सही मायने में और पूरी तरह 'सम्बन्धों' के कहानीकार हैं। अपनी पीढ़ी के किसी भी कहानीकार से अधिक। सम्बन्धों को समझने की इस बेचैनी को 'शेष होते हुए' से लेकर 'सम्बन्ध' तक एक खास क्रम में देखा जा सकता है।"[२]

---

१ सारिका मार्च १९७५ उसकी पहचान- गंगाप्रसाद विमल, पृ० ४६.

२ समकालीन कहानी-दिशा और दृष्टि - संपा० धनंजय, पृ० २५६.

ज्ञान रंजन की 'कलह', 'शेष होते हुए', 'पिता', 'सम्बन्ध', फैंस के इधर-उधर में बनते बिगड़ते सम्बन्धों तथा उससे उत्पन्न पीड़ा को दर्शाया गया है। 'शेष होते हुए' में सम्बन्ध के बदलाव और तनाव को दर्शाया गया है जिसमें मनुष्य की वर्तमान स्थिति के प्रति भरपूर संकेत प्राप्त होता है। जिसमें व्यक्ति पारिवारिक विघटन की स्थिति को झेल रहा है। इस कहानी की मंझला भी इसी पारिवारिक विघटन का भोक्ता है। वह अपने घर में जब वापस आता है तो देखता है कि उसके एक ही घर मे कई घर हो गए हैं। जैसे भाभी का कमरा अलग जो गुदड़ी बाजार से ज्यादा नहीं लगता। टीनू के दोस्त से मिलने-बैठाने का अलग कमरा। तारा के पढ़ने के लिए बरामदे में पार्टीशन करके तारा का स्टडी रूम बनवाया गया, जो स्टडी रूम कम छात्रावास ज्यादा लगता है। माँ-बाप का अलग उपेक्षित सा कमरा। यह सब देखकर मंझला उद्वेलित हो उठता है और अन्दर से टूट सा जाता है। इस 'घर में सात लोग हैं और सात बार टेबल पर खाना रखा जाता है। इस तरह जब वह वापस नौकरी पर जाता है तो घर के सभी सदस्य इकट्ठे होकर उसे विदा करने आए हैं। यह दृश्य उसे बड़ा अटपटा और झूठा लगता है। इस प्रकार इस कहानी के सदस्य अभी पूरी तरह टूटे और बिखरे नहीं है। यह स्थिति तो अपने अंजाम तक पहुँचने की अभी शुरूआत है। इस कहानी के सन्दर्भ में धनन्जय के अनुसार- "शेष होते हुए में एक भोला दर्द है। मध्यवर्गीय पारिवारिक सम्बन्धों के अभिशाप का दर्द : पिता से रीनू तक एक अज्ञात परिणाम वाले भविष्य के लिए वर्तमान की स्थितियाँ झेल रहे हैं। लेकिन टूटते घिसटते सम्बन्धों के लिए यह किशोर की विह्वलता 'सम्बन्ध' में सत्य हो जाती है।"[१] इनकी कहानी पिता के पिता का सर्वथा भिन्न व्यक्तित्व है। इनके अपने जीवन मूल्य हैं और ये जीवन-मूल्य अपनी सन्तानों की अगली पीढ़ी से तालमेल नहीं बैठा पाते लेकिन वे किसी भी कीमत पर अपने जीवन-मूल्य और जीवन-पद्धति को छोड़ने या परिवर्तित करने को तैयार नहीं है। वे अपने मूल्यों के बड़े पक्के हैं उनका यह आग्रह नहीं है कि नयी पीढ़ी उनके मूल्यों व आदर्शों को ग्रहण करे। उनके अनुसार नयी पीढ़ी नये मूल्यों को अपनाने

---

१. समकालीन कहानी-दिशा और दृष्टि - संपा० धनंजय, पृ० २५६.

में पूरी तरह से स्वतन्त्र है। उसकी सन्तान सोचती है कि "पिता अभी बूढ़े नहीं हुए हैं उन्हें प्रतिक्षण हमारे साथ-साथ जीवित रहना चाहिए, भरसक।" और पिता हैं कि अपने सिद्धान्तों से हिलते भी नजर नहीं आते। "उसे लगा पिता एक बुलन्द भीमकाय दरवाजे की तरह खड़े हैं जिससे टकरा-टकराकर हम सब निहायत पिद्दी और दयनीय होते जा रहे हैं।"[१] इस तरह यह कहानी अन्य कहानी से पिता के प्रति उपेक्षा भाव नहीं रखती। पुत्र पिता से समर्थन भाव न रखते हुए भी उनसे अलग नही है वरन् वह कहीं न कहीं उससे जुड़ा हुआ है और यह जुड़ने का भाव श्रद्धा भाव से परिपूर्ण है। डॉ० पुष्पाल इस कहानी के सन्दर्भ में कहते हैं- "यह कहानी जीवन-दृष्टि के अन्तर होते हुए भी पिता को नकारती नहीं स्वीकारती है। सम्बन्धों के बिखराव में भी पिता का यह स्वीकार ही ज्ञानरंजन की इस कहानी को बेजोड़ बना देता है।"[२]

ज्ञान रंजन की 'पिता' कहानी के पिता विशिष्ट जीवन-शैली से ग्रस्त हैं। वे अपनी शैली के अनुसार ही जीवनयापन करते हैं। वे कभी भी "लड़कों द्वारा बाजार से लाये बिस्कुट मँहगे फल कुछ भी नहीं लेते कभी लेते भी हैं तो बहुत नाक भौं सिकोड़कर उसके बेस्वाद होने की बात शुरू में ही जोड़ देते हैं। अपनी अमावट, दाल-रोटी के अलावा दूसरों द्वारा लायी हुई चीजों की श्रेष्ठता से वे प्रभावित नहीं होते।"[३]

इसी प्रकार 'सम्बन्ध' और 'कलह' में उन मध्यमवर्गीय परिवारों का यथार्थ चित्रण दृष्टिगोचर होता है जो पारिवारिक विघटन एवं उस संक्रांतिपूर्ण स्थिति से गुजरते हैं। श्री हर्ष की 'रिश्ते' का पुत्र भी अपने पिता से न चाहते हुए भी अलग हो जाता है। सिद्धेश की कहानी 'आश्रय' में भी पारिवारिक विघटन की भयावह स्थिति को चित्रित किया गया है। इस कहानी में नन्द लाल बाबू जो एडवोकेट हैं। उनका छोटा बेटा अशोक अपनी पत्नी को लेकर अलग हो जाता है। नन्द बाबू सम्बन्धों की इस स्थिति को लेकर अत्यन्त दुखी होता है। वास्तव में नयी पीढ़ी, पुरानी पीढ़ी

---

१. 'सपना नहीं', 'पिता' – ज्ञानरंजन, पृ० १९९ तथा २००.
२. समकालीन कहानी : युगबोध का सन्दर्भ – डॉ० पुष्पपाल सिंह, पृ० १३१.
३ फेन्स के इधर और उधर संग्रह – ज्ञानरंजन, पृ० ७९-८०.

के इस दुख को कभी समझ ही नहीं पायी क्योंकि उसे अपना अलग परिवार बसाने की उत्सुकता, जोश से कभी फुर्सत ही नहीं मिली कि वह अपने बुजुर्गों के दुख-दर्द, तकलीफों को समझ सके। रश्मि तन्खा की 'चौथा बेटा' में भी पारिवारिक स्थिति अत्यन्त शोचनीय है। परिवार के सभी सदस्य एक दूसरे से कटे-कटे व आँखे चुराते हुए दिखते हैं। वे एक परिवार के होते हुए भी एक परिवार के सदस्य नहीं लगते।..... अपने घर में उसने खुद एक बाहरी व्यक्ति जैसा महसूस किया है उसे लगता है, एक ही परिवार में रहने वालों, एक ही भाषा बोलने वालों के बीच भी 'लेंग्वेज प्रोब्लम' हो सकती है। अगर उन्हें बराबर यह फील होता रहे कि 'दे आर नाट आन दी सेम वेव लेंथ।''[१]

इस तरह घर के सभी सदस्य अपने-अपने दुखों का बोझ उठाये हुए एक ही परिवार में जीए चले जा रहे हैं। इस प्रकार कई कहानियाँ साठोत्तरी कहानीकार द्वारा सामने आयी जिसमें पारिवारिक विघटन की भयावह स्थिति को उनकी यथार्थता के साथ चित्रित किया है। वास्तव में वर्तमान सामाजिक परिवेश में पारिवारिक विघटन एवं सम्बन्धों के टूटने का मुख्य कारण ही है कि आज पद निवृति के पश्चात् वृद्धावस्था में पिता को बेचारगी का सामना करना पड़ता है। पुत्र-पुत्रवधू से मिलने वाली उपेक्षा, कभी-कभी पत्नी द्वारा भी (पुत्र-पुत्रवधु का पक्ष भारी देखकर उधर झुक जाना) उपेक्षा का मिलना, पत्नी की मृत्यु के उपरान्त घर के पिता को लाचारी की स्थिति का मुँह देखना तथा अपनी वृद्धावस्था को पहाड़ के समान ढोने की स्थिति से मजबूर होना। इस तरह वृद्धावस्था में पिता को अपनी जिन्दगी जीना नहीं खींचना होता है। वह बार-बार यह सोचने पर मजबूर हो जाता है कि उससे भली तो मौत है। ईश्वर उसे उठा ले। घर के सदस्य भी इस अवांछित 'पिता' के बोझ को ढोने में अपने-आपको असमर्थ पाते हैं। वे यह सोचते हैं कि ईश्वर इन्हें कब उठाएगा। वे इस घड़ी का इन्तजार करते हैं कि कब उनका अन्त समय आये तथा उसके बाद वे स्वतन्त्र होकर जी सके। किन्तु कई परिवारों में तो पुत्र अपने पिता के अन्त के समय का भी इन्तजार नहीं करते और पिता के दुःख, तकलीफों को न समझते हुए परिवार से ही अलग हो जाते हैं। पिता की इस वृद्धावस्था व दुख-तकलीफों का मार्मिक व सशक्त चित्रण साठोत्तरी

---

१. चौथा बेटा, कहानी, जनवरी, १९७३ – रश्मि तन्खा, पृ० १३.

कहानियों में हुआ है। "आधुनिक कहानी ने वृद्धावस्था और उसकी विभिन्न समस्याओं को बड़े सजीव रूप में अत्यन्त विस्तार से अंकित किया है। प्रायः सभी कथाकारों ने इस कथ्य पर लेखनी उठायी है।"[१]

वृद्धावस्था तथा अन्य सम्बन्ध

निरूपमा सेवती की कहानी 'विमोह' में वृद्ध माँ-बाप (कान्ता और राधानाथ) बुढ़ापे में किसी तरह अपने जीवन के गाड़ी को खींच रहे हैं। शहर में उनका इकलौता पुत्र व पुत्रवधू रहते हैं। दोनों उनके पास आकर रहते हैं किन्तु उन्हें यह एहसास हो जाता है कि उनके आने से पुत्र-पुत्रवधू को कोई खुशी नहीं हुई। उनके पुत्र-पुत्रवधू यही समझते हैं कि उनके पास बहुत जमा पूँजी है और बेटा अपनी माँ से ऐसी बड़ी माँग कर बैठता है कि वे सन्न रह जाते हैं। यह माँग उन्हें छीलकर रख देती है। कहाँ तो माँ-बाप उनके घर बेगानेपन को महसूस कर रहे थे और यह बेगानेपन का दुःख वे उनके सामने रखने में भी संकोच कर रहे थे और कहाँ तो बेटे ने एक ही झटके में बिना कुछ सोचे-विचारे अपने मन की बात बूढ़े माँ-बाप के समक्ष रख दी। माँ-बाप अपनी पीड़ा मन में ही दबाये सहते गए। इसी प्रकार सुरेन्द्र कुमार की 'पोषक भक्षी' के मिश्रा जी की वृद्धावस्था की पीड़ा का मार्मिक चित्रण किया गया हैं। उन्हें अपने भरे-पूरे घर में पत्नी की स्मृति-चिन्ह, पान की डिबिया को कहीं भी रखने की अनुमति नहीं थी। इसलिए वह उसे पड़ोसी के घर सहेजने को कहकर निश्चिन्त हो जाते हैं। इस तरह बुढ़ापे में उस स्मृति-चिन्ह को रखने के लिए भी उन्हें कोई जरा सी जगह नहीं देता। इसी तरह उनकी चारपाई के लिए भी कोई सुनिश्चित जगह नहीं बनायी जाती, बस टम्परेरी व्यवस्था कर दी जाती है। जैसे दो दिन के लिए कोई मेहमान आया है। उन्हें एक फालतू समान की तरह इधर-उधर भटकाया जाता है। जब यह पीड़ा असहनीय हो जाती है तो व्यर्थ में अपना रोष भी प्रकट करते हैं और कहते हैं- "बच्चू, मुझे भी तुड़वा डालो। मैं भी भद्दा और पुराना हो गया हूँ। आखिर क्या चाहते हो तुम लोग?"[२] यह कहानी उस वृद्ध

---

१. समकालीन कहानी : युगबोध का सन्दर्भ - डॉ० पुष्पाल सिंह, पृ० १३३.

२. धर्मयुग १७ जुलाई, १९७७ पोषकभक्षी - सुरेन्द्र कुमार, पृ० १६.

व्यक्ति की पीड़ा का आभास कराती है जो जीवन भर अपनी घर-गृहस्थी को बनाने में जी तोड़ मेहनत करता है और बुढ़ापे में उसी घर-गृहस्थी को बनाने वाला अपने ही घर में पराया सा हो जाता है और उसे फालतू समझा जाता है।

गोविन्द मिश्र की कहानी 'कचकौंध' में पंडित ने अपने जिन मूल्यों को सहेजकर रखा। जिन आदर्शो में चलकर उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन ही बिता दिया। आज उन्हीं के बेटे-पोते शहरी वातावरण मे आकर आधुनिकता की होड़ में उन मूल्यों को ध्वस्त कर रहे हैं। उन्हें यह आभास होता है कि अगली पीढ़ी उनके सभी मूल्यों-आदर्शों को 'हर चीज को मटियामेट' कर रही है।

इसी प्रकार निर्मला ठाकुर की कहानी 'बेकार दीवारें' में बाबू जी भी शहर के वातावरण से सन्तुष्ट नहीं हैं। उन्हें अपने बेटे जो शहर में रहता है। उसके घर का 'वातावरण नामालूम तरीके से बढ़ता' नजर आता हैं वे 'शहर से कभी आश्वस्त नहीं हो सके।' प्रभु जोशी की कहानी 'उखड़ता हुआ बरगद' में ज्योतिषी को भी अपने बेटे-बहू द्वारा उनके मूल्यों को समाप्त करने की पीड़ा सताती है। परन्तु कभी-कभी परिस्थितियाँ ऐसी हो जाती हैं कि वृद्ध व्यक्ति जो जीवन भर अपने मूल्यों की रक्षा करता है, उन्हीं मूल्यों को छोड़ने पर वह मजबूर हो जाता है। रामदरश मिश्र की कहानी 'सड़क' में आर्थिक असम्पन्नता के कारण टूटते हुए मूल्यों की संवेदना को अभिव्यक्त किया गया है। इस कहानी में पाण्डेय जी स्थितियों में उतना नहीं जीते जितना कि वह स्थितियों के द्वारा टूटते मन के द्वन्द्व में जीते हैं। जब उनके अहं पर चोट लगती है तो पाण्डेय जी की मानसिकता बदल जाती है। पाण्डेय जी जो पहले अध्यापक थे। रिटायर होने के बाद धन की कमी के कारण उनको चाय की दुकान करनी पड़ी, जबकि उनका अर्न्तमन इसको स्वीकार नहीं कर पाता। पर उसकी मजबूरी थी। उनका एक शिष्य जो पढ़ने में बिल्कुल नालायक था, नेता बन गया था। वह पाण्डेय जी की दुकान में चाय पीने आता है। पाण्डेय जी को देखे बिना 'चाय ठीक नहीं बनी है' कहकर चाय का कप उठाकर फेंक देता हैं बाद में पाण्डेय जी को देखते ही वह उनको पाँच रुपया पकड़ाने लगता है। जिससे पाण्डेय जी के अहं को गहरी चोट लगी। "पाण्डेय जी तिलमिला गये। हाथ में पाँच रुपए का नोट पकड़े मर्माहत से रह गए। उनके मन में क्रोध का एक

बवण्डर-सा उठा। आँखों में हिकारत भरे वे यादव की ओर बढ़े और पाँच का नोट उनकी ओर फेंक कर चिल्लाये- यादव जी, ये अपने रुपये लेते जाइये, मैं भीख नहीं माँगता।"[१]

ममता कालिया की कहानी 'खाली होता हुआ घर' में उनकी लड़की सुमित्रा जो ससुराल से आती है और अपने पिता को 'रिटायरमेंट' तथा बुढ़ापे के लिए पहले से ही तैयारी करते हुए देखती है तो अन्दर ही अन्दर काँप उठती है। क्योंकि वह इसी पापा कां अपने अतीत के पापा से मेल करवाती है और सोचती है- "इन्हें तो बूढ़ा होने में अपार श्रम करना पड़ेगा।"[२] इस तरह यह कहानी बुढ़ापे की लाचारी व बेचारगी की कहानी कहती है जो 'बूढ़े' न होने पर भी 'बुढ़ापे' का सामना करने के लिए शक्ति जुटाते दिखते हैं। वास्तव में आज पारिवारिक विघटन या सम्बन्धों में तनाव या बदलाव का एक मुख्य कारण ही पिता का पद-निवृत के पश्चात बिल्कुल बेकार हो जाना है। उनकी आय का जरिया समाप्त हो जाता है और ऐसे में व्यक्ति को परिवार की उपेक्षा का सामना करना पड़ता है। मानो उसे पदनिवृत्ति क्या मिली जीते जी मृत्यु का पूर्वाभास ही करा दिया गया। गोविन्द मिश्र की कहानी 'घेरे' में वृद्ध व्यक्ति की यही मानसिकता देखने को मिलती है। "रिटायरमैंट..... अवकाश प्राप्ति.... छुट्टी.... बन्धन से मुक्ति की ओर या जीवन में ही मृत्यु का पूर्वाभास दोनों में से क्या माना जाये इसे?"[३] इसी तरह की कहानी राजी सेठ की 'उसका आकाश' में भी वृद्धावस्था की समस्या को दिखाया गया है। इसमें वृद्धावस्था में व्यक्ति के विधुर तथा रोगी होने के दोहरे दर्द को झेलने का दर्द है। एक तो वृद्धावस्था उस पर विधुर तथा बीमारी ने वैसे ही उसे तोड़कर रख दिया। इस पर बड़ी बहू का उपेक्षित व्यवहार उसे अन्दर से उद्वेलित कर गया। वह सदा एकाकीपन के एहसास से घिरा रहता तथा मृत पत्नी के याद उसे सताती रहती। वैसे तो उसे शारीरिक स्तर पर ही पक्षाघात हुआ था परन्तु सारी स्थितियाँ उसे मानसिक स्तर पर भी पक्षाघात कर गयी। इस कहानी में वृद्धावस्था लाचारी, बेचारगी, विवशता एवं रिक्तता का दर्द शुरू से अन्त तक अपनी मार्मिक गाथा गाता है।

---

१. 'रक्त वह' - रामदरश मिश्र, पृ० ८.

२ 'एक अदद औरत', 'खाली होता हुआ घर' - ममता कालिया, पृ० १२०.

३. 'अन्तःपुर', 'घेरे' - गोविन्द मिश्र, पृ० ९७.

सुनीता जैन की कहानी 'बाट' में पिता नहीं बूढ़ी माँ का दर्द देखने को मिलता हैं उसका पति मर गया है। अतः वह अपना गाँव का घर बेचकर बहू-बेटे के पास उनकी आश्रिता बनकर रहती है। उसने अपने सुख की परवाह कभी नहीं की बेटे को शहर में पढ़ा-लिखाकर बड़ा करने में ही उसकी सारी जिन्दगी समाप्त हो गयी। बची हुयी जिन्दगी वह बहू-बेटे के साथ खुशी-खुशी बिताकर समाप्त करना चाहती थी किन्तु यहाँ तो उसके सारे अधिकार ही समाप्त हो गए। वह बहू-बेटे के अधीन होकर रह गयी। यहाँ तक कि उसकी बेटी ससुराल से मायके आती है तो वहाँ परायापन का अनुभव करती है। वह सोचती है माँ ने गाँव का घर बेंचकर अच्छा नहीं किया। उसे लगता है उसका मायका छिन गया। भाई भाभी की दहलीज में उसे अपनत्व नहीं दिखता क्योंकि वास्तव में भाई-भाभी इन सम्बन्धों के जीते हुए नहीं दिखते बल्कि वे इन सम्बन्धों को ढोए हुए से नजर आते हैं।

भारतीय संस्कृति के अनुसार वृद्धावस्था में जब पुत्र अपने पैरों पर खड़ा हो जाता है, तो माँ-बाप की लाठी बन जाता है। माँ-बाप पुत्र की कामना ही इसीलिए करते हैं कि पुत्र उनके जीने का सहारा बनेगा। पग-पग पर उनका साथ देगा। क्योंकि उसका पैसा वे पूरे अधिकार के साथ उपयोग में ला सकते हैं किन्तु पुत्री के पैसों पर माँ-बाप का अधिकार नहीं होता। वह पैसा माँ-बाप के लिए अछूत है। किन्तु कुछ कहानियों में कई बार आर्थिक मजबूरी के कारण या अन्य कारणों से पिता पुत्री के पास जाता है, तो वहाँ भी उसे उपेक्षा ही मिलती है। इस प्रकार अर्थ के कारण आज पिता-पुत्री जो अत्यन्त स्नेहिल सम्बन्ध होता है, वहाँ पर भी अर्थ का गहरा प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। राकेश वत्स की 'गुलाम' में पिता की इस पीड़ा की आवाज सुनायी देती है, जहाँ पिता अपने लड़की के घर आता है पर वह उसका गुलाम ही बनकर रह जाता है। इस प्रकार बेटी की गुलामी करने पर उसे अत्यन्त मानसिक पीड़ा का अनुभव होता है।

इस तरह हम पाते हैं कि साठोत्तरी कहानियों में अर्थ के कारण सामाजिक व पारिवारिक सम्बन्धों में बहुत गहरा प्रभाव पड़ा है जिससे आज के सारे सम्बन्ध टूटते व बिखरते हुए दिखाई देते हैं। डॉ० पुष्पाल के अनुसार- "आधुनिक हिन्दी कहानी में चुकते-टूटते पारिवारिक सम्बन्धों

और उसके बीच टूटते व्यक्ति को बहुत बारीकी से आँककर वर्तमान सामाजिक परिदृश्य से गहरी पहचान स्थापित करायी गयी है।"[१]

समाज के अन्य सम्बन्ध

अर्थ के कारण पति-पत्नी, माँ-पुत्र या पिता-पुत्र, पिता-पुत्री के सम्बन्धों पर गहरा प्रभाव पड़ा हो ऐसा नही हैं समाज के अन्य सम्बन्धों पर भी अर्थ ने गहरा प्रभाव डाला है। ससुर-दामाद, मित्र-मित्र या अफसर-कर्मचारी आदि। हमारे भारतीय संस्कृति में एक समय दमाद, सास-ससुर का मान्य हुआ करता था। वे किसी कीमत पर उसे नाराज नहीं कर सकते थे अन्यथा वह उनकी बेटी को कष्ट देगा। ऐसी मानसिकता थी, किन्तु अब समय के साथ-साथ सास-ससुर की मानसिकता में भी बदलाव आया और वे भी अब इस सम्बन्ध को अर्थ के तराजू में तौलकर देखते हैं। यदि दमाद आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न है, तो सम्मानित है अन्यथा उसे भी उपेक्षा भरी निगाहों से सास-ससुर देखते हैं। भीष्म साहनी की 'पटरियाँ' इसी स्थिति का स्पष्टीकरण करती हैं, जिसमें ससुर चोपड़ा जी, जो अपने छोटे दमाद केशोराम जी को जो आर्थिक दृष्टि से कमजोर है से, इज्जत से बात तक नहीं करते और अपने बड़े दमाद, जो सरकारी अफसर है, से पूरे सम्मान के साथ बात करते हैं। दमाद जैसी इज्जत देते हैं "जब वह अपने ससुर चोपड़ा साहब से मिलने गया तो बातें करते हुए चोपड़ा साहब ने अपना पैर उठाकर उसी कुर्सी पर रख दिया था, उसे जताने के लिए कि वह उसकी हैसियत को समझते हैं। क्या वह इस तरह की बात अपने बड़े दामाद के साथ भी करेंगे? क्या उसकी कुर्सी पर भी अपना पैर रख देंगे? उनका बड़ा दमाद सरकारी अफसर है, एक हजार रुपया महीना कमाता है। उनके लिए तो चोपड़ा साहब केक मँगवाते हैं। उसके साथ हँस-हँसकर बातें करते हैं। केशोराम जाये तो लेक्चर देते हैं।"[२] इसी प्रकार समाज में खास मित्रों के बीच भी अर्थ प्रधान दृष्टि ने बहुत गहरी खाई खोद दी है। दो मित्रों को भी अपनी मित्रता बरकरार रखने में आर्थिक स्थिति देखनी पड़ती है। श्रीकांत वर्मा की कहानी 'संवाद' नायक हीनभावना का

---

१. समकालीन कहानी : युगबोध का सन्दर्भ – डॉ० पुष्पाल सिंह, पृ० १३३.
२. पटरियाँ – भीष्म साहनी, पृ० ११.

शिकार हो जाता है, क्योंकि उसी का एक पुराना मित्र उसके आफिस में अफसर बनकर आ गया। उसके मित्र प्रसाद और उसके वेतन में केवल दो सौ का अन्तर था। प्रसाद का वेतन मात्र दो सौ अधिक था किन्तु फिर भी वह अपनी हीनभावना के कारण सामान्य नहीं हो पाता। इसलिए अपने व प्रसाद के सम्बन्ध के पहले जैसा (मित्रवत) बनाने में वह असफल ही रहा।

इसी प्रकार गिरिराज किशोर की कहानी 'शीर्षकहीन' में दो मित्रों के सम्बन्धों और मन:स्थितियों मे बहुत अन्तर है। एक अफसर है जो आर्थिक रूप से मजबूत है और वहीं दूसरा मित्र उसी दफ्तर में क्लर्क है। आर्थिक दृष्टिकोण से दोनों मित्रों की स्थितियों में जमीन-आसमान का अन्तर है। क्लर्क जो सदा हीन भावना से ग्रस्त है, मित्र से सहज नहीं हो पाता। लेखक ने बड़ी कुशलता से सम्बन्धों के मानसिक जटिल रूप को सहजता के साथ चित्रित किया है। गिरिराज किशोर की कहानियाँ सम्बन्धों और मानसिक द्वन्द्व की अभिव्यक्ति बड़े सहज रूप में करती है। "अफसर तथा क्लर्क के बीच खाई है कि बचपन की दोस्ती का अहसास भी उसे खत्म नहीं कर सकता। क्लर्क दोस्त अपने अफसर दोस्त के आगे दब जाता है। उसकी सहजता खत्म हो जाती है। मेरा यह गलत ख्याल बन जाता है, मैं हर अफसर और क्लर्क को पहले अफसर और क्लर्क मानता हूँ, बाद में दोस्त और भाई।"[१]

"गिरिराज किशोर कहानियाँ (कहानी संग्रह : रिश्ता और अन्य कहानियाँ) सम्बन्धों के तनाव को तनावहीन भाषा में व्यक्त करती हैं। उनकी कहानियाँ रचना और विधान की दृष्टि से सीधी-सादी हैं पर वे सम्बन्धों के क्रूर अराजक संसार को खोलती चलती हैं। इसमें जटिल होते हुए सम्बन्धों और मानसिक कुण्ठाओं की अभिव्यक्ति ठेठ रूप में हुई है।"[२]

इसी प्रकार शिव प्रसाद सिंह 'एक यात्रा सतह के नीचे' में भी अर्थ के कारण सम्बन्धों में पड़ता गहरा प्रभाव दर्शाया गया है। जहाँ अवधू जो संयुक्त परिवार में रहता है। आज बेकार हो गया

---

१. रिश्ता और अन्य कहानियाँ, शीर्षक हीन : गिरिराज किशोर, पृ० २६.

२. समकालीन कहानी की पहचान - डॉ० नरेन्द्र मोहन, पृ० ९२.

है, इसलिए उसे व उसकी पत्नी को परिवार में कोई पूछता नहीं। उनकी परिवार में कोई इज्जत नहीं रह गई। सभी उपेक्षा भरी नजरों से देखते हैं। जिससे यह स्पष्ट दिखता है कि आज सम्बन्ध भी अर्थ के कारण ही बनते-बिगड़ते हैं। अवधू और उसकी पत्नी शोभा की आर्थिक स्थिति अत्यन्त दयनीय है। इसी कारण परिवार का कोई व्यक्ति उनसे बात तक नहीं करता और न ही सम्बन्ध बनाये रखना चाहता है। कमलेश्वर की 'मलबे का मालिक' देश के विभाजन की त्रासदी पर लिखी गई एक महत्त्वपूर्ण कहानी है, जिसमें मानवीय सम्बन्धों की पीड़ा करुणा और क्रूरता दृष्टिगोचर होती है।

वर्तमान सामाजिक परिवेश में प्रायः सभी सम्बन्धों में अर्थ का प्रभाव पूरी तरह छाया है। अर्थ के ही कारण आज सम्बन्धों में प्रेम व आत्मीयता का स्रोत सूखता जा रहा है। व्यक्ति-व्यक्ति के बीच रागात्मक सम्बन्ध टूटता जा रहा है। आज व्यक्ति जीवन जीने की लालसा में सम्बन्धों को बहुत पीछे छोड़ता जा रहा है। अपने व्यस्त जीवन में से वह चंदलम्हे भी अपने सम्बन्धों पर न देकर उस समय को भी 'कैश' करना चाहता है। आज किसी को किसी के दुख-दर्द तकलीफ से कोई लेना-देना नहीं है। सब अपने में ही मस्त होकर जीना चाहते हैं। सबकी अपनी-अपनी समस्यायें जिसका समाधान स्वयं उसे ही करना है। दूधनाथ सिंह की कहानी 'आइसवर्ग' में नायक विनय जिसने अपनी पत्नी को छोड़ दिया है किन्तु आज पूर्णता। आत्मकेन्द्रित हो जाता है। वह समाज व परिवार से भी कट जाता है। वह अकेलेपन से ऊब जाता है, तो इस अकेलेपन को दूर करने के लिए अपने भाई-बहन को पत्र द्वारा बुलवा लेता है परन्तु सगे भाई, भाभी, बहन के आने पर भी वह महसूस करता है कि वह फिर भी अकेला ही है। सभी उस पर आने का एहसान दिलाते हैं। वह उन सबके साथ रहते हुए भी अपने आप को उनसे बहुत दूर पाता है। किसी से भी आत्मीयपूर्ण बातचीत सम्भव नहीं हो पाती है। सबके साथ उसके सम्बन्ध ठण्डेपन को दर्शाते हैं। धीरे-धीरे सब लोग उससे अपनी विवशता बताकर चले जाते हैं। इस प्रकार हम पाते हैं कि आज सभी प्रकार के सम्बन्ध, चाहे वे कितने भी आत्मीय क्यों न हो, सभी सम्बन्धों पर अर्थ इतना हावी हो गया है कि सम्बन्धों को कोई महत्त्व ही नहीं देता। उसके अनुसार यदि उसके पास पैसा है तो

सभी उसके 'सम्बन्धी' बन जायेंगे। आज सम्बन्धों से व्यक्ति को ऊब होती है वह माँ को बुढ़िया और पत्नी को वेश्या ही समझता है। दूधनाथ की रक्तपात कहानी इसी प्रकार की मानसिकता की कहानी है। संतबख्श के शब्दों में "रक्तपात उनकी एक सशक्त कहानी है। यह कहानी समाज से अलग पड़े आज के व्यक्ति का सही चित्रण प्रस्तुत करती है। पत्नी को वेश्या और माँ को किसी सामान्य बुढ़िया से भिन्न न मानना सम्बन्धों की व्यर्थता को सामने लाता है। वहाँ रचना पाठक और बृहत्तर यथार्थ स्तर एक बिन्दु पर आ मिलते हैं।"[१]

आज व्यक्ति को जिन्दगी की एकरसता से, सभी प्रकार के सम्बन्धों से ऊब होती है। दूधनाथ सिंह की 'सपाट चेहरे वाला आदमी' में अदम्य जिजीविषा से बलात् समायोजन का जीने की स्थिति तथा एकरसतापूर्ण जिन्दगी का सजीव चित्रण देखने को मिलता है। "मुझे उत्साह से भी ऊब हो गयी है। कहीं कुछ ऐसा था जिसकी चाह में मुझे सब कुछ निरर्थक लगने लगा। मेरे आगे पीछे जो सुख का रहस्य जाल था, वह और ढाँपता गया, मुझे।[२]

इसी प्रकार रामदरश मिश्र की कहानी 'चिट्ठियों के बीच' में लेखक ने गाँव की जिन्दगी में नंगी, लाचारी का चित्रण बड़े ही मार्मिक रूप में किया है। इसमें निजी व गाँवों की ही परेशानियों में फँसे व्यक्ति का चित्रण बड़े ही यथार्थ ढंग से किया गया है। कहानी का नायक डॉ० देव शहर में रहता है, पर वह गाँव से जुड़ा है। अपने रागात्मक सम्बन्धों के कारण जब वह शहर में रहता है तो उस पर दबाव पड़ता है, परिवार की जरूरतों का और अगर गाँव में रहता है तो उस पर, अपने परिवार का, आत्मीय जनों का और परिस्थितियों का दबाव पड़ता है। यह दबाव भावात्मक सम्बन्धों को भी तनावपूर्ण बना देता है। डॉ० नरेन्द्र मोहन इस कहानी के सन्दर्भ लिखते हैं–

---

१. नई कहानी : कथ्य और शिल्प: 'संत बख्श सिंह, स्वातन्त्र्योत्तर कहानी में सामाजिक परिवर्तन, पृ० १५१.
२. पहला कदम (कहानी संग्रह) : 'सपाट चेहरे वाला आदमी' कहानी– दूधनाथ सिंह, पृ० २०१.

"सम्बन्धों का तनाव और द्वन्द्व इस कहानी में मानसिक स्तरों पर फैलता चलता है, जिसे लेखक ने रागात्मक रचना दृष्टि से संयोजित करना चाहा है।"[१]

वर्तमान सामाजिक व्यवस्था कुछ इस प्रकार है कि गरीब व्यक्ति जो दिन-रात मेहनत-मशक्कत करता है। उसे दो वक्त की रोटी भी नसीब नहीं होती और जो चोरी, रिश्वत खोरी के धन्धे में लगा है। वह दिन-रात फल-फूल रहा है। उसके लिए तरक्की के सब रास्ते खुले हैं। इसी विडम्बना को रामदरश मिश्र की ही कहानी 'एक वह' में दिखाया गया है। वर्तमान सामाजिक परिवेश में आर्थिक विपन्नता को झेलते हुए व्यक्ति की संवेदना की मार्मिक तथा यथार्थ अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। कहानी में नायक एक वृद्ध व्यक्ति है, जिसकी उम्र लगभग अस्सी वर्ष है। वह कभी भुट्टा, कभी मूँगफली या चना बेंचकर अपना पेट पालता है। सड़क ही उसका घर, दुकान सब कुछ है। वह अत्यन्त गरीबी में जी रहा है। इस कहानी के माध्यम से सामाजिक अव्यवस्था दर्शायी गयी है। जहाँ गरीब और गरीब तथा अमीर और अमीर होता जाता है। सरकार से हमेशा यह सुना जाता है कि समाजवाद आयेगा। इस कहानी में समाज के भ्रष्टाचार का सही रूप उभरा है। कहानी का नायक समाजवाद का मजाक उड़ाते हुए एक जगह कहता है, 'ई' समाजवाद का है हो ताऊ? डा० विनय 'एक वह' कहानी के सन्दर्भ में कहते हैं, "वृद्ध के परिचय से ही कथाकार अपने देश के सन्दर्भ में इस पात्र को संवेदनागत विस्तार देता है और उन तमाम परिस्थितियों को उभारता है जिनमें आज का व्यक्ति न केवल आर्थिक कठिनाई में जीते हुए अपने अस्तित्व को ही पाता है बल्कि उन तमाम सम्बन्ध सूत्रों से भी कट जाता है, जिनका वह सामान्य स्थिति में अधिकारी होता है।"[२]

---

१. आधुनिकता और समकालीन रचना सन्दर्भ - डॉ० नरेन्द्र मोहन, पृ० ११३.
२. समकालीन कहानी : समान्तर कहानी - डॉ० विनय, पृ० ३२.

वर्तमान समाज में व्यक्ति इतना स्वार्थी व निर्मम हो गया है कि उसे आत्मीय सम्बन्धों के प्रति भी किसी प्रकार का मोह या लगाव नहीं रह गया है। यहाँ तक कि उसके खास सम्बन्धी की मौत की खबर भी उसे विचलित नहीं करती। इसका यथार्थ चित्रण ज्ञान रंजन की कहानी 'सम्बन्ध' में देखने को मिलता है। 'सम्बन्ध' कहानी का नायक परिवेश से इतना कट गया है कि घर आते ही वह भय का अनुभव करने लगता है। परिवेश और व्यक्ति के बीच आज वैषम्य इतना बढ़ गया है कि जिस घर को स्वर्ग कहा जाता था, आज वहाँ आते ही व्यक्ति को किसी भय का अनुभव होता है, इसका यथार्थ चित्रण है 'सम्बन्ध' कहानी। आज व्यक्ति ज्यों-ज्यों 'सम्बन्ध' की गाँठ को तोड़ता गया त्यों-त्यों और निर्मम उपयोगितावादी दृष्टि से सम्बन्धों को स्वीकारने वाले व्यक्ति की भाषा रूक्ष व निर्मोही हो गई है। यहाँ तक कि माँ तथा भाई की मृत्यु भी मनुष्य को आज विचलित नहीं करती। वास्तव में 'सम्बन्ध' कहानी आज के व्यक्ति के सम्बन्धों के प्रति तटस्थ दृष्टिकोण को व्यंजित करती है।

उपसंहार

उपसंहार

आजादी की लड़ाई के उपरान्त १५ अगस्त सन् १९४७ में देश को स्वतन्त्रता मिली। स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व देशवासियों को बड़ी-बड़ी आशाएँ थीं। वे सोचते थे कि देश के स्वतन्त्र होते ही उनके सारे कष्टों का अन्त हो जाएगा। परन्तु ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ ही जनता ने खुशहाली के जो स्वप्न संजोए थे, स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ ही वे भरभरा कर टूट गए, देशवासियों की सारी आशाएँ धूमिल पड़ गयी क्योंकि स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ ही भारतीय जनता को विभाजन की त्रासदी से गुजरना पड़ा। भारत जाति के आधार पर दो भागों में बँट गया जिसके फलस्वरूप पाकिस्तान से हिन्दू यहाँ आने लगे और यहाँ के मुसलमान पाकिस्तान जाने लगे। इस स्थान परिवर्तन से इतने लोगों की हत्या, लूटपाट आदि की गई कि उसके स्मरण मात्र से ही भारतीय जनता का दिल दहल जाता है। देश के बँटवारे की त्रासदी ने कहानीकारों को इतना मर्माहत किया कि विभिन्न भाषाओं के कहानीकारों ने अपनी कहानियों में इस नारकीय घटना का चित्रण बड़े मार्मिक शब्दों में किया है। जैसे- लोचन खत्री की 'धूल तेरे चरणां दी', शेख अयाज की 'पड़ोसी' (सिंधी) गुलजार सिंह सिंधी की 'आखिरी तिनका' राजेन्द्र सिंह बेदी की 'लाजवंती' (पंजाबी) ना०ग० गोरे की 'चुल्लू भर खून', 'चुल्लू भर पानी' (मराठी), मनोज बसु की 'सीमान्त' (बंगाली)। मंतो की 'टोबा टेक सिंह' (उर्दू) तथा अन्य कहानियाँ लिखी गयीं। इसी प्रकार हिन्दी कहानियों में अज्ञेय की 'शरणदाता', मोहन राकेश की 'मलबे का मालिक', महीप सिंह की 'पानी का पुत्र', भीष्म साहनी की 'अमृतसर आ गया', कृष्णा सोबती की 'सिक्का बदल गया', बदी उज्जमा की 'परदेशी' विष्णु प्रभाकर की 'मेरा वतन' आदि कहानियाँ विभाजन की त्रासदी के

सन्दर्भ में लिखी गई हैं। देश विभाजन के फलस्वरूप शासकों को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा, जिसमें शरणार्थियों को बसाने की समस्या सर्वप्रमुख थी। २६ जनवरी, १९५० को भारत का संविधान बना और भारत वास्तविक अर्थों में सर्वोच्च सत्तायुक्त स्वतन्त्र देश कहलाने का अधिकारी बना। यद्यपि स्वातन्त्र्योत्तर भारत की सामाजिक अवस्था प्रारम्भिक वर्षों में अत्यन्त शोचनीय थी, परन्तु धीरे-धीरे इस स्थिति में सुधार आया और प्रजातांत्रिक शासन प्रणाली होने के कारण यह स्थिति सुधरती चली गई। भारतीय संविधान में समाज के प्रत्येक व्यक्ति को समान अधिकार मिला। वर्ण व्यवस्था रूढ़ियों को समाप्त करके पिछड़ी जातियों तो अछूतों को सुधारने का भरसक प्रयास किया गया। नारी की स्थिति पुरुष के समान गौरवशाली हो गई। समाज में शिक्षा का गौरव बढ़ा। पंचवर्षीय योजनाओं द्वारा बेकारी को दूर करने, कृषि, विद्युत शक्ति, उद्योग धन्धों आदि के विकास को प्राथमिकता दी गई।

देश को जहाँ एक ओर स्वतन्त्रता मिली वहीं दूसरी ओर सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से बिखराव भी दृष्टिगोचर होने लगा और यह बिखराव १९५० के आस-पास लक्षित हुआ जिसे हम आज भी साहित्य की सभी विधाओं में स्पष्ट रूप से देख सकते हैं। १९४७ के बाद की कहानी को मुख्यतया 'नयी कहानी' के नाम से अभिहित किया। स्वतन्त्रता प्राप्ति से नयी कहानी के प्रारम्भ होने तक के सात-आठ वर्ष कहानी के लिए गत्यवरोध के वर्ष रहे।

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी अपने स्वरूप के वस्तुपरक अनुभव की कहानी है। स्वतन्त्रता के पश्चात् हिन्दी कहानीकार ने देश के विभिन्न क्षेत्रों में आये परिवर्तनों को अत्यन्त निकट से देखा और यथार्थ की अभिव्यक्ति की। इस यथार्थ की अभिव्यक्ति नयी कहानी से ही हुई। इसके पूर्व कहानी कहानी-कला के मूल्यों को लेकर चलती थी, अब जीवन-मूल्यों को लेकर चलती है। स्वातन्त्र्योत्तर कहानीकार ने कल्पना और आदर्श का परित्याग यथार्थ को ग्रहण कर उसे अपना विषय बनाया। देश को स्वतन्त्रता मिलने के साथ ही सारे देश की परिस्थितियों तथा मानसिकता में बदलाव आया। जनसंख्या वृद्धि से परिवार नियोजन का प्रचार पुराने मूल्यों का टूटना, व्यवस्था के

प्रति जनता के आक्रोश का बढ़ना, सैक्स और टैबूज का टूटना, आर्थिक विपन्नता का बढ़ना, नारी का अर्थोपार्जन हेतु बाहर आना, सम्बन्धों में बदलता दृष्टिकोण, बड़ी-बड़ी योजनाएँ, उद्योग-धन्धों का विकास, चारों ओर भ्रष्टाचार, चोरी-रिश्वत, बेईमानी का बोलबाला होना इस तरह के वातावरण से जुड़े व्यक्ति की मानसिकता, हताश, तनाव, अविश्वसनीयता के वातावरण में साँस लेता सम्पूर्ण देश, एकाकीपन से ऊबा व्यक्ति किन्तु जीने की उत्कण्ठा अस्तित्व रक्षा के लिए संघर्षरत व्यक्ति, इन सबने हिन्दी कहानी के तथ्य को एक नया मोड़ दिया। नयी कहानी में जीवन की सारी विसंगतियों, संगतियों, जटिलताओं और दबावों को बड़ी सूक्ष्मता से अनुभव किया, इसलिए नयी कहानी वस्तुतः जीवनानुभवों की ही कहानी है।

सन् ६० तक आते-आते 'नयी कहानी' बँधे-बँधाए अनुभूति पैर्टनों में ढलने लगी। जीवन यथार्थ का एक भिन्न रूप और नयी जीवन स्थितियाँ सामने थीं। नये कहानीकार इन स्थितियों का सामना करने में अपने आपको असमर्थ पा रहे थे। इस चुनौती का सामना 'अकहानी' और सचेतन कहानी में अपने-अपने तरीके से किया। अकहानी के प्रवक्ताओं के अनुसार इसका सामना मूल्यों की स्थापना करने से नहीं बल्कि मूल्यों की मृत्यु के प्रति तटस्थता बरतने और यथार्थ का निषेध करने से हो सकता है। 'सचेतन कहानी' के व्याख्याताओं के अनुसार इस नयी चुनौती का सामना करने के लिए जीवन-मूल्यों को एक नया परिप्रेक्ष्य देने पर बल दिया। 'नयी कहानी' के कहानीकारों में जहाँ यथार्थ के प्रति मोह और आग्रह नजर आने लगा वहीं साठोत्तर कहानीकारों ने यथार्थ की भयावहता से जूझने का प्रयत्न किया।

जब १९६१ में काशीनाथ सिंह की 'सुख' कहानी प्रकाशित हुई तो कहानी के जागरूक पाठकों ने अपनी प्रतिक्रिया स्वरूप इसे अलग कहानी के रूप स्वीकार किया। वस्तुतः किसी भी देश के समाज या देशकाल में आए परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य में भी परिवर्तन परिलक्षित होता है। अतः साठोत्तर युग में परिवर्तन के साथ-ही-साथ कहानी की भी प्रकृति व प्रवृत्ति में

बदलाव लक्षित हुआ। यह बदलाव १९६२ के आस-पास ही दृष्टिगोचर होता है जो १९६५ तक आते-आते पूर्णतः अपने आपको बदला हुआ प्रमाणित करता है।

१९५०-५१ की बीच हिन्दी कहानी ने पर्याप्त सफलता प्राप्त की। इस दौर में सफल कहानियों का अम्बार ही लग गया। कमलेश्वर की खोई हुई दिशाएँ, मोहन राकेश की 'मिस पाल', नरेश मेहता की 'अनबीता अतीत', राजेन्द्र यादव की 'टूटना', अमरकान्त की 'जिन्दगी और जोंक', निर्मल वर्मा की 'लन्दन की एक रात', फणीश्वर रेणु की 'तीसरी कसम', भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत', मार्कण्डेय की 'हंसा जाई अकेला', कृष्णा सोबती की 'आकाश के आइने में', ऊषा प्रियम्वदा की 'जिन्दगी और गुलाब के फूल', रवीन्द्र कालिया की 'बड़े शहर का आदमी', ज्ञानरंजन की 'फेंस के इधर-उधर', दूधनाथ सिंह की 'रीछ' आदि कहानियाँ रहीं।

जैसे-जैसे सामाजिक परिवेश मे परिवर्तन लक्षित होता गया उसका सीधा सम्बन्ध कहानीकार की प्रवृत्ति व उसकी कहानियों पर परिलक्षित होता गया। जैसे वर्तमान सामाजिक परिवेश में 'अर्थ' महत्व को समाज का प्रत्येक स्वीकारता है। यह अर्थ आज समाज में संस्कृति, धार्मिक, राजनैतिक तथा शैक्षिक सभी क्षेत्रों में अपनी कुण्डली मारे बैठा है। आर्थिक विपन्नता से आज का ही व्यक्ति त्रस्त है ऐसा नहीं है। इस आर्थिक तंगदस्ती का सशक्त चित्रण स्वतन्त्रता मिलने से पूर्व ही साहित्य में दृष्टिगोचर होता है। किन्तु आज आर्थिक विपन्नता से अपना उग्र रूप धारण कर लिया है जिससे निजात पाना असम्भव सा लगता है। आज का व्यक्ति 'अर्थ' के पीछे पागल सा, दिशाहीन भाग रहा है। आज व्यक्ति अर्थ के लिए अपने मूल्य, आदर्श, विश्वास, चरित्र, ईमान, सम्बन्धों तक को बेच रहा है। खुले आम इनकी नीलामी कर रहा है और इसके लिए उसके मन में जरा भी पछतावा नहीं है। इसका मूल कारण देखा जाए तो पाएंगे कि हमारी सामाजिक-व्यवस्था का अव्यवस्थित होना तथा इसका हमारी अर्थ-व्यवस्था पर कुठाराघात होना है। सन् ४७ में देश की आजादी के साथ ही देश के विभाजन के परिणामस्वरूप हजारों की तादात में मुसलमानों का भारत से पाकिस्तान जाना और हिन्दुओं का पाकिस्तान से भारत आने के कारण हिन्दू-मुस्लिम

झगड़े, लूटपाट, अत्याचार, आगजनी जैसी वीभत्स घटनाएँ घटीं फलस्वरूप धन-जन की काफी हानि हुई। इसके साथ ही शरणार्थियों को पुनः स्थापित करने की समस्या ने देश की आर्थिक-व्यवस्था पर कुठाराघात किया। यही कारण है कि नयी कहानी में आर्थिक-व्यवस्था पर कुठाराघात किया। यही कारण है कि नयी कहानी में आर्थिक विपन्नता का सशक्त चित्रण दृष्टिगोचर होता है। अमरकान्त की 'दोपहर का भोजन', 'डिप्टी कलक्टरी' आदि कमलेश्वर की 'राजा निरबंसिया', 'मांस का दरिया', मार्कण्डेय की 'दूध और दवा' जैसी अनेक कहानियों में सामान्य व्यक्ति की आर्थिक विपन्नता का गहरी मानवीय संवेदना के साथ चित्रण हुआ है।

इस प्रकार हम पाते हैं कि आर्थिक विपन्नता जहाँ स्वतन्त्रता पूर्व भी थी वहाँ स्वतन्त्रता पश्चात् भी है फर्क सिर्फ इतना है कि तब आर्थिक दासता के दास अंग्रेज थे। आज हमारे अपने ही लोग हैं। सामान्य व्यक्ति तब शोषित वर्ग के अन्तर्गत आता था और आज, जबकि हम स्वतन्त्र हैं तब भी शोषित हैं। हमारे समाज की व्यवस्था कुछ ऐसी बनी कि अमीर और अमीर बनता गया तथा गरीब और गरीब होता गया, किन्तु अर्थाभाव से ग्रस्त होने के बावजूद तब के व्यक्ति में मानवता थी। लोगों की यह मानसिकता थी कि धन तो हाथ का मैल है। आज है कल नहीं। धन तो मेहनत करके पुनः कमाया जा सकता है परन्तु चरित्र, ईमान, विश्वास एक बार गया तो पुनः वापस नहीं आ सकता इसलिए इसे व्यक्ति सहेजकर रखता था। किसी व्यक्ति के ऊपर संकट आने पर लोग सहर्ष सहायतार्थ आगे आते थे किन्तु आज व्यक्ति की मानसिकता में जमीन-आसमान का अन्तर आ गया है। व्यक्ति पैसों के लिए अपना ईमान, धर्म, चरित्र, विश्वास सब कुछ दाँव पर लगा देता है। यहाँ तक कि अपने सगे-सम्बन्धियों आत्मीय सम्बन्धों को भी पैसों के आगे छोड़ सकता है।

१९६० के आस-पास का समय जनमानस के लिए मोहभंग का रहा। साठोत्तरी कहानी के प्रारम्भिक दौर (१९६०-६५ ई०) में मनुष्य की जीवन परिस्थितियाँ बड़ी तीव्र गति से बदलती चली गईं। १९६० के बाद तो समाज में आर्थिक दबाव बढ़ता ही चला गया। सन् १९६२ में चीन द्वारा

भारत पर आक्रमण से अभी देश उबर भी न पाया था कि पुनः १९६५ एवं १९७१ में भारत-पाकिस्तान के युद्धों की शृंखला ने हमारी पहले से कमजोर अर्थव्यवस्था पर ऐसी चोट मारी की वह बुरी तरह चरमरा गई। १९६६-६७ में पड़े भीषण अकाल तथा लगातार युद्धों ने अनेक प्रकार से अर्थ व्यवस्था पर गहरा दबाव डाला और व्यक्ति के जीवन की स्थितियों को विषम से विषमतर बना दिया। अतिवृष्टि, अनावृष्टि से सूखा, अकाल व बाढ़ ने देश में खाद्य-पदार्थों का संकट पैदा कर दिया। मुद्रा स्फीति और मुद्रा-अवमूल्यन के परिणामस्वरूप मुद्रा की क्रयशक्ति का ह्रास हुआ जिससे कमर-तोड़ मँहगाई व करों के बोझ के कारण सामान्य व्यक्ति अर्थ के बोझ तले दबा चला गया। मँहगाई दिन-प्रतिदिन सुरसा की तरह मुँह फाड़ती चली जा रही थी जिससे व्यक्ति अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हाथ-पाँव मारता दिख रहा था। छोटी से छोटी व बड़ी से बड़ी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए व्यक्ति को लम्बी-लम्बी कतारों में खड़ा होना पड़ा। धनाभाव के कारण व्यक्ति की इच्छाओं की पूर्ति नहीं हो पा रही थी। फलतः व्यक्ति निराशा और कुण्ठा से ग्रसित होता चला गया। राजनीति में सत्ता परिवर्तन की अनिश्चयकारी स्थितियों एवं केन्द्रीय शक्ति की दुर्बलता जैसी स्थितियों ने सामान्य व्यक्ति के जीवन जीने की स्थितियों को विकराल से विकरालतम बना दिया। अर्थाभाव के कारण रोजगार की तलाश में लोगों का गाँव से शहर की ओर पलायन करने तथा जनसंख्या वृद्धि ने व्यक्ति की समस्याओं को और सघन कर दिया। इसके परिणामस्वरूप बेरोजगारी, शिक्षित बेरोजगारी में बढ़ोत्तरी हुई। व्यक्ति को अपनी मूलभूत आवश्यकताओं- रोटी, कपड़ा और मकान के लिए पग-पग पर संघर्ष करना पड़ा। शिक्षा, योग्यता और प्रतिभा को खुलेआम नजरअंदाज किया गया। उचित व्यक्ति को समुचित रोजगार नहीं मिला। देश के नवयुवक गहरी निराशा, कुण्ठा से भर गए उन्होंने एक जुझारू मुद्रा धारण की। इस समय का यथार्थ 'नई कहानी' के यथार्थ से बहुत हद तक बदला हुआ था। नयी कहानी का कहानीकार जिस यथार्थ को कल्पित कर रहा था वह इस युग में भोगा जा रहा था। फलस्वरूप साठोत्तरी कहानीकारों में इस भोगे यथार्थ को जैसे का तैसा व्याख्यायित करने लगा। जनसंख्या में

दिन–प्रतिदिन की बढ़ोत्तरी एवं साधन सीमित होने के कारण लूट–घसोट छीनने–झपटने की प्रवृत्ति में बढ़ोत्तरी हुई। व्यक्ति स्वार्थी व आत्मकेन्द्रित होता गया। समाज अर्थप्रधान हो गया। व्यक्ति को हर पल आर्थिक चिन्ताएँ ही मथती रहती हैं। व्यक्ति की सोच में 'अर्थ' हावी होता गया।

आर्थिक कुचक्र के दानव ने साठोत्तरी समाज को और मुख्य रूप से मध्यवर्गीय तथा निम्नस्तरीय समाज को बुरी तरह कुचल दिया है। मध्यमवर्गीय समाज की अधिकांश समस्याएँ अर्थ से ही सम्बन्धित हैं। वह आर्थिक जंजालों से ऊबर नहीं पा रहा है और यही स्थिति निम्नवर्ग की भी है। आज व्यक्ति हर पल अर्थ से उत्पन्न समस्याओं के समाधान हेतु निरन्तर संघर्षरत है। आज के सामान्य व्यक्ति को जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आर्थिक मुहानों पर अनेक लड़ाइयाँ लड़नी पड़ रही हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति से आज तक आर्थिक विपन्नताओं से जूझते मनुष्य को ही कहानीकार ने अपना प्रतिपाद्य विषय बनाया है। कहानीकार स्वयं इस आर्थिक तंगदस्ती का शिकार है। अमरकान्त की 'दोपहर का भोजन' में आर्थिक विपन्नता से जूझते परिवार के सदस्यों का बड़ा ही मार्मिक चित्रण हुआ है। इसी प्रकार कमलेश्वर की कहानी 'राजा निरबंसिया' में मध्य वर्ग के व्यक्ति की अभावग्रस्त जिन्दगी का बड़ा दारूण स्थिति में चित्रण हुआ है। 'जोखिम', 'बेकार आदमी', 'ऊपर उठता हुआ मकान', 'माँस का दरिया', 'इतने अच्छे दिन', 'खोई हुई दिशाएँ' आदि कहानियों में भी अर्थाभाव में संघर्ष करते हुए व्यक्ति की कहानी चित्रित हुई है।

साठोत्तर काल में व्यक्ति ने सांस्कृतिक संकट को सबसे ज्यादा सहन किया। आज वह दो राहे पर खड़ा है। वह अपनी प्राचीन संस्कृति से पूरी तरह से मुँह भी नहीं मोड़ पा रहा है जो उसे अपने पूर्वजों से विरासत में मिले हैं। उसे जहाँ प्राचीनता के प्रति मोह है वहीं नवीनता के प्रति लालसा भरी दृष्टि से निहार रहा है। किसे आत्मसात करे और किसे त्यागे? इसी उधेड़बुन में आज का व्यक्ति अर्न्तद्वन्द्व से गुजर रहा है। पश्चिमी जीवन पद्धति ने आज के सामान्य व्यक्ति के मन–मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव डाला। साथ ही अर्थ के गहराते प्रभाव के कारण जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मूल्यों में बड़ा भारी परिवर्तन आया। यद्यपि परिवर्तन विकास का द्योतक है और हमेशा से एक

युग के मूल्य कुछ समयावधि के उपरान्त परिवर्तित हो जाते हैं किन्तु इधर कुछ सालों में जो मूल्यों में परिवर्तन आये हैं वे बड़े द्रुतगामी रहे हैं। फलस्वरूप आज एक ही व्यक्ति को अपनी जीवनावधि के छोटे से दायरे में मूल्यों के इस परिवर्तनों को महसूस करता है। इसी कारण आज पीढ़ियों में बहुत अधिक अन्तराल दिखायी पड़ता है।

वर्तमान समय में व्यक्ति को पल-पल यह एहसास होता है कि आज समाज में पैसा ही सब कुछ है। पैसा है तो वह सब कुछ खरीद सकता है। आज व्यक्ति की शक्ति उसकी आर्थिक सम्पन्नता से ही आँकी जा रही है। जो जितना पैसे वाला है वह उतना ही शक्तिशाली है और समाज में प्रतिष्ठित है। मानव-मूल्यांकन आज धन के आधार पर किया जा रहा है।

ऐसी स्थिति में जीवन के महान मूल्यों के प्रति व्यक्ति की आस्था उठ चुकी है। फलतः समाज में चारों ओर भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, झूठ-फरेब का ही बोल बाला दृष्टिगोचर हो रहा है। यही कारण है कि आज के व्यक्ति की दृष्टि पूरी तरह 'अर्थ' पर ही आकर टिक गयी है। वह किसी भी तरीके से 'अर्थोपार्जन' करने में संघर्षरत है। इसके लिए उसे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है और अन्त में उसे न सुख मिलता है न संतोष क्योंकि उसकी इच्छाओं का कहीं अन्त ही नहीं होता। उसे मिलता है तो मानसिक थकान, एक अजीब रिक्तता, उदासी और निराशा। ऐसे में व्यक्ति अपने को समय से पहले ही बूढ़ा व थका हुआ पाता है। साठोत्तरी कहानियों में समाज के सामान्य व्यक्ति की मनःस्थिति का चित्रण बड़े ही मार्मिक व यथार्थ रूप में किया गया है। ममता कालिया की 'तस्की को हम न रोएँ' में व्यक्ति की इसी स्थिति का यथार्थ चित्रण है- "निजी रद्दोबदल के सिलसिले में उसको समझ नहीं आ रहा था। कब उसकी कमर आधा फुट चौड़ी हो गयी, किस दिन सिर में पहला सफेद बाल झलका, कब उसका पति फैक्टरी से रात ग्यारह बजे लौटने लगा, कब बच्चों ने उसके साथ छुआ-छुई का खेल खेलना बन्द कर दिया। ये उसके शरीर में आर्थिक चोटों की मार के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं जिन्हें समाज का सामान्य व्यक्ति महसूस करता है और इन्हीं अनुभवों को कहानियों के माध्यम से कहानीकारों ने अभिव्यक्त किया है।

वर्तमान जटिल सामाजिक परिवेश में सामान्य नौकरीपेशा व्यक्ति अपेक्षाकृत अधिक असंतुष्ट है तथा संघर्षरत है, क्योंकि उसे अपना सम्पूर्ण जीवन अपने रहन-सहन के स्तर को सम्मानपूर्ण एवं सुन्दर बनाने के प्रयास में ही लगा रहता है। वह भविष्य की चिन्ता में भयावह वर्तमान को भोगता है। नौकरीपेशा व्यक्ति को न सिर्फ अपने परिवार का पेट पालना ही है बल्कि अपने बच्चों की शिक्षा, विवाह एवं जीवन स्तर को ऊपर उठाने के प्रयासों में ही बीतता जाता है। व्यक्ति की अपनी रुचि-अरुचि का कोई औचित्य नहीं है और न वह अपनी रुचियों के अनुसार कार्य करने में ही स्वतन्त्र है। आर्थिक विपन्नता उसकी रुचियों को या तो विकृत कर देती हैं या समाप्त ही कर देती है। व्यक्ति चाहता कुछ और है परन्तु आर्थिक विपन्नता उसे कुछ और ही करने पर मजबूर कर देती है। से० रा० यात्री की 'दर्पण' कहानी में एक ऐसे ही क्लर्क की मनोदशा का चित्रण है। सामान्य नौकरी पेशा व्यक्ति अपने मन में तरह-तरह के अरमानों को दबाए हुए जीवन के अर्थाभावों के थपेड़ों को झेलता हुआ एक तारीख का इन्तजार करता है जब उसे तन्ख्वाह मिलती है। वह दिन उसकी जिन्दगी में बसंत लेकर आता है और धीरे-धीरे पतझड़ शुरू हो जाता है यानि एक तारीख के बाद शनैः शनैः पतझड़ की शुरूआत शुरू हो जाती है। ममता कालिया की 'बसंत एक तारीख' कहानी में नौकरीपेशा व्यक्ति की इसी स्थिति का यथार्थ चित्रण मिलता है। हर महीना बीतने पर व्यक्ति को आश्चर्य एवम् गहरी प्रसन्नता का अनुभव होता है कि वह भूख, गरीबी, बीमारी व दुर्घटनाओं को चकमा देकर एक महीना और जिन्दा रह गए। इस प्रकार की आर्थिक विवशता ने मनुष्य के सपनों को रौंद डाला है। अर्थाभाव में व्यक्ति को अपनी जिन्दगी अर्थहीन लगने लगी है। नौकरीपेशा व्यक्ति यदि आय के साधनों को बढ़ाना भी चाहता है तो उसे ज्यादा शारीरिक श्रम करना पड़ता है बदले में आमदनी कम ही हो पाती है। जिससे व्यक्ति अर्थाभाव के साथ-साथ समयाभाव से भी पीड़ित होने लगता है। इसका प्रभाव परिवार पर पड़ता है और परिवार में असंतोष, अशांति फैलती है जिससे शुरू होता है गृह-कलह। व्यक्ति शारीरिक व मानसिक दोनों रूपों में अपने आपको थका पाता है।

मुहम्मद ताहिर की 'समय', शरणबंधु की 'कुत्ते' आदि कहानियों में व्यक्ति की इसी मनोदशा का चित्रण मिलता है। सामान्य नौकरीपेशा व्यक्ति की तनख्वाह उतनी की उतनी ही रहती है और यदि डी०ए० बढ़ता भी है तो बाजार के भाव उससे कई गुना बढ़ जाते हैं। पति-पत्नी के बीच इस छोटी इनकम को लेकर आए दिन झगड़े होते रहते हैं। श्री हर्ष की कहानी 'रिश्ते' में इसी आर्थिक तंगदस्ती का चित्रण मिलता है, जिसका नायक कम तनख्वाह पाता है जिससे घर का खर्च नही चल पाता परिणामस्वरूप पति-पत्नी में तनाव बना रहता है। इसका प्रभाव पति-पत्नी सम्बन्धों पर पड़ता है। नौकरीपेशा व्यक्ति को यही चिन्ता सताए रहती है कि इस बँधी-बँधाई तनख्वाह में वह घर खर्च कैसे पूरा कर सकेगा। इस चिन्ता में डूबा हुआ वह अपने हिसाब की चिन्ता में मग्न रहता है। उसका ध्यान पत्नी के बनाव-शृंगार पर जा ही नहीं पाता। मधुकर सिंह की सैलाब में एक पत्नी की इसी मनोदशा का चित्रण हुआ है। आज व्यक्ति की जिन्दगी नौकरी और महीने के अन्त में मिलने वाले वेतन पर ही आकर टिक गई है। निरन्तर संघर्ष करता हुआ वह कब बुढ़ापे की ओर बढ़ता चला गया इसका आभास ही उसे नहीं हो पाता। रमेश चन्द्र शाह की 'कहानी' में ऐसे ही नायक की मनोवेदना का चित्रण किया गया है। वास्तव में देश में गरीबी के ही कारण समाज के सामान्य व्यक्ति को इस कदर आर्थिक तंगी का सामना करना पड़ रहा है। स्वतन्त्रता पूर्व से ही व्यक्ति इस गरीबी का सामना कर रहा है किन्तु समय के साथ-साथ इस गरीबी ने और उग्र रूप धारण कर लिया।

आज का व्यक्ति आर्थिक तंगी से अपने आपको मुक्त कर पाने में असमर्थ सा महसूस कर रहा है। उस पर सरकार के 'गरीबी हटाओ' जैसे नारे लगा रही है परन्तु गरीबी हटने के बजाय ज्यों की त्यों या उससे भी बदत्तर हालत में बढ़ती ही जा रही है। इससे व्यक्ति के अन्दर विद्रोहात्मक प्रवृत्ति ने जन्म लिया। साठोत्तरी कहानियों में 'गरीबी हटाओ' जैसे नारों की व्यर्थता पर कई सार्थक कहानियाँ लिखीं गई हैं। रवीन्द्र कालिया ने तो 'गरीबी हटाओ' नामक कहानी-संग्रह को लिखकर इस नारे की व्यर्थता पर प्रकाश डाला है। माहेश्वर की 'मृत्युदण्ड' कहानी भी इसी सन्दर्भ में लिखी

एक कहानी है। अत्यन्त गरीबी में जीते हुए भी व्यक्ति के अन्दर जीने की उत्कट इच्छा है। वह किसी भी तरह जीना चाहता है। वह अपने या किसी दूसरे के द्वारा बनाये जंजालों में फँसता है, फिर उसे तोड़ता है, फिर फँसता है। यही उसकी नियति है। धर्मवीर भारती की 'गुलकी बन्नो' में इस स्थिति की यथार्थ अभिव्यक्ति हुई है। व्यक्ति घोर अभावों में भी जीना चाहता है जिन्दगी से चिपका रहना चाहता है। मार्कण्डेय की 'दूध और दवा' में व्यक्ति की जिजीविषा की यथार्थ अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। गरीबी बढ़ने का मूल कारण था कि सत्ता उन्हीं के हाथ में चली गयी जो पहले से सम्पन्न थे। इसके फलस्वरूप गरीब व्यक्ति और गरीब होता गया तथा अमीर और अमीर होते गए। इस गरीबी के कारण सामान्य व्यक्ति में असंतोष, कुण्ठा, अवसाद तथा आक्रोश का जन्म लेना स्वाभाविक था जिसके परिणामस्वरूप समाज में बिखराव ने जन्म लिया। आर्थिक विपन्नता ने व्यक्ति को इतना जुझारू बना दिया कि व्यक्ति आज भाग्यवादी नहीं बल्कि कर्मवादी हो गया। व्यक्ति का धर्म तथा ईश्वर से विश्वास उठ गया। आज व्यक्ति जीवन के प्रति जागरूक हुआ है और निरन्तर संघर्ष करता हुआ स्वयं अपने भाग्य का निर्माता बन गया है।

आज ईश्वर देने वाला नहीं बल्कि व्यक्ति स्वयं छीनकर लेने वाला हो गया है। साधन सीमित होने के कारण शक्तिशाली लेने में समर्थ हो जाता है और असहाय रह जाता है। धर्म एवं ईश्वर के प्रति व्यक्ति में आए परिवर्तन के कारण पाप और पुण्य के प्रति भी लोगों की सोच में परिवर्तन आया। आज व्यक्ति को बड़े से बड़े कुकृत्य को करने में 'पाप-बोध' नहीं जगता। व्यक्ति, मरने के बाद स्वर्ग या नरक में अपने कृत्यों के अनुसार जाने की धारणा को नहीं मानता उसकी सोच इस विषय में तार्किक दृष्टिकोण रखती है। परिणामस्वरूप आज समाज में आपराधिक प्रवृत्ति ने और बढ़ोत्तरी की है। वह अर्थ की प्राप्ति के लिए किसी भी सीमा तक गिर सकता है।

अर्थ प्रधान समाज होने के कारण व्यक्ति की सोच आर्थिक दृष्टि से संकीर्ण होती गयी। वह भौतिकवादी हो गया। भौतिक सुख सुविधाओं की वस्तुएँ जुटाने में वह निरन्तर संघर्ष करते हुए आत्मकेन्द्रित हो गया। उसकी दुनिया सिमटती चली गयी। अर्थोपार्जन हेतु घर की औरतों को

चारदीवारी लांघकर घर से बाहर आना पड़ा जिससे सामाजिक तथा पारिवारिक सम्बन्धों में बहुत बदलाव आये। संयुक्त परिवार टूटकर एकल परिवारों में बँटने लगे। समाज के सभी सम्बन्धों पर अर्थ का गहरा प्रभाव पड़ा। जिसे साठोत्तरी कहानियों ने बखूबी अभिव्यक्त किया है। उद्योग धन्धों को बढ़ावा मिला जिससे औद्योगिकरण की प्रक्रिया में तो तेजी आयी परन्तु व्यक्ति मशीनों का प्रयोग करते-करते स्वयं एक मशीनवत हो गया जिसमें भावना शून्य होती गयी। भावना शून्य व्यक्ति को किसी से कोई सारोकार नहीं रहा। उसे अपना ही अस्तित्व असुरक्षित लगने लगा। महानगरों में रोजगार की तलाश में आए व्यक्तियों के कारण महानगर में भीड़ बढ़ती चली गयी और व्यक्ति भीड़ में भी अकेला रह गया। अपना सुख-दुख बाँटने वाला उसे इस भीड़ में कोई न दिखा फलस्वरूप व्यक्ति स्वार्थी होता गया। मानवता जैसी चीज भीड़ में जाने कहाँ खो गई। महानगरों में मुख्य रूप से आर्थिक तंगी ही दृष्टिगोचर होती है चाहे वह निम्नवर्ग का हो, मध्यवर्ग का हो या उच्चवर्ग का ही क्यों न हो। आर्थिक चिन्ताएँ व्यक्ति को हर पल, हर पग पर मथती रहती हैं। आज व्यक्ति के पास सब कुछ होते हुए भी कुछ नहीं है। श्रवण कुमार की 'मैं' कहानी में एक ऐसे ही उच्च वर्गीय व्यक्ति की आर्थिक तंगदस्ती को दर्शाया है। भीष्म साहनी की 'पटरियाँ' कहानी का नायक भी इसी आर्थिक तंगदस्ती का शिकार है और अनुभव करता है कि "सबसे बड़ी चीज दुनिया में पैसा है। जिसके पास पैसा है उसके पास सब कुछ है।"[१] वास्तव में केशोराम के ये विचार ही वर्तमान समाज का सत्य है।

वर्तमान भौतिकवादी युग में व्यक्ति भौतिकता की दौड़ में अंधाधुंध दौड़े जा रहा है दिशाहीन। अर्थाभाव में जीवन व्यतीत करते हुए भी व्यक्ति भौतिक सुख-सुविधाओं को जुटाने में प्रयासरत है। व्यक्ति अपने आपको आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न दिखाने के प्रयास में ही चिंतित है। इस कृत्रिम या बनावटी जीवन ने व्यक्ति को हीन-भावना से भर दिया है। व्यक्ति के पास साधन न होते हुए भी वह उसे बनावटीपन से पूरा करने का प्रयास करता है। उसे यही चिन्ता सताए रहती है कि

---

१. भटकती राख ('पटरियाँ' कहानी) भीष्म साहनी, पृ० १३.

समाज में अपने को आर्थिक रूप से सम्पन्न दिखाने में कहीं वह पिछड़ न जाये। राजेन्द्र यादव की 'दायरा' कहानी में ऐसे ही व्यक्ति की मनोदशा की अभिव्यक्ति हुई है। नायक हरि सारा दिन नकली जिन्दगी जीता है। बनावटी जिन्दगी ही उसके लिए त्रास की स्थिति पैदा कर देती है। राजेन्द्र यादव की ही कहानी मेहमान में भी मध्यवर्गीय समाज की इस बनावटीपन का यथार्थ चित्रण देखने को मिलता है।

वर्तमान सामाजिक परिवेश में पर्याप्त अर्थ के बिना जीना व्यक्ति के लिए अत्यन्त दुष्कर है। वास्तव में भारत की साठ प्रतिशत से अधिक जनता अर्थाभाव के बोझ तले दबी है। बीस प्रतिशत लोग जैसे-तैसे अपना व अपने परिवार का पेट-पालते हैं। दस प्रतिशत से कम लोग है जिनके पास अथाह सम्पत्ति है ओर वे इसी चिन्ता में डूबे रहते हैं कि इसे कैसे खर्च किया जाय। इस प्रकार नब्बे प्रतिशत जनता दीन-हीन है। अतः अर्थ की दृष्टि से वर्ग वैषम्य पाया जाना स्वाभाविक है। मार्क्स भी समाज में वर्ग वैषम्य को स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार समाज में दो वर्ग है। पूँजीपति वर्ग उपभोक्ता होता है, जो शोषित वर्ग का शोषण करके विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत करता है और इसे सर्वहारा बनाता है। इसी कारण दोनों के बीच संघर्ष की प्रक्रिया गतिमान रहती है। वर्तमान युग पूँजीवादी युग है जहाँ धन की शक्ति को सभी स्वीकार करते हैं तथा अपनी लेखनी द्वारा वाणी देते हुए शोषक वर्ग या सर्वहारा वर्ग के हिमायती हैं। मार्क्स भी लेखकों को समाज के कर्त्तव्यों के प्रति सचेत करते हैं। आर्थिक विषमता आज हमारे समाज के लिए एक अभिशाप बनती जा रही है, जो व्यक्ति-व्यक्ति के बीच दूरियों को बढ़ाती जा रही है उन्हें आत्मकेन्द्रित व स्वार्थी बनाती जा रही है, उनके अन्दर मानवीय मूल्यों को समाप्त कर भावना शून्य बना रही है।

देश में आर्थिक विपन्नता ने जहाँ सामान्य व्यक्ति की जीने की स्थितियों को दूभर कर दिया है। उसे पग-पग पर आर्थिक चिन्ताएँ उद्वेलित करती हैं। ऐसे में समाज में निम्न स्तर का जीवन

जीने वाले भिखारी वर्ग, तमाशा आदि दिखाकर अपनी आजीविका चलाने वाले व्यक्तियों की स्थिति तो बिल्कुल बदत्तर ही है। ऐसा वर्ग समाज में सबसे ज्यादा जुझारू, पीड़ित तथा अत्यधिक कमर तोड़ मेहनत के बाद सबसे कम आय पाने वाला व्यक्ति है। उसे तो दो वक्त की रोटी ही नसीब हो जाये यही बहुत है। भौतिक सुख-सुविधाओं से तो उसका दूर-दूर का कोई नाता ही नहीं है। दो वक्त की रोटी जुटाने में भी यह वर्ग अपने-आपको असमर्थ पाता है। यदि इनके घर में कोई सदस्य बीमार पड़ जाता है तो पूरे दिन की कमाई उसकी दवा जुटाने में ही चली जाती है और पूरा घर पेट बाँधे, भूखे पेट ही सो जाता है। आर्थिक तंगी से तंग आकर अंततः वह आत्महत्या करने पर मजबूर हो जाता है। साठोत्तरी कहानियों में गरीबी के इस घिनौने रूप को अत्यन्त मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त किया है। राकेश वत्स की 'छुट्टी का एक दिन' कहानी में आर्थिक विपन्नता का यही रूप दृष्टिगोचर होता है। राजाराम सिंह की 'कुआँ' कहानी में भी एक गरीब मजदूर की आर्थिक मजबूरियों का इस कदर चित्रण हुआ है कि अपना पेट भरने के लिए अपने बच्चे तक का बेचने में भी नहीं हिचकिचाता। सिम्मी हर्षिता की 'भूख की बिक्री' कहानी में देखा जा सकता है कि एक संतरे बेचने वाला तो गरीब व अर्थाभाव से पीड़ित है, उसे खरीदने वाले भी कम गरीब नहीं है। यह उनके मालभोव के तरीके से स्पष्ट होता है। शैलेश मटियानी की 'दब्बू मलंग', 'भय', 'दो सुखों का एक सुख', 'प्यास' आदि कहानियाँ भी आर्थिक विपन्नताओं की ही कहानी कहती है। प्रभु जोशी की 'फोकस' में एक मजदूरनुमा फोटोग्राफर की आर्थिक मजबूरियों का चित्रण मिलता है। सुदीप की कहानी 'कितना पानी' में आर्थिक विपन्नता अपनी हद तक पहुँच गयी है। कहानी का नायक आर्थिक तंगी से विचलित होकर माँ तथा बच्चों को कमर में एक डोरी बाँधकर डुबाने ले जाता है। एक-एक करके जब बच्चा डूबता है तो माँ-बाप उसके रोने की आवाज को अनसुना करके आगे बढ़ जाते हैं। ऐसे में गरीबी और भूख अपने कारुणिक रूप में आ खड़ी होती है किन्तु पाठकों का भ्रम टूटता है वास्तव में कहानी का नायक स्वप्न देख रहा होता है। इसी प्रकार स्वदेश दीपक की 'तमाश' कहानी में मदारी पेट की भूख के लिए तमाशा दिखाते हुए अपने बेटे के पेट में छुरा भोंक

देता है। यह कहानी का सर्वनाशी रूप है। विष्णु प्रभाकर ने भिखारी तथा कुलभूषण की 'आजादी' कहानियों में भी भिखारी जीवन की आर्थिक तंगी का यथार्थ चित्रण देखने को मिलता है।

१९६६-६७ में पड़े भीषण अकाल के कारण समाज में आर्थिक विपन्नता ने अपना और भी उग्र रूप धारण कर लिया। साठोत्तरी कहानियों में अकाल, सूखा, बाढ़ आदि का भयावह यथार्थ हमारे सम्मुख आता है। कमलेश्वर की 'इतने अच्छे दिन' में सूखा और अकाल की मार से पीड़ित मनुष्य के घिनौने रूप का साक्षात्कार कराया गया है। माहेश्वर की 'अजनबी सुख' में भी अकाल की मार से पीड़ित व्यक्ति की दुर्दशा का चित्रण है। हिमांशु जोशी की 'जो घटित हुआ' में अकाल तथा मधुकर सिंह की 'बाढ' में बाढ़ की समस्या का सशक्त चित्रण हुआ है। हिमांशु जोशी की 'जलते हुए डैने', शिव प्रसाद सिंह की कहानी 'इन्हें भी इंतजार है' जैसी अनेक कहानियों में बाढ़ अकाल तथा सूखा का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत हुआ है। भूख व्यक्ति के समस्त मानवीय मूल्यों को लीलकर इंसानियत को हैवानियत में रूपांतरित कर देता है।

आज के सामाजिक परिवेश में अर्थाभाव का एक प्रमुख कारण शिक्षित बेरोजगारी है। स्वतन्त्रता के पश्चात शिक्षा सुविधाओं का विकास हुआ। अधिकाधिक लोग शिक्षित होते गए किन्तु जनसंख्या की वृद्धि तथा उत्पादन साधन सीमित होने के कारण शिक्षित बेरोजगारी में बढ़ोत्तरी हुई। साठोत्तरी कहानी में इस समस्या को बड़े विस्तार से उसके सूक्ष्मतम सन्दर्भों में चित्रित किया गया हैं शिक्षित बेरोजगारी का सबसे बड़ा कारण उचित व्यक्ति को समुचित रोजगार न मिलना हैं आज सिफारिश और रिश्वत की शक्ति के आगे योग्य व्यक्ति की शिक्षा, योग्यता और प्रतिभा की खुले आम अवमानना होने लगी। जिससे युवा पीढ़ी में निराशा, कुण्ठा, अवसाद तथा आक्रोश ने जन्म लिया। उनके भविष्य के प्रति संजोए हुए सपने मिट्टी में मिलने लगे। रमेश बत्तरा की 'जिन्दा होने के खिलाफ' का नायक बेरोजगार होने के कारण खीझ से भरा रहता है। मधुकर सिंह की 'फिलहाल' का नायक लाख चेष्टा करता है उसके बावजूद उसे नौकरी नहीं मिलती तो मानसिक अशान्ति से पीड़ित हो निराशा से भर उठता है। सिम्मी हर्षिता की 'चक्रव्यूह' में अंशुमाली का

इण्टरव्यूह के समय संवाद वस्तुस्थिति को खोलकर रख देता है। 'कद्दू दिमाग का सलैक्शन हो जाता है, योग्यता कोई नहीं देखता। आज नौकरी योग्यता को नहीं, पहचान को मिलती है।' प्रतिभा वर्मा की 'टूटना', रामदरश मिश्र की 'एक रात', मंजुल भगत की 'नालायक बहू', श्रवण कुमार की 'बौना' मे भी बेरोजगार और नियुक्तियों में भ्रष्टाचार का सशक्त चित्रण हुआ है। गिरिराज किशोर की 'ठंडक' का नायक श्रीकर रोजगार की तलाश में बाहर जाता पर वहाँ भी उसे रोजगार नहीं मिलता। वास्तव में बेरोजगारी की अव्यवस्था आज सम्पूर्ण देश में व्याप्त है। उसकी पत्नी कहती भी है 'रोटी मिलना बाहर जाने या अन्दर रहने पर निर्भर थोड़े ही करता है।' शिवप्रसाद सिंह की 'एक यात्रा सतह के नीचे' में अवधू अपनी बेकारी के कारण परिवार के बदले रूख का शिकार है। निर्मल वर्मा की कहानी 'लन्दन की रात' में बेकारी का चित्रण बड़े ही स्पष्ट एवम् प्रभावकारी ढंग से किया है। यह कहानी बेकार युवकों की बेगारगी का चित्रण प्रस्तुत करती है तथा इस बेगारगी का कोई अन्त नहीं दिखता है।

आज के अर्थ प्रधान समाज में जो जितना कमाता है परिवार व समाज में उसकी उतनी ज्यादा इज्जत होती है। यदि कोई बेरोजगार है तो न सिर्फ समाज में बल्कि परिवार में भी उसका पग-पग पर तिरस्कार होता है। भीष्म साहनी की 'खून का रिश्ता' में चाचा मंगल सेन को इसी कारण घर का कोई सदस्य इज्जत नहीं देता है। सुरेश सिन्हा की 'नया जन्म' और अमरकान्त की 'इण्टरव्यूह' में अर्थाभाव से पीड़ित व्यक्ति की कहानी है जो नौकरी न मिलने पर बेरोजगारी की यातनाओं, दिखाने का इण्टरव्यूह, भाई-भतीजावाद के कारण निराशा, कुण्ठा व आक्रोश की स्थितियों का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है। अमरकान्त की 'डिप्टी कलक्टरी', भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत', श्रीमती विजय चौहान की 'एक बुतशिकन का जन्म', शत्रुघ्न लाल की 'रोज की बातें' कमल जोशी की 'जीवन चक्र' जितेन्द्र की 'टूटा पत्ता' आदि कहानियों में बेरोजगारी, अनुशासनहीनता, सिफारिश आदि समस्याओं का यथार्थ चित्रण हमारे समक्ष प्रस्तुत किया गया है।

आज के इस अर्थ प्रधान युग में घर की स्थिति सुधारने के उद्देश्य से घर की औरत को नौकरी करके चार पैसे कमाने हेतु घर की चारदीवारी को लाँघकर बाहर आना पड़ा। स्त्री के घर से बाहर समाज में कदम रखते ही सामाजिक जीवन में बहुत बदलाव आया। स्त्री को भी अब दोहरी जिम्मेदारियों का वहन करना पड़ा। इसके साथ-साथ स्त्री को सांस्कृतिक संकट का भी सामना करना पड़ा। उसे अर्थोपार्जन हेतु घर के बाहर आना पड़ा, दूसरे पुरुषों के सम्पर्क में रहना पड़ा जिससे उसे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा तथा नारी का एक बदला हुआ रूप सामने आया। महीप सिंह की 'कील' महेन्द्र भल्ला की 'एक पति के नोट्स', कमलेश्वर की 'राजा निरबंसिया', राजेन्द्र यादव की 'जहाँ लक्ष्मी कैद है', कृष्ण बलदेव वैद की 'त्रिकोण' आदि कहानियों में नारी के इसी बदले हुए रूप का चित्रण दृष्टिगोचर हुआ है। पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलने पर उनमें सामानाधिकार व आत्मनिर्भरता की भावना ने जन्म लिया, पति के प्रति स्वामीत्व की भावना का धीरे-धीरे लोप होता गया और मैत्री भाव पनपता गया, परिवारों में स्त्री-पुरुष सामंजस्य बनाए रखने की भावना भी समाप्त होने लगी जिससे परिवारों में विघटन, तलाक जैसी स्थिति का उत्पन्न होना, संयुक्त परिवारों का टूटना, परपुरुष के साथ सम्बन्ध स्थापित करना, स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में बदलाव तथा समाज के सभी सम्बन्धों में अर्थ का प्रभाव दृष्टिगोचर हुआ। इसी कारण आज समाज की सोच में अन्तर आया। आज यदि अविवाहित लड़की कमा रही है तो माँ-बाप अपनी स्वार्थसिद्धि हेतु उसका विवाह टालते रहते हैं क्योंकि वह उन्हें आर्थिक संबल प्रदान करती है। यद्यपि उसके माँ-बाप को लड़की का अविवाहित होना सालता है। आज जिस घर में दो वक्त की रोटी के लिए पैसा नहीं जुट पाता उनके घरों में बेटियों का विवाह एक विकट समस्या बन जाती है। आर्थिक मजबूरियों से लड़की का विवाह अगले साल पर टाल दिया जाता है। सुधा अरोड़ा की कहानी 'साल बदल गया' कहानी इस स्थिति का प्रत्यक्ष प्रमाण है। नौकरीपेशा स्त्री को नौकरी करते हुए कई कठिनाइयों का सामना भी करना पड़ता है। जैसे गर्भावस्था द्वारा ज्यादा शारीरिक श्रम करना पड़ता है। युवावस्था में चरित्रहीन अधिकारियों द्वारा

कामवासना का शिकार तक हो जाती है जिससे लज्जावश वे आत्महत्या तक कर बैठती हैं। मार्कण्डेय की 'कल्यानमन' में मंगी की आर्थिक विपन्नता की भयावह स्थितियों का यथार्थ चित्रण मिलता हैं आज स्त्री का स्वतन्त्र अस्तित्व है। उसकी अपनी आकांक्षाएँ महत्त्वकांक्षाएँ हैं। आज वह पूरी तरह से स्वावलंबी है। इसी अर्थाभाव की विवशता ने वैश्यावृत्ति के लिए भी स्त्री को मजबूर कर दिया। जहाँ चौका-बासन करके, शिक्षित होकर रोजगार न मिलने या कम आमदनी होने से वह असंतुष्ट है वही वैश्यावृत्ति से उसकी आर्थिक स्थिति में सुधार आया, किन्तु समाज ऐसी नारियों को उपेक्षा भरी नजरों से देखता है।

आज की स्त्री निकली तो थी घर की स्थिति सुधारने किन्तु परिणामस्वरूप परिवार में बिखराव आया और खासतौर से पति-पत्नी सम्बन्धों पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा। नारी स्वयं दोहरी जिम्मेदारी वहन करते-करते टूट सी गयी। उसे एक अजीब बेचैनी, घुटन, व्याकुलता ने घेर लिया। साठोत्तरी कहानीकारों ने इसे अपना विषय बनाकर अनेक कहानियाँ लिखीं, जिसमें नारी की स्थिति का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया। रमेश बक्षी की जिनके 'घर ठहते हैं', निर्मला वर्मा की 'धागे', उषा प्रियम्वदा की 'एक और विदाई' में नारी की इस अनुभूति का सशक्त चित्रण मिलता है। इस प्रकार देखा जाए तो वास्तव में नारी की इसी अनुभूति का सशक्त चित्रण मिलता है। इस प्रकार देखा जाए तो वास्तव में नारी की स्थिति में सुधार आया। नारी को पुरुष के समान अधिकार तो मिले परन्तु नारी आज भी शोषित है। वस्तुतः आज के अधिकांश पुरुषों के विचार स्त्री के सम्बन्ध में अब भी पुरातन पंथी ही हैं। स्त्री शिक्षिता होते हुए भी प्राचीन संस्कृति से मोह छोड़ नहीं पा रही है। पुरुष स्वयं तो परस्त्री से बात कर लेता है लेकिन अपनी पत्नी के विषय में शंकालु प्रवृत्ति ही धारण किए रहता है जिससे स्त्रियाँ आज भी आर्थिक रूप से स्वावलंबी होने के बावजूद पुरुष प्रधान समाज में पुरुषों द्वारा शोषित होती हैं।

वर्तमान सामाजिक परिवेश में अर्थ ने अपनी पकड़ इतनी मजबूत कर ली है कि समाज का कोई क्षेत्र इससे अछूता नहीं है। देश, समाज, परिवार व्यक्ति सभी अर्थ के शिकंजे में जकड़े हुए हैं।

जिससे वर्तमान समय में सामाजिक व पारिवारिक सम्बन्धों पर अर्थ हावी होता जा रहा है। आज सम्बन्ध आर्थिक दृष्टि से तौलकर निभाए जा रहे हैं। वास्तव में अर्थ प्रधान दृष्टि सम्बन्धों के निर्वाह में इतनी प्रमुख भूमिका अपनाती है कि व्यक्ति आत्मीय रिश्तों को भी नहीं निभा पा रहा है। सम्बन्धों के निर्वहन में व्यक्ति की आर्थिक सम्पन्नता या विपन्नता आड़े आती है।

किसी भी समाज में वाह्य या आन्तरिक परिवर्तन होता है तो यह परिवर्तन समाज के व्यक्तियों पर सर्वप्रथम स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। आज 'अर्थ' ही सभी परिवर्तनों के मूल में होने के कारण भौतिक समृद्धि के लिए सभी सामाजिक व पारिवारिक सम्बन्ध टूटते जा रहे हैं। व्यक्ति मूल्यहीन सम्बन्धों को निर्मित करने में लगा है। परिवार के आत्मीय सम्बन्धों में टूटन आ रही है। पति-पत्नी, पिता-पुत्र, माँ-पुत्र, भाई-बहन, भाई-भाई जैसे घनिष्ठ सम्बन्धों पर व्यक्ति की अर्थ प्रधान दृष्टि ने कुठाराघात किया है। यही कारण है कि संयुक्त परिवारों में विघटन आया, एकल परिवारों की संख्या में बढ़ोत्तरी हुयी, पति-पत्नी समबन्धों में बहुत ज्यादा बदलाव आया। आज पति-पत्नी समग्र से अपने आपको बँधे रखने में असमर्थ पा रहे हें। अतः तलाक जैसी प्रवृत्ति दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। मोहन रोकेश की 'एक और जिन्दगी' कहानी पति-पत्नी के सम्बन्धों में टूटन की कहानी है।

आज के समय में पति-पत्नी के सम्बन्धों में तनाव या टूटन का मुख्य कारण पत्नी का अर्थोपार्जन के कारण स्वतन्त्र विचारों का होना है, क्योंकि इससे स्त्रियों में आत्मनिर्भरता आयी और वह पति के स्वामीत्व की भावना को ठुकराती हैं तथा मैत्री भाव को प्राथमिकता देती हैं। ऐसे में पति की भावना को ठेस पहुँचती है और सम्बन्धों में टूटन की स्थिति आती है। गिरिराज किशोर की 'ठण्डक' में भी पति-पत्नी के सम्बन्धों में आर्थिक समस्याओं के कारण आयी ठण्डक को चित्रित किया गया है। इसी प्रकार कमलेश्वर की 'राजा निरबंसिया' में चंदा का अपने पति को छोड़कर कम्पाउण्डर के साथ भाग जाने में भी आर्थिक दृष्टि ही मुख्य है। राजेन्द्र यादव की 'टूटना' मे 'पति-पत्नी के सम्बन्धों के टूटने में भी अर्थ प्रधान दृष्टि ही है। राजेन्द्र यादव की 'भविष्य के

पास मंडराता अतीत' में सम्बन्धों में तनाव इस हद तक आ जाता है कि विच्छेद जरूरी हो जाता है। आज पति-पत्नी में जो आर्थिक दृष्टि से ज्यादा सबल है अर्थात् ज्यादा कमाता है परिवार में उसी का आधिपत्य होता है। गिरिराज किशोर की 'फ्राक वाला घोड़ा निकर वाला साईस' में बीना स्वीकारती भी है "लेकिन आज व्यक्तिगत सम्बन्धों का भी आर्थिक महत्त्व अधिक है। अगर मैं आपसे छः गुना कमाती हूँ तो छः गुना ही बड़ी भी हूँ....."[१]

पति-पत्नी सम्बन्धों में अर्थ ने अपनी पकड़ इतनी मजबूत कर ली है कि अर्थ के आगे प्रेम जैसी भावना भी लुप्त होती जा रही है। व्यक्ति भावना शून्य होकर सिर्फ पैसे के ही बारे में विचार करते हुए सारा जीवन दिशाहीन सुख की खोज में लगा देता है। भीष्म साहनी की 'पटरियाँ' के पति-पत्नी सम्बन्ध भी अर्थ से पूरी तरह प्रभावित हुए हैं। इसी प्रकार रमेशचन्द्र शाह की कहानी 'पक्ष', ममता कालिया की 'नितान्त निजी', महीप सिंह की 'घिराव', शिव प्रसाद सिंह की 'धरातल', राजेन्द्र यादव की 'लौटते हुए', रामकुमार की 'हर शाम' उषा प्रियम्वदा की 'झूठा दर्पण', मार्कण्डेय की 'एक दिन की डायरी' आदि कहानियों में पति-पत्नी आर्थिक विषमताओं के बीच जूझते हुए दर्शाए गए हैं।

आज व्यक्ति की अर्थ प्रधान दृष्टिकोण होने के कारण व्यक्ति का मूल्यांकन अर्थ के आधार पर किया जा रहा है। आज जो व्यक्ति आर्थिक रूप से सम्पन्न है वही प्रतिष्ठित है। गरीब की समाज में उपेक्षा की जा रही है। यही व्यक्ति का आर्थिक दृष्टिकोण सम्बन्धों में अपना गहरा प्रभाव डालता है। अर्थ प्रधान दृष्टि ने पारिवारिक सम्बन्धों विशेष रूप से पति-पत्नी सम्बन्धों को बहुत आहत किया है। आज पति परिवार में मुखिया नहीं रहा इसका प्रमुख कारण पत्नी का अर्थोपार्जन करना है पहले पति चार पैसे कमाकर लाता था और पत्नी के हाथ में रखता था। पत्नी घर खर्च करती थी। दोनों के अपने-अपने अधिकार क्षेत्र थे आज ऐसा नहीं है। पत्नी भी घर के बाहर आयी अर्थोपार्जन हेतु इसलिए आज जो ज्यादा कमाता है परिवार में उसी का वर्चस्व रहता है। रवीन्द्र कालिया की

---

१. पेपरवेट (कहानी फ्राक वाला घोड़ा निकर वाला साइंस : गिरिराज किशोर, पृ० १०१.

'नौ साल की छोटी पत्नी' में विभिन्न मानसिकता के पति-पत्नी से साक्षात्कार कराया गया है। दूधनाथ की 'प्रतिशोध' भी आर्थिक दृष्टि से मध्य वर्ग के पति-पत्नी सम्बन्धों को आहत करती है। आज अर्थ व्यक्ति के दिलोदिमाग पर ऐसा छा गया है कि पैसे के लिए स्त्री हो या पुरुष किस कदर नीचता कर बैठते हैं। ममता कालिया की 'साथ' में अशोक, सुनन्दा से विवाह किए बगैर साथ रहता है जबकि स्वयं शादीशुदा है और सुनन्दा को भी ज्ञात है। दोनों पैसे के लिए साथ रहते हैं। आज पुरुष पैसों के लिए अपनी पत्नी को पराए मर्द के पास तक भेजने में संकोच नहीं करता यद्यपि उसकेअन्दर एक पीड़ा सी उठती है। दूधनाथ सिंह की 'सब ठीक हो जाएगा' इसी सन्दर्भ में लिखी गई कहानी है। आज की स्त्री का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व है। झिझक, शर्म, संकोच जैसी भावना आज की नारी में नहीं है। वह खुलकर हर विषय पर बात करती है किन्तु पुरुष प्रधान समाज नारी के इस खुलेपन पर शक करता है। शशिप्रभा शास्त्री की 'बीच की कड़ियाँ' इस दृष्टि से एक सफल कहानी है। शशिप्रभा शास्त्री की कहानियों में पति-पत्नी सम्बन्ध टूटने की स्थिति तक आते हैं और पुनः सम्बन्धों में सामंजस्य स्थापित हो जाता है। उनकी 'अंतरंग', 'एक गाँठ', 'एक वर्ष', 'आँधी', 'तट के बंधन', 'इतनी सी बात' आदि कहानियाँ नारी के यथार्थ सम्बन्ध में लिखी गई कहानियाँ हैं।

आज घर की स्त्री का अर्थोपार्जन हेतु घर से बाहर आने पर परिवार व समाज के सभी सम्बन्धों पर गहरा प्रभाव पड़ा। इसी प्रकार भाई-भाई जैसे सगे रिश्ते में भी अर्थ का प्रभाव अपनी चरम सीमा पर दिखायी पड़ता है। दो भाइयों में खून का रिश्ता होने पर यदि एक आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न है और दूसरा बेराजगार है या कम आय है तो अधिक सम्पन्न भाई दूसरे को हिकारत भरी नजरों से देखता है उससे सम्बन्ध तक बनाए रखने में संकोच करता है। भीष्म साहनी की 'खून का रिश्ता', रमेश उपाध्याय की 'समतल', द्रोणवीर कोहली की 'माँ जाये', मोहन राकेश की 'आर्द्रा', इब्राहिम शरीफ की 'जमीन का आखिरी टुकड़ा', से०रा० यात्री की 'आहत', हृदयेश की 'जाला' में भी दो सगे भाइयों के बीच आत्मीयता का अभाव दृष्टिगोचर होता है। दोनों भाई पास होते हुए भी

मन से कोसों दूर रहते हैं। इस प्रकार की कहानियों में भाई-भाई सम्बन्ध आर्थिक दृष्टि से प्रभावित दिखते हैं।

अर्थ प्रधान दृष्टि न सिर्फ भाई-भाई सम्बन्ध पर ही अपना प्रभाव डालती है बल्कि भाई-बहन जैसे गहन भावनात्मक और पवित्र सम्बन्धों पर भी अर्थ प्रधान दृष्टि छायी हुई है जो उनके सम्बन्धों में विष घोल देता है और उनके हृदय की भावनाओं को शून्य कर देता है। आज भाई बहन के प्यार की आत्मा को अर्थ ने शीतलता प्रदान कर दी है जिससे वे एक-दूसरे से सम्बन्ध निभाते नहीं बल्कि ढोते हैं। कभी-कभी इनका मन व आत्मा इन सम्बन्धों को जीने के लिए ललकता है परन्तु आर्थिक विवशताएँ उन्हें ऐसा करने से रोक देती है। साठोत्तरी कहानीकारों ने इस यथार्थ को पास से देखा और भोगा है तथा अपनी कहानियों में इन सम्बन्धों में आयी आर्थिक विवशता को यथार्थरूप में निरूपित किया है। उषा प्रियम्वदा की 'जिन्दगी और गुलाब के फूल', ममता कालिया की 'बीमारी' मोहन राकेश की 'रोजगार', पृथ्वीराज मोंगा की 'अन्तर' आदि कहानियों में भाई-बहन के सम्बन्धों में आर्थिक कारणों से आयी दरार का यथार्थ व मर्मस्पर्शी चित्रण प्रस्तुत हुआ है।

वर्तमान सामाजिक परिवेश में व्यक्ति भौतिक सुख-सुविधाओं को को जुटाने की होड़ में अपना सब कुछ गँवा कर पैसा ही कमाना चाहता है चाहे इसके पीछे उसके सम्बन्ध तक छूट जाए। उसे इसकी कोई परवाह नहीं माँ जैसे पवित्र एवं निष्पक्ष व्यवहार भी पुत्र-पुत्री से सम्बन्ध निभाने में अर्थ से प्रभावित होता है। उषा प्रियम्वदा की 'जिन्दगी और गुलाब के फूल' में यह दृष्टि स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। भीष्म साहनी द्वारा लिखित 'चीफ की दावत भी इस सन्दर्भ में लिखी गई एक सशक्त कहानी है। दीप्ति खंडेलवाल की 'विषपायी' में भी माँ-बेटे के सम्बन्ध इसी निर्मम स्थिति का साक्षात्कार कराते हैं। माँ बड़े बेटे को दूध-रोटी इसलिए देती है क्योंकि वह चार पैसे कमाकर लाएगा। जब छोटा दूध-रोटी माँगता है तो माँ कहती है-"चल हट कमबख्त! तू दूध-रोटी खाकर क्या करेगा? बड़का तो जवान हो गया, चार पैसे कमायेगा। तू तो मरे अभी बरसों

मेरा हाड़ खाएगा।" इस कहानी का यह संवाद तो अर्थ की उस विकरालता से परिचय कराते हैं जिसने माँ जैसे निःस्वार्थ प्रेम को आज इस दयनीय व निर्मम स्थिति तक पहुँचा दिया। गिरिराज किशोर की कहानी 'रिश्ता' मानवीय रिश्ते के विघटन की कहानी है। यह माँ-बेटे सम्बन्धों के बीच दिल को दहला देने की कहानी है।

इसी प्रकार साठोत्तरी कहानियों में सम्बन्धों के बिखराव के सन्दर्भ में पिता-पुत्र सम्बन्धों को लेकर अनेक कहानियाँ लिखी गईं हैं। आर्थिक परिस्थितियों ने पिता-पुत्र के सम्बन्धों में भी कड़वाहट भर दी है। अवध किशोर की कहानी 'दूसरी शुरूआत से पूर्व' में यही स्थिति दर्शायी गयी है जहाँ पिता-पुत्र सम्बन्धों के निर्वहन में आर्थिक परिस्थितियाँ आड़े आती हैं और इनके सम्बन्ध खण्डित होते नजर आते हैं। अमृतराय की कहानी 'अमलतास' में पिता की अर्थ प्रधान दृष्टि होने के कारण पुत्र जैसे घनिष्ठ सम्बन्ध को भी वह ताक पर रख देते हैं। मधुकर सिंह की 'फिलहाल' कहानी में भी पिता-पुत्र सम्बन्धों के निर्मम पक्ष को उजागर किया गया हैं अकुलेश की कहानी 'काँच का गिरना' में पिता-पुत्र सम्बन्ध न होकर पिता-धन सम्बन्ध को ही प्राथमिकता दी गई है। रमेश बक्षी की 'पिता दर पिता' और प्रभु जोशी की 'पितृ-ऋण' में भी यही स्थिति दर्शायी गई है। आज माँ-बाप, पुत्र को 'फालतू समान' ही नजर आते हैं। उषा प्रियम्वदा की 'वापसी' प्रभु जोशी की पितृ-ऋण और राजेन्द्र यादव की 'बिरादरी से बाहर' यशपाल की 'समय' मणिका मोहनी की 'दूरियों के बीच' में आर्थिक दबाव के कारण सम्बन्धों पर गहरा प्रभाव पड़ा है और पिता को फालतू समान ही समझा जाता है। गंगा प्रसाद विमल की 'उसकी पहचान', से०रा० यात्री की दरारों के बीच', कृष्णबलदेव की 'ऋण', ज्ञानरंजन की 'पिता', श्री हर्ष की 'रिश्ते', सिद्धेश की 'आश्रय', रश्मि तन्खा की 'चौथा बेटा' आदि कहानियों में पिता-पुत्र सम्बन्धों में तनाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है।

इसी प्रकार समाज के अन्य सम्बन्धों में भी आर्थिक कारणों से तनाव व दूरियाँ दिखायी पड़ती हैं। निरूपमा सेवती की 'विमोह' में वृद्ध माँ-बाप का दर्द है जो अपने ही बेटे-बहू के घर

बेगानेपन को महसूस करते हैं। सुरेन्द्र कुमार की 'पोषक भक्षी' में भी पिता की वृद्धावस्था का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया गया है। रामदरश मिश्र की 'सड़क' में आर्थिक असम्पन्नता के कारण टूटते हुए मूल्यों की संवेदना को अभिव्यक्त किया गया है। राजी सेठ की 'उसका आकाश' में भी वृद्धावस्था की पीड़ा, लाचारी, बेचारगी तथा सम्बन्धों की टूटन दृष्टिगोचर हुई है। सुनीता जैन की बाट मे पिता नहीं बूढ़ी माँ का दर्द देखने को मिलता है जो अपने बेटे-बहू द्वारा उपेक्षित है। राकेश वत्स की 'गुलाम' में उस पिता की पीड़ा है जो अपने पुत्र नहीं बल्कि पुत्री द्वारा उपेक्षित है।

अर्थ का प्रभाव, हमारे समाज के अन्य सम्बन्धों पर भी बहुत गहरा पड़ा है। भीष्म साहनी की 'पटरियाँ' में ससुर-दमाद सम्बन्ध भी आर्थिक दृष्टि से दमाद के कमजोर होने के कारण कमजोर पड़ता है। श्रीकान्त वर्मा की कहानी 'संवाद' तथा गिरिराज किशोर की कहानी 'शीर्षकहीन' में दो मित्र के सम्बन्धों के बीच अर्थ की दीवार आकर खड़ी हो गयी है जिससे दोनों में दूरियाँ बढ़ती गई हैं।

इस प्रकार हम पाते हैं कि वर्तमान सामाजिक परिवेश में प्रायः सभी सामाजिक एवं पारिवारिक सम्बन्धों पर अर्थ का प्रभाव पूरी तरह छाया है। अर्थ के ही कारण आज सम्बन्धों में प्रेम व आत्मीयता का स्रोत सूखता जा रहा है। व्यक्ति-व्यक्ति के मध्य रागात्मक सम्बन्ध टूटता जा रहा है। आज व्यक्ति भौतिकता की दौड़ में अपने को इतना दूर ले जाना चाहता है कि उसे टूटते-छूटते सम्बन्धों की परवाह ही नहीं है। अर्थोपार्जन को अपना जीवन लक्ष्य बनाकर उसने अपने जीवन को अत्यधिक व्यस्त बना दिया है। जहाँ सम्बन्धों को जीने की इच्छा ही व्यक्ति की समाप्त हो रही है। आज किसी भी सम्बन्ध के प्रति व्यक्ति लालायित नहीं दिखता, सभी सम्बन्ध स्वार्थ से लिपे-पुते हैं। आज सम्बन्धों से व्यक्ति को ऊब होती है। वह माँ को बुढ़िया ओर पत्नी को वेश्या ही समझता है। दूधनाथ की 'रक्तपात' इसी प्रकार की मानसिकता की कहानी है। वर्तमान समाज में व्यक्ति इतना स्वार्थी व निर्मम हो गया है कि आत्मीय सम्बन्धों के प्रति भी व्यक्ति में किसी प्रकार का मोह या लगाव नहीं रह गया है। यहाँ तक कि खास सम्बन्धी की मौत भी उसे विचलित नहीं

करती। इसका यथार्थ चित्रण ज्ञानरंजन की कहानी 'सम्बन्ध' में देखने को मिलती है। आज व्यक्ति ज्यों-ज्यों सम्बन्ध की गाँठ को तोड़ता जा रहा है, त्यों-त्यों वह और अधिक निर्मम और तटस्थ होता जा रहा है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(क)

- अन्धकूप (सम्पूर्ण कहानियाँ-१) - शिवप्रसाद सिंह
- असफल दाम्पत्य की कहानियाँ - चित्रा मुद्गल
- दूसरी ओर की कहानियाँ - चित्रा मुद्गल
- टूटते परिवारों की कहानियाँ - चित्रा मुद्गल
- प्रतिनिधि कहानियाँ - भीष्म साहनी
- पटरियाँ - भीष्म साहनी, प्र० सं० दिल्ली, रामकमल प्रकाशन
- भटकती राख - भीष्म साहनी, प्र० सं० दिल्ली, रामकमल प्रकाशन
- शोभा यात्रा - भीष्म साहनी, प्र० सं० दिल्ली, रामकमल प्रकाशन
- नवाबी मसनद - अमृतलाल नागर
- हम फिदाए लखनऊ - अमृतलाल नागर
- कृपया दायें चलिये - अमृतलाल नागर
- भारत पुत्र नवरंगी लाल - अमृतलाल नागर
- एक दिल हजार अफ़साने - अमृतलाल नागर

❖ चकल्लस – अमृतलाल नागर

❖ सिकन्दर हार गया – अमृतलाल नागर

❖ तुलाराम शास्त्री – अमृतलाल नागर

❖ पेपरवेट कहानी संग्रह – गिरिराज किशोर

❖ रिश्ता और अन्य कहानियाँ – गिरिराज किशोर

❖ वल्द रोज़ी – गिरिराज किशोर

❖ हम प्यार कर लें – गिरिराज किशोर

❖ चार मोती बे आब – गिरिराज किशोर

❖ शहर–दर–शहर (कहानी–संग्रह) – गिरिराज किशोर

❖ गरीबी हटाओ – रवीन्द्र कालिया

❖ चकैया नीम – रवीन्द्र कालिया

❖ नौ साल छोटी पत्नी – रवीन्द्र कालिया

❖ सत्ताइस साल की उम्र तक – रवीन्द्र कालिया

❖ राग मिलावट मालकौंस – रवीन्द्र कालिया

❖ काला रजिस्टर – रवीन्द्र कालिया

❖ एक अदद औरत – ममता कालिया

❖ बेघर – ममता कालिया, प्र० सं० इलाहाबाद, रचना प्रकाशन

❖ बोलने वाली औरत – ममता कालिया, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

- छुटकारा संग्रह – ममता कालिया, प्र० सं० इलाहाबाद, रचना प्रकाशन
- लड़कियाँ – ममता कालिया, प्र० सं० इलाहाबाद, चित्रलेखा प्रकाशन
- जाँच अभी जारी है – ममता कालिया
- सीट नम्बर छह – ममता कालिया
- उसका यौवन – ममता कालिया
- प्रतिदिन – ममता कालिया, प्र० सं० दिल्ली, रामकमल प्रकाशन
- मित्र मिलन तथा अन्य कहानियाँ – अमरकान्त
- मेरी प्रिय कहानियाँ – ऊषा प्रियम्वदा
- जिन्दगी और गुलाब के फूल – ऊषा प्रियम्वदा
- समान्तर–१ – कमलेश्वर
- इतने अच्छे दिन – कमलेश्वर
- पहली कहानी – कमलेश्वर
- राजा निरबंसिया – कमलेश्वर
- बयान तथा अन्य कहानियाँ – कमलेश्वर
- लौटे हुए मुसाफिर – कमलेश्वर
- फेन्स के इधर और उधर संग्रह – ज्ञानरंजन
- सपना नहीं – ज्ञानरंजन
- संवाद कहानी संग्रह – श्रीकांत वर्मा

❖ दूसरे के पैर कहानी संग्रह - श्रीकांत वर्मा

❖ झाड़ी कहानी संग्रह - श्रीकांत वर्मा

❖ ठण्ड कहानी संग्रह - श्रीकांत वर्मा

❖ शवयात्रा - श्रीकांत वर्मा, प्रकृति व पाठ - डॉ० सुरेन्द्र

❖ कहाँ हो प्यारे लाल - रमेश उपाध्याय, सचिन प्रकाशन

❖ किसी देश के किसी शहर में - रमेश उपाध्याय

❖ पहला कदम - दूधनाथ सिंह

❖ सपाट चेहरे वाला आदमी - दूधनाथ सिंह

❖ पहला कदम - दूधनाथ सिंह

❖ मेरी प्रिय कहानियाँ - निर्मल वर्मा

❖ परिन्दे - निर्मल वर्मा

❖ कव्वे और काला पानी - निर्मल वर्मा

❖ मेरी प्रिय कहानियाँ - मन्नू भण्डारी

❖ शायद - मन्नू भण्डारी

❖ रानी माँ का चबूतरा - मन्नू भण्डारी

❖ मेरी प्रिय कहानियाँ - राजेन्द्र यादव

❖ 'एक खुली हुई साँझ', 'टूटना' तथा अन्य कहानियाँ - राजेन्द्र यादव

❖ चौखटे तोड़ते त्रिकोण - राजेन्द्र यादव

❖ अपने पार – राजेन्द्र यादव

❖ मेरी प्रिय कहानियाँ – कृष्ण बलदेव वैद

❖ मेरा दुश्मन (कहानी संग्रह) – कृष्ण बलदेव वैद

❖ मोहन राकेश की सम्पूर्ण कहानियाँ – मोहन राकेश

❖ रेत छाया – रमेश गुप्ता

❖ यह गली भी बन्द – रमेश गुप्ता

❖ पिघला हुआ सच – रमेश गुप्ता

❖ तारों का गुच्छा – मार्कण्डेय

❖ चुनी हुई कहानियाँ – मार्कण्डेय

❖ अलग–अलग अस्वीकार – से०रा० यात्री

❖ धरातल – से०रा० यात्री

❖ दिशाहारा – से०रा० यात्री

❖ पिता–दर–पिता – रमेश बक्षी

❖ जंगल में आग – रमेश चन्द्र शाह

❖ तीर्थ यात्रा – हेतु भारद्वाज

❖ चीफ साहब आ रहे हैं – हेतु भारद्वाज

❖ एक और सीता – आलम शाह खान

❖ एक गधे की जन्म कुण्ठली – आलम शाह खान

- आएगें अच्छे दिन भी – स्वयं प्रकाश, रामकमल प्रकाशन
- ओ सो० किसरी – चन्द्र कान्ता, राजकमल प्रकाशन
- ए लड़की – कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
- केशर–कस्तूरी –शिवमूर्ति, प्र० सं० राधाकृष्ण प्रकाशन
- जहर – श्रवण कुमार
- नंग–मतग – रमेश बत्तरा
- छोटे शहर के लोग – हृदयेश
- रिश्ता और अन्य कहानियाँ – गिरिराज किशोर
- जलसाधर (कहानियाँ) – श्री नरेश मेहता
- गोबर गणेश (पु० मु०) – रमेश चन्द्र शाह
- जंगन में आग – रमेश चन्द्र शाह
- रोशन – इसराइल
- मेरा पहाड़ – शेखर जोशी
- सौ का नोट तथा अन्य कहानियाँ – डॉ० मधुकर गंगाधर
- गुलमोहर के आँसू – शीतांशु भारद्वाज
- देशकाल – त्रिलोचन
- कौन जीता कौन हारा – विष्णु प्रभाकर
- प्रतिनिधि कहानियाँ – लक्ष्मी नारायण लाल

- आखिरी हँसी – निशान्त केतु
- कृति कहानियाँ – डॉ० शुकदेव सिंह, डॉ० विजय बहादुर सिंह
- स्पंदन – शरद
- रक्त बह – रामदरश मिश्र
- जंगल में आग – रमेश चन्द्र शाह
- दलदल – आबिद सुरती
- देवता का जन्म तथा अन्य कहानियाँ – बलवन्त सिंह
- मेरा पहाड़ – शेखर जोशी
- सिर्फ एक आकाश – सुदर्शन नारंग
- दूसरी औरत होने का सुख – इन्दु बाली
- नकाब दर नकाब – पुष्पा बंसल
- एक पुरुष की आँखें – नमिता सिंह
- तिरिछ – उदय प्रकाश
- रैन बसेरा – अब्दुल बिस्मिलल्लाह
- मुक्ति – अखिलेश
- आखिरी दांव – जवाहर सिंह
- परास्वप्न – योगेश गुप्त
- अपना-अपना सच – मणिका मोहनी

- घाटी में पिघलता सूरज – सावित्री परमार
- दलित कहानियाँ – से रणसुझे एवं गंगावेण
- अन्धे आकाश का सूरज – रॉबिन शॉ पुष्प
- एक साक्ष्यहीन सूरज – रामानन्द राठी
- २० नए कहानीकार – शरणबन्धु
- सचेतन कहानी : रचना और विचार – मधुकर
- देवता का जन्म तथा अन्य कहानियाँ – बलवन्त सिंह
- जाल – जवाहर सिंह, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, २३ दरियागंज नई दिल्ली
- जल प्रांतर – अरुण प्रकाश, सचिन प्रकाशन
- दूसरे देशकाल में – राजी सेठ, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, २३ दरियागंज नई दिल्ली
- पुल और परछाइयाँ (संग्रह) – महेन्द्र भल्ला
- पारदर्शक – महीप सिंह, 'कील' कहानी संग्रह
- प्रेम चन्द्र की प्रतिनिधि कहानियाँ – वेद प्रकाश अमिताभ
- पिताजी चुप रहते हैं – ज्ञान प्रकाश विवेक, अधर प्रकाशन
- अंतःपुर – गोविन्द मिश्र
- ग्रामीण परिवेश की श्रेष्ठ कहानियाँ – सम्पादक डॉ० सुभद्रा
- श्रेष्ठ समानान्तर कहानियाँ – सुदीप
- डॉ० माहेश्वर की कहानियाँ – माहेश्वर

(ख) आलोचनात्मक सन्दर्भ ग्रन्थ-

- अमृत राय का कथा साहित्य - डॉ० (श्रीमती) कृष्णा माहेश्वरी, अरविन्द प्रकाशन
- आजाद गुलाम जन स्वातन्त्र्य और कहानी की भूमिका - तरसेम गुजरात
- आठवें दशक की हिन्दी कहानी में ग्रामीण जीवन - गणेश पाण्डेय, राधा पब्लिकेशन्स, नयी दिल्ली
- आधुनिकता और समकालीन रचना सन्दर्भ - डॉ० नरेन्द्र मोहन
- आधुनिक परिवेश और नव लेखन - शिव प्रसाद सिंह
- आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में राजनैतिक एवं आर्थिक चेतना - डॉ० पीताम्बर सरोदे अतुल प्रकाशन, कानपुर
- आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास - बच्चन
- आधुनिक हिन्दी कहानी का परिपार्श्व - डॉ० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय
- द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय
- कथा के नए अक्षांश, संपा०- डॉ० धनंजय, शान्ति प्रकाशन इलाहाबाद
- कहानी-कला, विकास और इतिहास - श्रीपति शर्मा त्रिपाठी, नन्द किशोर एण्ड संस, वाराणसी
- कमलेश्वर का कथा साहित्य - माधुरी शाह, साहित्य रत्नालय, कानपुर
- कहानी कला - विनोद शंकर व्यास, हिन्दी साहित्य कुटीर, बनारस
- कहानी और कहानी सम्पादक - डॉ० राजेन्द्र कुमार शर्मा, सुरेश शर्मा, प्रभा प्रकाशन, इलाहाबाद

❖ कहानी और कहानीकार – मोहन लाल जिज्ञासु, रामलाल पुरी आत्माराम एण्ड सन्स कश्मीरी गेट दिल्ला

❖ कहानी–नयी कहानी – नामवर सिंह, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद

❖ कहानी की संवेदनशीलता : सिद्धान्त और प्रयोग : डॉ० भगवान दास वर्मा

❖ कहानी रचना प्रक्रिया और स्वरूप – लक्ष्मण सिंह बटरोही, अक्षर प्रकाशन, दिल्ला

❖ कहानी का विकास – डॉ० प्रताप नारायण टण्डन

❖ कहानी स्वरूप और संवेदना – राजेन्द्र यादव, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली

❖ कहानी और कहानीकार – मोहन लाल जिज्ञासु

❖ कहानी की बात – मार्कण्डेय

❖ कहानी समालोचना सन्दर्भ – डॉ० रामशोभित प्रसाद सिंह, जानकी प्रकाशन, पटना

❖ कथा सोपान – सुनील कौशिक

❖ कामायनी – जयशंकर प्रसाद, प्रकाशन संस्थान नई दिल्ली

❖ जैनेन्द्र की कहानियाँ एक मूल्यांकन – डॉ० शकुन्तला वर्मा

❖ नई कहानी प्रतिनिधि हस्ताक्षर – वेद प्रकाश अमिताभ, रंजना शर्मा

❖ नई कहानी और मध्यम वर्ग – कामेश्वर प्रसाद

❖ नई कहानी– प्रकृति और पाठक – श्री सुरेन्द्र

❖ नई कहानी– दृष्टि और सृष्टि – सम्पादक डॉ० भ०ह० राजूरकर, डॉ० भगवान दास वर्मा, प्रकाशक – पुस्तक संस्थान, कानपुर

❖ नई कहानी के विविध प्रयोग – पाण्डेय शशि भूषण शीतांशु

- नई कहानी और अमरकान्त – निर्मल सिंहल, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
- नई कहानी कथ्य और शिल्प – संतबख्श सिंह
- भारतीय किसान संघर्ष पर केन्द्रित कहानी का हस्तक्षेप–१ – संपा० शम्भू नाथ
- भारतीय किसान संघर्ष पर केन्द्रित कहानी का हस्तक्षेप–२ – संपा० शम्भू नाथ
- मार्क्सवादी साहित्य चिन्तन : इतिहास और सिद्धान्त – डॉ० शिव कुमार मिश्र
- मूल्य मीमांसा – गोविन्द चन्द्र पाण्डे
- हिन्दी कहानियों में शिल्प–विधि का विकास : डॉ० लक्ष्मी नारायण लाल
- समकालीन कहानी : युगबोध का सन्दर्भ – डॉ० पुष्पपाल सिंह, नेशनल पब्लिसिंग हाऊस, नई दिल्ली
- समकालीन कहानी की पहचान – डॉ० नरेन्द्र मोहन, प्रवीण प्रकाशन, नई दिल्ली
- समकालीन कहानी– सोच और समझ – डॉ० पुष्पपाल सिंह
- समकालीन कहानी– दिशा और दृष्टि – सम्पादक डॉ० धनंजय
- समकालीन हिन्दी कहानी – डॉ० प्रकाश आतुर
- समकालीन हिन्दी कथा–साहित्य में जन चेतना – डॉ० अरुणा लेखण्डे, विकास प्रकाशन, कानपुर
- समकालीन हिन्दी कहानी और समाजवादी चेतना – डॉ० किरण बाला, अनुभव प्रकाशन, कानपुर
- समकालीन कहाना – समान्तर कहानी – डॉ० विनय
- समकालीन कहानी – यथार्थ चेतना के धरातल – डॉ० नरेन्द्र मोहन

❖ समकालीन शेष कहानियाँ – संपा० विद्याधर शुक्ल, अनामिका प्रकाशन, इलाहाबाद

❖ साहित्य की चिन्ता – डॉ० देवराज

❖ स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य और ग्राम जीवन – डॉ० विवेकी राय

❖ स्वतन्त्रा के बाद की सर्वश्रेष्ठ हिन्दी कहानियाँ – संपा० विजय चन्द, प्रगतिशील प्रकाशन, नई दिल्ली

❖ स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी का विकास – डॉ० सूबेदार राय, अनुभव प्रकाशन, कानपुर

❖ स्वतन्त्र् भारत की कहानियाँ – प्रो० जितेन्द्र प्रसाद सिंह, प्रगति प्रकाशन, आगरा

❖ स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी कोश–१ भाग – महेश दर्पण

❖ स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी कोश–२ भाग – महेश दर्पण

❖ स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य – डॉ० बेचन, राष्ट्रभाषा प्रकाशन, नई दिल्ली

❖ स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी में सामाजिक परिवर्तन (१९५०-७०) – डॉ० मैरूलाल गर्ग

❖ स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी में मानव प्रतिमा – हेतु भारद्वाज, पंचशील प्रकाशन, जयपुर

❖ स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास मूल्य संक्रमण – डॉ० हेमेन्द्र कुमार पानेरी

❖ स्वरूप और संवेदना – राजेन्द्र यादव

❖ ६० के बाद की कहानियाँ – विजय मोहन सिंह, मधुकर सिंह

❖ साठोत्तर हिन्दी कहानी में पात्र और चरित्र–चित्रण– डॉ० रामप्रसाद, जयभारती प्रकाशन इलाहाबाद

❖ साठोत्तर महिला कहानीकार – डॉ० मधु संधु

❖ हिन्दी कहानी की अन्तरंग पहचान – रामदरश मिश्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली

❖ हिन्दी कथा साहित्य में यथार्थ बोध के विविध रूप – डॉ० कृपाशंकर पाण्डेय समीक्षा प्रकाशन, बस्ती

❖ हिन्दी कहानियों में द्वन्द्व (प्रथम संस्करण १९७५) – श्रीमती सुमन मेहरोत्रा, आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली

❖ हिन्दी कहानी – समकालीन परिदृश्य – डॉ० सुखबीर सिंह

❖ हिन्दी कहानी का सातवां दशक – प्रहलाद अग्रवाल

❖ हिन्दी कहानी का विकास – मधुरेश, नई कहानी, इलाहाबाद

❖ हिन्दी कहानी की रचना प्रक्रिया – परमानन्द श्रीवास्तव, ग्रन्थम प्रकाशन, कानपुर

❖ हिन्दी कथा साहित्य विविध आयाम – महेन्द्र भटनागर

❖ हिन्दी कहानी में शिल्प विधि का विकास – डॉ० श्रीमती ओमप्रकाश शुक्ल

❖ हिन्दी कहानी में जीवन–मूल्य – डॉ० रमेश चन्द्र लावनिया

❖ हिन्दी कहानी का विकास – डॉ० देवेश ठाकुर

❖ हिन्दी कहानी : आठवाँ दशक – मधुर उप्रेती

❖ हिन्दी कहानियों में शिल्प विधि का विकास – डॉ० लक्ष्मी नारायण लाल

(ग) कोश ग्रन्थ

❖ वृहत हिन्दी शब्द सागर – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल – नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

❖ मानक हिन्दी कोश – रामचन्द्र वर्मा – हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

❖ उपन्यास कोश – डॉ० गोपाल राय

❖ प्रसाद काव्य कोश – सुधाकर पाण्डेय – नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

❖ हिन्दी साहित्य कोश – डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, बनारस

(घ) पत्र-पत्रिका

हंस अक्टूबर १९८८ अक्षर प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड २/३६ अंसारी रोड, दरियागंज नई दिल्ली– ११०००२

सारिका अक्टूबर १९७४

सारिका जून १९७८

सारिका मार्च १९७५

कहानी जनवरी १९७३

कहानी जून १९७३

कहानी अक्टूबर १९७०

कहानी अप्रैल १९७१

कहानी मार्च १९७५

कहानी जून १९७३

धर्मयुग १७ जुलाई १९७७

रविवार २ मार्च १९८० अंक

संचेतना २८ दिसम्बर १९७३